

# साहित्य मेघ

RNI: UPHIN/2021/80567

मासिक पत्रिका  
sahityamegh.com

## सम्पादक मण्डल

### भारत

प्रो. ओमप्रकाश सिंह

(९८९९४४६८६९)

(विभागाध्यक्ष जे.एन.यू.)

प्रो. कृपाशंकर पाण्डेय

(९९८४५२३७०६)

(विभागाध्यक्ष, इला.यू.)

प्रो. मोहन

(९८७९९९५५००)

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

प्रो. चन्द्रदेव यादव

(९८९८९५८७४५)

(जामिया मिल्लिया इस्लामिया)

प्रो.लालचंद राम

९९९००७०८९५

विभागाध्यक्ष,एन सी ई आर टी

प्रो.चंदा देवी

(८००४९२८४४९)

(इला. यू.)

प्रो. रामकली सराफ

(९३८९४३२९६५)

(विभागाध्यक्ष बी.एच.यू.)

प्रो. शत्रुघ्न कुमार

(९८९९२४३४२३) (झू)

प्रो.राम आहलाद चौधरी

(९४३२०५९५००)

(विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय)

प्रो. रूबी जुत्शी

(९४९९०५८५८५)

(विभागाध्यक्ष जम्मू कश्मीर)

प्रो. गजेन्द्र कुमार पाठक

(८९९८९२९३५)

(विभागाध्यक्ष हैदराबाद यू.)

### विदेश

प्रो. सरन घई

(±९ (६४७) ९९३-०३३०)

कनाडा

प्रो. पुष्पिता अवस्थी

(±९९ ७०५८४-६२९५९)

(www.pushpitaawasthi.com)

नीदरलैंड

डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल

'शरद आलोक'

(±४७ ९००७०३९८)

(speil.nett@gmail.com)

नॉर्वे

अनुराग शर्मा

(±९ (४९२) ६९२-९३६२)

(indiasmart@gmail.com)

अमेरिका

रेखा राजवंशी

(±६९ ४०३९९६३०९)

ऑस्ट्रेलिया

प्रो.उल्फत मुखीबोवा

+998946443037

TASHKAND(रूस)

## परामर्श मण्डल

### देश-विदेश

डॉ. प्रताप सहगल (९८९०६३८५६३)

(भारत)

प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह

(९८९९३०६३३९)

(भारत)

डॉ.शशि सहगल (९८९९९६६९२९)

(भारत)

तेजेन्द्र शर्मा

(४४ ७४००३९३४३३)

(यू.के.)

# साहित्य मेघ

जनवरी २०२२

डॉ. दानिश (९६९६४८६३८६)

प्रधान संपादक

डॉ. तबस्सुम जहां (९८७३९०४९९०)

सह-संपादक (अवैतनिक)

डॉ. राजविंदर कौर (९७५९९९२४३४)

सह-संपादक (अवैतनिक)

श्रीमती एस. के. 'सुमन'

आर्थिक सलाहकार

वर्ष: २, अंक: १

एक प्रति : १५०/- , वार्षिक : १५००/-

BANK DETAIL : IFSC CODE : UBIN0530371

MOHD SALEEM UNION BANK, CIVIL LINES, PRAYAGRAJ(ALLAHABAD),INDIA

व्हाट्सएप नं. : ९९९९९४२४९९

sahityamegh@gmail.com

४८३, अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) २११ ००३

ज़रूरी बातें (सम्पादकीय)	डॉ. दानिश	४
१. चिंकारा होने की आज़ादी	प्रेम जनमेजय	५
२. कविताएँ	निर्मला गर्ग	७
३. खो जाते हैं घर	सूरज प्रकाश	९
४. कसीनो - भारत में क्यों नहीं!	सरन घई	१७
५. गाँधी और स्त्रियाँ	डॉ. उषा किरण खान	२१
६. हिंदी की आत्मपहचान कितनी सुरक्षित है	शंभुनाथ	२२
७. आत्मकथाओं के संदर्भ में	प्रोफेसर इंदु वीरेंद्र	२३
८. कविताएँ	प्रफुल्ल कोलख्यान	३६
९. निर्गुण ढांचे की जान रैदास	प्रो. डॉ. राम आह्लाद चौधरी	३७
१०. कविता का अराजक काल	डॉ. श्याम सखा श्याम	४७
११. गज़ल	डॉ. श्याम सखा श्याम	५४
१२. हिन्दी के 'मुंशी'	डॉ. नीरज कृष्ण	५५
१३. क्रान्तिकारी चाहिए	गिरेन्द्रसिंह भदौरिया 'प्राण'	५८
१४. साहित्य ही उनका स्वाभिमान था साहित्य ही उनकी विनम्रता	कर्मन्दु शिशिर	५९
१५. कालिदास की उज्जयिनी	हरिशंकर राठी	६३
१६. कोरोना पर पेरुन देवी की कविताएं	अनुवाद: राजेश कुमार झा	६८
१७. कविताएँ	केशव शरण	६९
१८. कविताएँ	चन्द्रकान्ता	७०

१९. अभिव्यक्ति की आज़ादी का दायित्व और कीमत	डॉ. मोहसिन ख़ान	७१
२०. पांडेय जी और उचटते दिन	डॉ. लालित्य ललित	७५
२१. कविता	प्रमोद गौरी	७८
२२. क्यों बनाम क्यों : परमाणु शक्ति	हरिहर झा	७९
२३. खो जाते हैं घर-सूरज प्रकाश	कहानी समीक्षा- अनिला राखेचा	८१
२४. कविता	अनिला राखेचा	८२
२५. मंजिल के करीब	डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ल शरद आलोक	८३
२६. कविता	सलमा ख़ान	८६
२७. एक बेचैन रूह से साक्षात्कार	विनोद पाराशर	८७
२८. कविताएँ	मेधा झा	९०
२९. पानी और आसमान	डॉ. तबस्सुम जहां	९१
३०. कविता में जीवन के शाश्वत प्रसंग	राजीव कुमार झा	९३
३१. गाँवनामा और पिता का शोकगीत के लोकार्पण की रिपोर्ट	अभिनव यादव	९७
३२. आईना (पत्र)	पद्मश्री डॉ. उषा किरण खान, प्रोफेसर इंदु वीरेन्द्र, प्रफुल्ल कोलख्यान	१००

मुख पृष्ठ २ से सम्बंधित खबर

## साहित्य अकादमी द्वारा अलिखित भाषाओं में मौखिक महाकाव्य विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

### पश्चिमी, पूर्वी एवं दक्षिण भारत के अलिखित महाकाव्यों पर हुई चर्चा

नई दिल्ली ९ दिसंबर २०२१; साहित्य अकादेमी द्वारा 'अलिखित भाषाओं में मौखिक महाकाव्य' विषय पर आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आज समापन हुआ। आज का पहला सत्र 'पश्चिमी और पूर्वी भारत के महाकाव्य' विषय पर केंद्रित था, जिसकी अध्यक्षता पांडुरंग आर. फालदेसाई ने की। उपेंद्र अणु ने अपने आलेख में दक्षिण राजस्थान के बांगड़ क्षेत्र में प्रचलित अलिखित महाकाव्य गलालेंग के बारे में विस्तार से बताया। नीला शाह ने गुजरात के विभिन्न आदिवासी इलाकों में प्रचलित जीवंत रामायणों के बारे में अपना आलेख प्रस्तुत किया। महेंद्र कुमार मिश्र ने जातीय पहचान के रूप में मौखिक महाकाव्य विषय पर अपना शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत किया। सत्र के अध्यक्ष पांडुरंग आर. फालदेसाई ने गोवा क्षेत्र में प्रचलित लोकसाहित्य में रामायण और महाभारत की उपस्थिति का सारगर्भित विवरण प्रस्तुत किया।

संगोष्ठी का अंतिम सत्र दक्षिण भारत के अलिखित महाकाव्यों पर था। सत्र की अध्यक्षता के. मुथुलक्ष्मी ने की। सर्वप्रथम वीरेश वाडिगर ने कन्नड लोक महाकाव्यों में स्त्री पहचान के मुद्दे पर अपनी बात रखी तो डी. ज्ञानसुंदरम ने तमिळ भाषा के विभिन्न महाकाव्यों के बारे में विशद आलेख प्रस्तुत किया। एस. नागमल्लेश्वर राव ने तेलुगु की मौखिक काव्य परंपरा के बारे में अपने तथ्य रखे। सत्र की अध्यक्षता के. मुथुलक्ष्मी ने मलयाळम भाषा में मौखिक महाकाव्यों की परंपरा पर विस्तृत प्रकाश डाला। अंत में अकादेमी के उपसचिव एन. सुरेशबाबु ने सबके प्रति अपना आभार एवं धन्यवाद ज्ञापित किया। ज्ञात हो कि इस द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में पूरे देश से आए हुए बीस विद्वानों ने भाग लिया। ●●

## ज़रूरी बातें

### डॉ. दानिश

साहित्य मेघ का यह अंक जनवरी का अंक है। जनवरी का माह हमारे लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है कि हम इस महीने प्रतिवर्ष २६ जनवरी को गणतंत्र दिवस के रूप में मनाते हैं। इसके अतिरिक्त इसी माह विश्व हिंदी दिवस १० जनवरी को मनाया जाता है। विश्व हिंदी दिवस मनाने का एक उद्देश्य यह भी है कि हम हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए जागरूकता पैदा करें तथा हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में पूर्ण रूप से स्थापित करें। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन १० जनवरी १९७५ को नागपुर में आयोजित हुआ था। बाद में पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने १० जनवरी २००६ को प्रतिवर्ष विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाए जाने की घोषणा की थी। भारतीय विदेश मंत्रालय ने विदेश में १० जनवरी २००६ को विश्व हिंदी दिवस मनाया था।

गणतंत्र दिवस हो या विश्व हिंदी दिवस या और कोई दिवस हो हमें उसकी सार्थकता पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। उद्देश की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न महत्वपूर्ण होता है अन्यथा दिवस बनाने का कोई विशेष औचित्य नहीं रह जाता।

साहित्य मेघ के प्रथम अंक में हिंदी गज़ल के बारे में मैंने कहा था कि हिंदी गज़ल ऐसी हो जो उर्दू लिपि में लिखने के बाद भी उसे उर्दू गज़ल न कहा जा सके वह पूर्णता हिंदी गज़ल ही रहे। गज़ल अरबी कसीदे से निकलकर ईरान पहुंची और एक पृथक विधा बनी। उर्दू में गज़ल फारसी से आई। मैं चाहता हूँ कि गज़ल का बुनियादी ढांचा तो वही रहे जो उर्दू में है लेकिन हिंदी गज़ल में उर्दू शब्दों से परहेज किया जाए। इस बात पर हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. प्रताप सहगल ने एतराज किया और कहा के आप के इस विचार से शब्दों का विस्तार नहीं होगा। उनकी बात सच है मैं उनका सम्मान करते हुए कहना चाहता हूँ कि मैं उर्दू शब्दों से परहेज की बात केवल हिंदी गज़ल के लिए कह रहा हूँ क्योंकि हिंदी गज़ल में उर्दू शब्दों का प्रयोग करने से वह अपना वजूद खो देती है। दुष्यंत कुमार की गज़लों को आप देखिए अधिकांश शेर उर्दू शेर लगने लगते हैं मेरा शेर है:

उलझ गए हैं कई उसके शब्दजालों में  
समझ रहे थे जिसे पाठशाला का शिक्षक

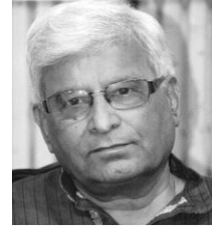
इस शेर को आप किसी भी लिपि में लिख दीजिए, हिंदी शेर ही कहलाएगा। इस तरह हमारी हिंदी गज़ल अपनी अलग पहचान बना सकेगी। हिंदी में एक से एक अच्छी गज़ल कहने वाले मौजूद हैं केवल थोड़ा शब्दों के परहेज से बात अच्छी बन सकती है। हम आशा करते हैं कि इस प्रकार की गज़लें हमें शीघ्र प्राप्त होगी जिन्हें हम सहर्ष प्रकाशित करेंगे।

साहित्य मेघ का जुलाई २०२२ का अंक गज़ल विशेषांक होगा। अपने गज़ल कारों से बहुत ही विनम्र निवेदन एवं आग्रह करता हूँ कि वह अपनी अपनी गज़लें शीघ्र अति शीघ्र हमें भेजें ताकि हम गज़ल विशेषांक समय पर प्रकाशित करके आपको भेज सकें।

इस अंक में बहुत सारी त्रुटियां होगी। निवेदन है कि हमारी त्रुटियों को हमें बताया जाए ताकि हम अगला अंक बेहतर से बेहतर प्रकाशित कर सकें।

वरिष्ठ साहित्यकार और हमारे परामर्श मंडल के वरिष्ठतम सदस्य डॉ. प्रताप सहगल का विशेष सहयोग हमारे लिए सौभाग्य की बात है। ईश्वर उन्हें सदा अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घायु दे।





प्रेम जनमेजय

## चिंकारा होने की आज़ादी

### प्रेम जनमेजय

मेरे दाँत में भयंकर दर्द था। जब दर्द भयंकर हो तो आप दर्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच पाते हैं। वह दर्द रोटी का हो, बेरोजगारी का हो, फसल बरबाद होने का हो या फिर रेप पीड़िता का। इस दर्द के कारण आपको नींद नहीं आती है और आप सुनहरे सपने भी नहीं देख पाते हैं। ऐसे में आपको किसी डॉक्टर के पास जाना ही होता है। निर्भर करता है कि डॉक्टर आपका ईलाज करने वाला है या फिर इलाज के नाम पर आपको लूटने वाला।

मैं अपने दाँतों के डॉक्टर अहूजा के पास गया। डॉक्टर ने कहा - मुँह खोलो।

दाँतों का डॉक्टर ही जिसके सामने मैं मुँह खोल सकता हूँ। दाँतों का डॉक्टर ही है जो मुँह खोलने की पूरी आजादी देता है, कहता है- और मुँह खोलो।

सब जानते हैं कि हम १५ अगस्त १९४७ को आज़ाद हुए थे। सब जानते हैं कि हमारे देश में प्रजातंत्र है। सब जानते हैं कि प्रजातंत्र में सभी को मुँह खोलने का अधिकार है। पर बहुत कम जानते होंगे कि खुले मुँहों को बंद करने का सर्वाधिकार कुछ लोगों के पास सुरक्षित है। आप किसी भी चैनल में बहस सुन लें, अखबार पढ़ लें पता चल जाएगा कि आप चारों ओर से मुँह बंद करने वालों से घिरे हुए हैं। प्रजातंत्र में आप मुँह खोलने को स्वतंत्र हैं तो आपका मुँह बंद करने वाले भी स्वतंत्र हैं।

मेरे खुले मुँह में डॉक्टर अपना हथियार चलाने लगा। मुझ बुजुर्ग को दर्द कम हो इसलिए वह बतरस के द्वारा मेरा ध्यान भी बंटाता रहता है। अपनी बतरस से आपका ध्यान बांटनवाले, आपने चुनाव के समय देखे ही होंगे। डॉक्टर को मेरे सड़े दाँत का चुनाव करना था। आप भी तो चुनाव में कुछ

सड़े...

डॉक्टर ने पूछा - और क्या चल रहा है?’

आपके मुँह में हथियार विचरण कर रहे हों तो आप अस्पष्ट -सी गों गों आवाज निकाल सकते हैं। मैंने भी गों गों किया।

डॉक्टर ने फिर हथियार घुमाया, कुछ किया और बोला - कुल्ला कर लें।

मैंने कुल्ला किया तो उसने अगला हथियार तैयार करते हुए पूछा - आपका पेंशन केस कोर्ट में था न, उसका क्या हुआ ?’ उसे मेरे पेंशन की चिंता इसलिए है कि मेरी पेंशन लगेगी तो मैं दाँतों को इम्प्लांट करने वाला खर्चीला इलाज उससे करवा लूँगा।

मैंने कहा - पिछले तेईस वर्ष से तो लग रहा है कि न्याय मिलेगा।

वह हँसा - स्वीट ट्वेन्टी थ्री। अरे मास्टर जी जब तेईस बरस में चिंकारा को न्याय नहीं मिला तो आपको कहां से मिल जाएगा? न्याय मिलता नहीं, खरीदना पड़ता है।

- खरीदना पड़ता है! किससे खरीदना पड़ता है ?

- मंहगे वकील से, बिके हुए गवाह से, खरीदे पुलिस वाले से, और ... ।’ इसके बाद उसने मुँह बंद कर लिया। न्यायालय की मानहानि के डर ने उसका मुँह बंद कर दिया था।

मैंने कहा - इसका मतलब चिंकाराओं को न्याय नहीं मिल सकता।

वह बोला - उनको तो चित्रगुप्त के दरबार में मिलता है। पर वहां भी बहुत भीड़ है, बरसों लग जाते हैं नंबर आने में।’

- बरसों लग जाएं, पर न्याय तो सही मिलता है न, खरीदना तो नहीं पड़ता।

मेरा दर्द कम करने के लिए, उसने सुन्न करने वाला इंजेक्शन ठोका। आपका दर्द कम करने के लिए मुआवजे का इंजेक्शन भी ठोका जाता है। मैं वर्तमान से सुन्न हो गया और चित्रगुप्त के दरबार में पहुंच गया।

चित्रगुप्त का दरबार सजा है। चित्रगुप्त थके हुए हैं। काम के बोझ से चित्रगुप्त हर समय थके हुए ही रहते हैं जैसे मल्टीनेशनल में काम करने वाले युवा। चित्रगुप्त को केवल मनुष्य के नर्क-स्वर्ग का लेखा-जोखा ही नहीं देखना है चैरासी लाख योनियों का हिसाब- किताब बिठाना है। हर योनि की बारी आती है। हर योनि को न्याय मिलता है। यहां देर है अंधेर नहीं क्योंकि यहां न्याय बिकता नहीं है मिलता है। चित्रगुप्त को चाय-पानी पीने तक की फुरसत नहीं है। वैसे इस दरबार में चाय -पानी चलता भी नहीं है। चाय तो सांसारिक पेय है। यहां चाय वाला छोटू भी नहीं है।

अब पशु योनी की बारी है। अब चिंकारा की बारी है। चिंकारा चित्रगुप्त से अधिक थका है। काम उतना नहीं थकाता है जितनी न्याय की प्रतीक्षा थकाती है। चित्रगुप्त ने चिंकारा की थकान महसूस ली, धरती में इस प्रतीक्षा को नहीं महसूस जाता। चित्रगुप्त बोले- बहुत थके हुए हो ? मायूस भी हो।

- थका तो मैं इसलिए हूँ कि सन् १९९८ में मरा था और आज मेरी बारी आई है। इंतजार में थक गया हूँ। शुक्र है कि मेरी बारी आ गई और अब तो न्याय मिलेगा ही। मायूस इसलिए हूँ कि धरती पर मुझे न्याय दिलाने के लिए जो लड़ रहे हैं वे मायूस हैं। उनकी बारी आ गई पर न्याय की बारी नहीं आई।

- हुं तो तुम मरे नहीं तुम्हें मारा गया।  
- आप उचित जानते हैं।  
- तुम्हारे कर्मों का लेखा जोखा कहता है कि यह तुम्हारी नियति थी। तुम्हें ऐसे ही मरना था।  
- हमारी नियति तो बदल नहीं सकते पर धरती पर न्याय की नियति तो बदल सकते हैं, बदलें प्रभु ! एक निवेदन है प्रभु!

- कहो।  
- जैसे मनुष्यों की जाति, धर्म आदि होता है, हमारी भी जाति और धर्म बना दें।  
- क्यों ?  
- प्रभु यदि मैं दलित होता, हिंदू-मुस्लिम सिक्ख

इसाई होता तो मुझे न्याय दिलाने वाले संसद हिला देते। मेरे लिए आंदोलन हो जाते। मेरे हितचिंतकों को न्याय अवश्य मिलता।

- जाति धर्म की व्यवस्था तो मनुष्य ने बनाई है, हमने नहीं।

- पर मनुष्य के कर्म का निर्धारण तो यहां होता है।

- चिंकारा तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि तुम धर्म और जाति के बंधन से विहीन हो। तुम स्वतंत्र हो। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, बताओ किस योनी में जाना चाहोगे?

- मनुष्य योनी में तो बिल्कुल नहीं।

- क्यों, यह तो सर्वश्रेष्ठ योनी है। मनुष्य योनि तो चैरासी लाख योनियों के बाद मिलती है।

- पर मैं धर्म जाति आदि के बंधन से विहीन रहना चाहता हूँ, चित्रगुप्त!

और चित्रगुप्त ने चिंकारा को न्याय दे दिया।



### परिचय

प्रेम जनमेजय: जन्म : १८ मार्च १९४९, इलाहाबाद।

एम.ए., एम. लिट., पीएच-डी.।

वर्तमान समय की व्यंग्य विद्या के संवर्धन एवं सृजन के क्षेत्र में सक्रिय एक प्रमुख नाम।। व्यंग्य के प्रति गंभीर एवं सृजनात्मक चिंतन के चलते ही उन्होंने सन् २००४ में व्यंग्य केंद्रित पत्रिका 'व्यंग्य यात्रा' का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्रिका ने व्यंग्य विमर्श का मंच तैयार किया। प्रेम जनमेजय के लिखे व्यंग्य नाटकों को भी अपार ख्याति मिली है। अतिथि आचार्य के रूप में त्रिनिदाद एवं विश्व हिंदू सम्मेलनों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के चलते हिंदी भाषा और प्रवासी साहित्य के विश्लेषक।

प्रेम जनमेजय का पहला संकलन 'राजधनी में गंवार' बहुत चर्चित रहा। इसके प्रकाशन को हिंदी जगत में महत्वपूर्ण माना गया। सीता अपहरण केस चर्चित नाटक। अब तक १३ व्यंग्य संकलन, ३ व्यंग्य नाटक, २ संस्मरणात्मक कृतियाँ।

हरिशंकर परसाई स्मृति सम्मान,  
शरद जोशी पुरस्कार, व्यंग्यश्री सम्मान, पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी सम्मान, हिंदी अकादमी  
चार वर्ष यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टइंडीज में अतिथि आचार्य रहे। दिल्ली विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज़ से २०१४ में सेवानिवृत्त।  
premjanmejai@gmail.com



निर्मला गर्ग

## कविताएँ निर्मला गर्ग

### धरती खोलती है पुराना एलबम

जब कहीं कुछ नहीं होता  
एक शान्त नीली झील में सुस्ताती है सारी हलचलें  
वक्त बस झिरता है धीमे झरने - सा  
धरती खोलती है पुराना एलबम

जगह- जगह आँसुओं के और खून के धब्बे हैं उस पर  
अनगिनत वारदाते घोड़ों की टापें  
धूल और बवंडर के बीच  
याद करती है धरती वे तारीखें  
साफ किया है जिन्होंने उसकी देह का कीचड़  
धोया है मुँह बहते पसीने से

याद करेगी धरती अभी कई चीजें और  
और कई चेहरे

### जिंदगी का नमक

वह स्त्री मिली थी मुझे छोटानागपुर जाते हुए रेल में  
बैठी थी गठरी लिए संडास के पास

फिर और बहुत सारी स्त्रियां मिलीं  
पूछती हुई-  
दर्ज करती है क्या कविताएँ हमारे तसलों का खालीपन  
जानती है क्या हमारी गठरियों में रखे अनाज को  
उसके कितने हिस्से में घुन है

कितने में लानत...

उनके चेहरों पर मौसम के जूतों के निशान थे  
उनकी जिंदगी का नमक उड़ा था हाट- बाज़ार

### पक्ष

मौसमी का रस एक गुास पाँच बजे शाम को  
मैं पीती हूँ रोज  
जो बच्चा निकालता है इसे  
वह कभी नहीं पीता एक घूँट

मौसमी के रस की दरकार मुझे ज़्यादा है  
या उस बच्चे की निस्तेज देह को  
इसका फ़ैसला नहीं करती संसद  
न्यायालय नहीं करता

संसद और न्यायालय मेरे पक्ष में हैं

### चीड़ वन

वर्षा में भीगकर ताज़ा हो आए चीड़ वन !  
साझा करना चाहती हूँ तुमसे  
निराशाएँ  
जब्बा कर लो अपनी हरी सुइयों में  
मेरा अवसाद

बादल तुमसे लिपट लिपट जाते हैं

सुनाते हैं वे अपनी आवागामी की कथाएँ तुम्हें  
हवा जिन्हें लिपिबद्ध करती है

तुम्हारे आसपास घास पत्ते और छोटे छोटे नारंगी फूल  
खिले हैं  
जिस मिट्टी ने इन्हें जन्म दिया  
उसका बचपन सुखद रहा होगा

मैं अपनी धुरी ढूँढ रही हूँ  
खो गई है वह घने कुहरे में  
खो गए हो जैसे तुम चीड़ वन!

### प्रति व्यक्ति खुशी

किससे तुलना करूँ मैं उस प्यार की  
जो मैं तुम्हारे लिए महसूस करती हूँ

उसे यदि विस्तार दूँ  
पर्यवसित करूँ किसी देश में  
तो क्या नाम लूँ? अमेरिका ? नहीं  
हालाँकि वह सबसे बड़ा और सबसे ज़्यादा बिकाऊ  
सपना है

मैं कहूँगी भूटान!  
भूटान के प्रवेशद्वार जैसी है मेरी कामना  
भूटान ही है जहाँ तुम्हारे थोड़े से साथ को  
मैं एक सदी में बदल दूँगी

और देशों की तरह नहीं है भूटान  
प्रति व्यक्ति आय की जगह अहमियत है उसके लिए  
प्रति व्यक्ति खुशी की  
अहमियत है जैसे मेरे लिए तुम्हारी गर्म हथेलियों में रखे  
अपने विश्वास की

### फेयर एंड लवली

फेयर एंड लवली की सालाना बिक्री है आठ हजार  
करोड़  
कविता की किताब छपती है मात्र तीन सौ

फेयर एंड लवली, गौरा रंग  
गौरा रंग, सुंदर दिखना  
सुंदर दिखन, स्त्री होना

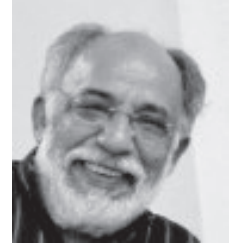
स्त्री जो कविताएँ लिखती है  
स्त्री जो कविताएँ पढ़ती है  
इस फार्मूले से बाहर होती है  
कविताएँ जुटी रहती है चींटी-सी  
समाज की संरचना को बदलने के लिए  
फेयर एंड लवली अंगूठा दिखाती है  
उस श्रम को ।

### निर्मला गर्ग जी

निर्मला गर्ग (जन्म : दरभंगा ) के अबतक चार कविता संग्रह  
प्रकाशित हैं : यह हरा गलीचा ( १९९२ ), कबाड़ी का  
तराजू ( २००० ), सफ़र के लिए रसद ( २००७ ),  
दिसम्बर का महीना मुझे आखिरी नहीं लगता ( २०१२ ) ।  
अनिश्चय के गहरे धुँए में कविता संग्रह का प्रकाशन  
अक्टूबर २०२१ में सम्भावित।  
कविता- संग्रह ' दूसरी हिंदी ' का सम्पादन ( २०१७ ) ।  
'कबाड़ी का तराजू ' को हिंदी अकादमी दिल्ली का कृति सम्मान।

पता : ८३३ शैरोन टावर  
गौड़ सौन्दर्यम ,  
नोयडा एक्सटेंशन,  
गौतमबुद्ध नगर ,  
उत्तर प्रदेश - २०१३०६  
फोन : ९७९७९६३७५६  
nirmalag.garg@gmail.com





सूरज प्रकाश

## खो जाते हैं घर

सूरज प्रकाश

बबू क्लिनिक से रिलीव हो गया है और मिसेज राय उसे अपने साथ ले जा रही हैं। उन्होंने क्लिनिक का पूरा पेमेंट कर दिया है।

- ओ के डाक्टर, तो फिर मैं इसे ले जा रही हूँ। कोई भी बात होगी तो मैं आपको फोन पर बता दूंगी। वे चलते समय डॉक्टर की अनुमति लेती हैं।

डॉक्टर ने उन्हें निश्चित किया है - ठीक है मैडम, आप इसे दवाएं देती रहें। कुछ ही दिनों में बिलकुल ठीक हो जायेगा। ओ के बबू, बाय। आंटी को परेशान नहीं करना।

बबू ने कमज़ोर आवाज़ में कहा है - नहीं करूंगा। डॉक्टर ने बबू के गाल सहला कर उसे गुड बाय कहा है।

वे एक बार फिर डॉक्टर को याद दिला रही हैं - अगर वो आदमी आये इस बच्चे के बारे में पूछने तो मुझे तुरंत खबर करें। प्रीज़।

डॉक्टर ने उन्हें आश्वस्त किया है - श्योर, श्योर, हालांकि अब इतने दिन बीत जाने के बाद उसके आने की बाद उम्मीद कम ही है, लेकिन जैसे ही वो आया, मैं आपको तुरंत खबर कर दूंगा। मुझे अभी भी यही लग रहा है कि उसने इस बच्चे को कहीं बुखार में तड़पते देख लिया होगा और खुद इसका इलाज कराने की हैसियत नहीं रही होगी इसलिए इसे यहां छोड़ गया।

- मुझे भी कुछ ऐसा ही लगता है। उसका अपना बच्चा होता कि कैसे भी करके एक बार तो ज़रूर ही मिलने आता ही। लेकिन बीच बीच में ये दूसरे बच्चों की

कहानियां सुनाता रहा है, उससे मामला और उलझ गया है। मिसेज राय ने अपनी आशंका व्यक्त की है।

-मेरे ख्याल से बच्चे के पूरी तरह से ठीक हो जाने के बाद ही सारी बातों के बारे में बेहतर ढंग से पता चल सकेगा।

- हां मेरा भी यही ख्याल है कि बच्चा अभी भी सारी बातें सिलसिलेवार नहीं बता पा रहा है। कुछ दिन तो इंतजार करना ही पड़ेगा।

मिसेज राय ने ड्राइवर से सारा सामान उठाने के लिए कहा है और वार्ड बॉय को इशारा किया है बच्चे को कार में बिठा देने के लिए।

बबू को कार में आराम से बिठा देने के बाद वे खुद कार में आयी हैं।

बबू जिंदगी में पहली बार किसी कार में बैठा है और हैरानी से सारी चीजें देख रहा है। बहुत ज्यादा आरामदायक सीटें, ठंडी-ठंडी हवा, बहुत हौले हौले बजता संगीत और पानी पर चलती-सी कार। वह शीशे से आंखें सटा कर बाहर का नजारा देखना चाहता है।

मिसेज राय उसे आराम से बिठा कर खिड़की के नजदीक सरका देती हैं।

वह अचानक कार में से अनुपस्थित हो गया है और बाहर भागती दौड़ती दुनिया में शामिल हो गया है। मिसेज राय उसके सिर पर हौले-हौले उंगलियां फिरा रही हैं। वे अपनी तरफ से कुछ कह कर या पूछ कर बच्चे और उसकी दुनिया में बाधक नहीं बनना चाहतीं। उन्हें कोई जल्दी नहीं है।

बबू थोड़ी ही देर में कार के भीतर की दुनिया में लौटता है और उनसे आंखें मिलाता है।

वे मुस्कुराती हैं।

बबू भी उनकी मुस्कुराहट के बदले अपने चेहरे पर कीमती मुस्कुराहट लाने की कोशिश करता है।

उसका गाल सहलाते हुए पूछती है वे - बेटे, अब कैसा लग रहा है?

वह हौले से कहता है - ठीक।

बदले में वह उनसे पूछता है - हम कहां जा रहे हैं?

-घर, क्यों?

-किसके घर?

-अपने घर और किसके घर?

-आपका घर कहां है?

-लोखंड वाला में।

बबू चुप हो गया है। उसे सूझ नहीं रहा कि बात को आगे कैसे बढ़ाये। कभी किसी से उसने इतनी और इस तरह की बातें की ही नहीं हैं।

वह कुछ सोच कर अपने आप ही कहने लगता है - मेरा घर तो बहुत दूर है।

-कहां है तुम्हारा घर मेरे बच्चे? उन्हें उम्मीद की कुछ किरणें नज़र आयी हैं।

-पता नहीं। बच्चे ने एक बार फिर उन्हें मझधार में छोड़ दिया है।

-अच्छा वो आदमी कौन था जो तुम्हें अस्पताल में छोड़ गया था?

-मुझे नहीं पता।

- अच्छा इतना तो पता होगा कि तुम कहां रहते थे और किसके साथ रहते थे?

- दोस्तों के साथ।

- कहां?

- पुल के नीचे।

- जगह याद है?

- नहीं।

- कोई खास बात याद है उस पुल के बारे में?

- उधर मच्छर बहुत थे। रात भर काटते रहते

थे।

- बंबई आये कितने दिन हुए होंगे तुम्हें?

- पता नहीं।

- खाना कहां खाते थे?

- कहीं भी खा लेते थे।

- सारा दिन क्या करते रहते थे?

- कुछ भी नहीं।

- तुम्हारे वो दोस्त कहां मिल गये थे जिन्हें तुम्हें

रोज याद करते थे?

- वहीं पुल के नीचे।

- क्या करते थे वो लोग?

- सब अलग अलग काम करते थे।

- तो तुम्हारा ख्याल कौन रखता था?

- सब रखते थे।

- खाना पीना?

- सब मिल कर खाते थे।

- तो तुम क्या करते थे?

- कुछ नहीं, मैं तो बहुत छोटा हूँ ना... ..।

-लेकिन हो उस्ताद। छोटू उस्ताद।

- मैं उस्ताद थोड़ी हूँ।

-अच्छा, अपने घर की याद है तुम्हें?

-हां।

- कौन कौन है तुम्हारे घर में ?

-बाबू, अम्मा, दीदी.. भाई..।

- तुम बंबई में कैसे आ गये?

- ट्रेन में।

- कब की बात है?

- पता नहीं।

- तुम लोग बंबई क्या करने आ रहे थे?

- शादी में।

- और कौन थे साथ में?

- सब थे।

- तो तुम उनसे अलग कैसे हो गये?

- पता नहीं।

- तुम्हारे मां बाप तुम्हें ट्रेन में छोड़ गये थे क्या?

- मुझे क्या पता।

- तुम कितने भाई-बहन हो?

- चार।

- अच्छा .. ..। तो तुम्हें बिलकुल याद नहीं है

कि कहां पर है तुम्हारा घर?

- बहुत दूर।
- लेकिन कहां?
- गांव में।
- गांव का नाम याद है?
- ज्वालापुर।
- और स्कूल का?
- आदर्श स्कूल।
- और पिता जी का नाम?
- बाबू।
- और मां का?
- पता नहीं।
- बाबू क्या करते हैं?
- दुकान हैं।
- तुम्हें तो बेटे कुछ भी अच्छी तरह याद नहीं या पता नहीं। ऐसे में अपने घर कैसे जाओगे?
- पता नहीं।
- अपने बाबू अम्मा से कैसे मिलोगे?
- पता नहीं।

बबू इतने सारे सवालों से थक गया है। और फिर उसे अपने घर की भी याद आने लगी है। उसने अपनी आंखें मूंद ली हैं। मिसेज राय भी समझ रही है कि उससे इतने सारे सवाल एक साथ नहीं पूछने चाहिये थे।

वे उसे चुप ही रहने देती हैं।

अचानक बबू ने आंखें खोली हैं - आंटी आप क्या करती हैं?

- क्यों बेटे?
- वैसे ही पूछा, आपकी गाड़ी बहुत अच्छी है। ठंडी ठंडी।

- तुम्हें अच्छी लगी?  
- हां, आप भी।  
- अरे बाप रे, हम भी तुम्हें अच्छे लगे, भला क्यूं?

- आप रोज आती थी हमसे मिलने। इत्ती सारी चीजें लाती थीं और मारती भी नहीं थी।

- मैं क्यूं मारने लगी तुम्हें मेरे बच्चे? तुम तो इतने प्यारे, इतने अच्छे बच्चे हे, भला कोई तुम्हें क्यों मारने लगा?

- बाबू नहीं मारते थे। अम्मा मारती थी, दीदी,

भइया मारते थे।

- बहुत खराब थे वो लोग। तुम्हें तो कोई मार ही नहीं सकता।

तभी उन्होंने ड्राइवर से कहा है - ड्राइवर, जरा सामने रेडीमेड कपड़ों की दुकान के आगे गाड़ी तो रोकना। अपने राजा बाबू के लिए कुछ कपड़े तो ले लें।

- मैं क्या करूंगा कपड़े? बबू ने अपना जिक्र सुन कर पूछा है।

- क्यों, कपड़ों का क्या करते हैं?
- पहनते हैं। मैंने भी तो पहने हुए हैं।
- तुम इतने दिन से अस्पताल में थे ना, अब घर जा रहे हो इसलिए अच्छे कपड़े तो चाहिये ही ना। और खिलौने भी। बोलो कौन सा खिलौना पसंद है?
- हम घर पर खिलौनों से थोड़े ही खेलते थे।
- तो किस चीज से खेलते थे मेरे बच्चे?
- वैसे ही खेलते रहते थे।
- बहुत भोले हो तुम बेटे, बच्चों के तो खिलौनों से खेलना ही चाहिये। है ना?

गाड़ी एक स्टोर के सामने रुकी है। मिसेज राय बच्चे को ड्राइवर के साथ वहीं कार में ही छोड़ कर भीतर जा कर बच्चे के लिए ढेर सारे कपड़े और खिलौने ले कर आयी है।

कार में आते ही उन्होंने ड्राइवर से कहा है - अब सीधे घर चलें। हमारे बेटे को भी आराम करना चाहिये। है ना मुन्ना? वे उसकी तरफ देख कर पूछती हैं।

वह सिर हिलाता है।

गाड़ी लोखंड वाला कॉम्पलैक्स में एक बहुत ही बड़ी और भव्य इमारत के आगे रुकी है। वे बच्चे को आराम से नीचे उतारती हैं। दोनों लिफ्ट तक आते हैं। बच्चा हैरानी से सारी भव्यता देख रहा है। उसके लिए ये दुनिया बिलकुल अनजानी और अनदेखी है।

लिफ्ट आने पर दोनों भीतर आये हैं।

बच्चा लिफ्ट में पहली बार आ रहा है और हैरानी से पूछता है - आंटी, ये कमरा क्या है?

वे हंस कर बताती हैं - बच्चे ये कमरा नहीं है। ये लिफ्ट है। इससे ऊपर जाते हैं।

- अच्छा ये लिफ्ट है। टीवी पर एक बार पिक्चर में देखी थी।

वे अपनी मंजिल पर पहुंच गये हैं।  
वे एक दरवाजे की घंटी बजाती हैं। दरवाजा बाड़  
ने खोला है। वे उसे ले कर भीतर गयी हैं।

नौकरानी ने उनके हाथ से सामान ले लिया है  
और बच्चे को देख कर कहती है - हाय, किती छान  
मुलगा आहे। किसका है मेमसाहब?

वे गर्व से बताती हैं - हमारा मेहमान है। अभी  
हमारे साथ ही रहेगा और सुनो, ये बाबा बीमार है। इसके  
लिए हलका खाना बनाना। पूरा ख्याल रखना इसका।  
ठीक ..।

- ठीक है मेमसाहब। उसके हाथ बच्चे के गाल  
सहलाने के लिए मचलते हैं लेकिन वह खुद पर कंट्रोल  
करती है। बहुत मौके आयेंगे इसके। वह चुपचाप भीतर  
सामान रखने चली गयी है।

अपने कमरे में जाते ही उन्होंने बच्चे को भींच  
कर अपने सीने से लगा लिया है। वे ज़ोर ज़ोर से रोये जा  
रही हैं। वे उसे भींचे भींचे - मेरे लाल, मेरे लाल कहे जा  
रही हैं। उन्हें रोते देख बच्चा घबरा गया है और वह भी  
रोने लगा है।

- आंटी आप रो क्यों रही हो?

- अरे पागल, मैं रो कहां रही हूं, ये तो .. ये  
तो.. खुशी के आंसू हैं।

- आंटी, खुशी के आंसू कैसे होते हैं।

- बहुत सवाल करता है रे। आदमी जब बहुत  
खुश होता है ना, तब भी रोता है।

- मैं तो जब भी रोता हूं तो खुशी के आंसू थोड़े  
ही आते हैं। जब गिर जाता हूं या भूख लगती है तो मैं तो  
सचमुच रोता हूं। आंटी, आपको चोट लगती है तो आप  
रोती हैं क्या?

- पगले, बड़ों को जब चोट लगती है ना.. तो वो  
चोट नजर नहीं आती। बस, पता चल जाता है कि चोट  
लग गयी है। समझे बुद्धू राम ..।

- नहीं।

- तू नहीं समझेगा मेरे लाल। आ मैं तुझे समझाती  
हूं।

उसे ले कर एक तस्वीर के सामने ले कर आती  
हैं, लगभग पांच साल के एक गदबदे बच्चे की तस्वीर है।  
मुस्कुराते हुए बच्चे की तस्वीर।

- आंटी, ये किसकी तस्वीर है?

- बेटे, ये मेरे पोते की तस्वीर है।

- पोता क्या होता है?

- अरे बाप रे, कैसे बताऊं कि पोता क्या होता  
है। अच्छा देख। तू बेटा तो समझता है ना। जैसे तू अपने  
बाबू का बेटा है।

- हां।

- तो जो तेरा बेटा होगा ना वो तेरे बाबू का पोता  
होगा।

- मेरा बेटा कैसे होगा? मैं तो इतना छोटा सा  
हूं।

- अरे जब तेरी शादी होगी तब तेरा बेटा होगा  
ना वो तेरे बाबू का पोता होगा। समझे?

- नहीं समझा।

- कोई बात नहीं। ये मेरे पोते की तस्वीर है।

- क्या नाम है आपके पोते का?

- मेरे पोते का नाम है रिक।

- आंटी ये कैसा नाम है रिक?

- बेटे, जहां वह रहता है वहां ऐसे ही नाम होते  
हैं।

- कहां रहता है वह?

- फ्लोरिडा में।

- ये कहां है?

- बहुत दूर। सात समंदर पार।

- आंटी समंदर क्या होता है?

- समंदर माने, समंदर माने.. चलो, एक काम  
करते हैं, तुझे शाम को समंदर दिखाने ले चलेंगे। अपने  
आप देख लेना।

- आप उसे अपने पास क्यों नहीं रखती आंटी?

वे फिर से रोने लगी है - पगले मैंने उसे आज  
तक देखा ही नहीं है। कितनी अभागी हूं। मेरा पोता पांच  
साल का हो गया और आज तक मैंने उसे देखा ही नहीं।  
पास रखने का बात तो दूर है। कभी कभी फोन पर उसकी  
आवाज सुन लेती हूं तो मेरे कलेजे में ठंडक आ जाती है।

- आपने उसे देखा क्यों नहीं है आंटी?

- मेरा बेटा कभी उसे यहां ले कर आया ही  
नहीं।

- क्यों?

- उसके पास टाइम ही नहीं है। वह खुद भी अब यहां नहीं आता।

- क्यों नहीं आता?

- इन सारे सवालों का जवाब मेरे पास नहीं है बेटे। होता तो क्या तुझे अपने सीने से लगा कर रोती पगले।

बच्चा समझ नहीं पाता इतनी सारी बातें और उनके बंधन से अपने आप को मुक्त कर लेता है। अब अलग होने के बाद उसका ध्यान घर पर, वहां रखे इतने सारे सामान पर और शानो शौकत पर गया है। उसने पूरे घर का एक चक्कर लगाया है और लौट कर उनके पास वापिस आया है।

- आंटी इतने बड़े घर में आप अकेली रहती हैं?

सिर हिला कर बताती है - हां।

- आपको डर नहीं लगता?

- लगता है।

- किससे?

- बेटे, एक डर हो तो बताऊं। कभी अपने आपसे डर लगता है तो कभी अपने अकेलेपन से डर लगता है। कभी अपने बुढ़ापे से डर लगने लगता है। बोल तू मेरे साथ यहां रहेगा मेरा डर दूर करने के लिए?

- मेरे रहने से आपका डर दूर हो जायेगा आंटी?

- तू नहीं जानता मेरे बेटे तू कितना प्यारा है तेरे यहां रहने से इस घर का सारा अंधेरा दूर हो जायेगा।

- आंटी आप जोक मारती हैं। घर में अंधेरा कहां है। इतनी रोशनी है।

- हां बेटे, बाहर से ही तो रोशनी नजर आती है। भीतर का अंधेरा ऐसे ही थोड़ी नजर आता है। बोल ना रहेगा मेरे पास। मैं तुझे खूब पढ़ाऊंगी। अच्छे स्कूल में तेरा एडमिशन कराऊंगी। तू खूब पढ़ लिख कर फिर मेरी मदद करना। मेरा डर दूर करना। करेगा?

- लेकिन मेरे दोस्त?

- दोस्त तो ठीक है बेटे लेकिन हम उन्हें दूढ़ें कहां? तुम्हें सिर्फ पुल के अलावा कुछ भी तो याद नहीं? कितना अच्छा होता तुम्हारे मां बाप भी मिल जाते।

- लेकिन मैं दोस्तों के पास ही जाऊंगा।

- अच्छा एक काम करते हैं। तुम जरा ठीक हो जाओ तो बंबई में जितने भी पुल हैं हम सब जगह जायेंगे

और तुम्हारे दोस्तों का पता लगायेंगे। चलोगे न हमारे साथ?

- चलूंगा। आंटी कबीरा मेरा बहुत ख्याल रखता है। और फिर मोती भी तो है। मैं आपको सबसे मिलवाऊंगा।

- ये मोती कौन है?

- आंटी मोती हमारा कुत्ता है। बहुत सयाना है। झट से बता देता है कि दोस्त कौन है और दुश्मन कौन।

- अरे वाह कैसे बता देता है भाई?

- आंटी, वे जब किसी को देख कर सिर हिलाये तो इसका मतलब है कि वो दोस्त है और जब किसी को देख कर भौंकना शुरू कर दे तो इसका मतलब है कि सामने वाला दुश्मन है।

- अरे वाह, ये तो बहुत मजेदार बात है। हमें मिलवायेगा तू मोती से?

- हां आंटी और एक गप्पूक भी है हमारे साथ। हर समय उसकी निकर नीचे उतरती रहती है। खूब मजा आता है।

- अरे वाह, चल बेटे अब तू आराम कर ले जरा। मैं भी कुछ काम धाम निपटा लूं। जब भूख लगे तो मुझे या माया आंटी को बता देना। ठीक है। लो इस कमरे में आराम करो, ठीक है। बाद में बात करेंगे।

- अच्छा आंटी।

- अब से तुम इसी कमरे में रहोगे।

- ये इत्ता बड़ा कमरा मेरे अकेले के लिए?

- क्यों? डर लगता है क्या?

- नहीं। ठीक है आंटी।

बबू लोट तो गया है लेकिन उसे नींद नहीं आ रही। ये सारी चीजें, यहां का माहौल और तामझाम उसकी कल्पना से परे हैं। वह उठ बैठा है। वह पूरे घर में घूम घूम कर देख रहा है। सारी चीजें उसके लिए नई हैं और उसने पहले कभी नहीं देखी हैं। वह कभी स्टीरियो देखता है तो कभी रंगीन टैलिफोन। कभी कभी तस्वीरें देखता है और मूर्तियां। जब चारों तरफ की चीजें देख चुका तो वह आंटी के दिये खिलौने अकेले खेलने लगा। वह देर तक अकेले बैठे उन सारे खिलौनों को उलटता पलटता रहा। उसकी दिक्कत ये है कि ज्यादातर खिलौने या तो बैटरी वाले हैं या उन्हें चलाना उसके बस में नहीं। थक हार कर उसने सारी चीजें एक तरफ सरका दी हैं।

मिसेज राय बच्चे को जुहू घुमा कर लायी है। उसने अपनी जिंदगी में पहली बार समुद्र देखा है। बेशक वह तीन महीने से मुंबई में भटक रहा था लेकिन पता नहीं कैसे वह समुद्र तक पहुंच नहीं पाया। उसे कोई भी उस तरफ नहीं ले कर गया। वह समुद्र से मिल कर बहुत खुश हुआ और पानी में खूब अठखेलियां की उसने। बेशक मिसेज राय डर रहीं थी कि बच्चा अभी ही तो बीमारी से उठा है, कहीं समुद्र की ठंडी हवा उस पर कोई असर न कर दे, लेकिन बच्चा मस्त हो कर पानी से खूब खेलता रहा। वह कभी लहरों से दूर भागता तो कभी पानी के एकदम पास जाना चाहता। मिसेज राय ने खुद भी उसके साथ झूले में बैठी, घोड़ा गाड़ी की सवारी की और गुब्बारे ले कर उसे साथ साथ गीली रेत पर दौड़ती रहीं। उन्होंने अरसे बाद अपने आप को पूरी तरह से भूल कर, बच्चे के साथ बच्चा बन कर एक नया अनुभव लिया।

घर पहुंच कर बच्चा बिफर गया है। उसे अपने दोस्तों की याद आ गयी है। वह रुआंसा हो गया है - आंटी, मुझे कबीरा के पास जाना है।

मिसेज राय की परेशानी बढ़ गयी है - देखो बेटे, अभी तुम्हारी तबीयत पूरी तरह से ठीक नहीं हुई है। अभी तो कुछ दिन तुम्हें दवा खानी है। हम तुम्हें इस तरह से बाहर नहीं भेज सकते। एक काम करते हैं हम। कल हम गाड़ी में जा कर पूरे शहर में कबीरा को खोज निकालेंगे। तब हम उसे कहेंगे कि तुमसे रोज मिलने आया करे या हम ड्राइवर से कह देंगे वह कबीरा को ले आया करेगा।

बच्चे को आशा की किरण दिखी है - मोती को भी लायेगा?

बच्चे को इतनी आसानी से मान जाते देख मिसेज राय सहज हो गयी है। लपक कर आश्वस्त किया है उसे - ठीक है मोती को भी लायेंगे। बस, अब तुम आराम करो बेटे। इतनी देर पानी में खेले तुम।

लेकिन बच्चे की लिस्ट अभी पूरी नहीं हुई है - गप्पू को भी?

मिसेज राय को यह शर्त भी महंगी नहीं लगी - ठीक है गप्पू को भी, हम भी देखें कि उसकी नेकर कैसे नीचे उतरती है। चलो अब आप आराम करो। आपकी दवा का भी टाइम हो रहा है।

अब बच्चे अपने सवालों की दुनिया में वापिस

आ गया है। पूरी शाम जुहू पर जो सवाल पूछता रहा, फिर से उसके ध्यान में आ गये हैं - आंटी, समुद्र में इतना पानी कहां से आता है?

मिसेज राय ने उसे समझाने की कोशिश कर रही है - अरे बेटा, तुम अभी भी वहीं अटके हो। देखो ऐसा है कि समुद्र में पहले से ही इत्ता सारा पानी है।

- आंटी, समुद्र सब जगह क्यों नहीं होता?

- अगर समुद्र सब जगह होगा मेरे भोले बेटे तो हम रहेंगे कहां?

- सब जगह पानी रहेगा तो कित्ता मजा आयेगा, पानी में खेलते रहेंगे हम।

- तो स्कूल कब जायेंगे, काम कब करेंगे और दवा कब खायेंगे नटखट राम जी?

- हम दवा नहीं खायेंगे, कड़वी लगती है।

- दवा नहीं खाओगे तो ठीक कैसे होवोगे, बोलो, तब कबीरा और गप्पू के साथ कैसे खेलोगे। उन्होंने उसे ब्रैकमेल किया है।

- ठीक है खाऊंगा। वह अपने ही फंदे में फंस गया है।

सवेरे का समय है। वह सो रहा है। मिसेज राय ऑफिस जाने की तैयारी कर रही है। उसके पास आ कर प्यार से वे उसे चूमती है।

नौकरानी को आवाज देती है - माया, सुनो, हमें शाम को वापिस आने में देर हो जायेगी। बच्चे का पूरा ख्याल रखना। मैं बीच बीच में फोन करती रहूंगी।

- ठीक है मेम साहब

- जब बच्चा जग जाये तो उसे गरम पानी से नहला देना। उसे अपने आप खेलने देना। खाना वक्त पर खिला देना।

- अच्छा मेम साहब

- बच्चे को टाइम पर दवा दे देना। मालूम है ना कौन सी गोली देनी है।

- मालूम।

मिसेज राय एक बार फिर बच्चे के गाल चूम कर जाती है।

बच्चे ने जागने के बाद सबसे पहले पूरे घर में

आंटी को ढूंढा है।

कहीं नहीं मिलीं उसे। रुआंसा हो गया है वह। उसे रसोई में माया नजर आयी है। अब वह उसे भी पहचानने लगा है - आंटी कहां है?

- काम पे गयी मेम साब।
- कहां?
- आपिस।
- आपिस क्या होता है?
- आपिस माने कचेरी।
- कचेरी क्या होता है?
- वो सब हमको मालूम नई। मेमसाब रोज जाता

आपिस। शाम कू आता। बाबा, तुम दूध पीयेंगा अब्भी। फिर तुम नहा कर खेलना।

- आज कबीरा आयेगा?
- हां, मेमसाहब बेला कि ड्राइवर जा के कबीरा को खोजेंगा और फिर मुन्ना बाबा और कबीरा एक साथ खेलेंगा।

बच्चा खुश हो गया है। अब उसे आंटी नहीं चाहिये - मोती भी आयेगा ना?

- हां मोती भी आयेगा।

लेकिन माया के आश्वासन के बावजूद कबीरा नहीं आया है। वह कई बार बालकनी में, बड़े वाले कमरे में और पूरे घर में टहलते हुए अपने दोस्तों का इंतजार कर रहा है। ड्राइवर भी अब तक वापिस नहीं आया है। उसे बेशक स्नान कर लिया है, दूध पी पी लिया है, दवा भी खा ली है लेकिन उसका ध्यान लगातार दरवाजे पर ही लगा रहा है और एक पल के लिए भी वह आराम नहीं कर पाया है। माया के बार बार कहने के बावजूद वह सोने के लिए तैयार नहीं हुआ है। कहीं ऐसा न हो कि कबीरा वगैरह आये और उसे सोया पा कर लौट जायें।

वह अकेले बोर हो रहा है। सारे कमरे में खिलौने बिखरे पड़े हैं। वह कभी बालकनी में जा रहा है और कभी भीतर आ रहा है। उसका मूड बुरी तरह से उखड़ा हुआ है। वह इस बीच कई बार रो चुका है। उसे समझ में ही नहीं आ रहा कि क्या करे।

तभी फोन की घंटी बजी है। उसे समझ नहीं आता कि फोन की आवाज सुन कर क्या करे। उसे फोन उठाना नहीं आता। तभी लपकती हुई माया आयी है और

उसने फोन उठाया है। वह फोन सुनते हुए लगातार हा हा कर रही है। फिर उसने उसे बुलाया है - बाबा मेमसाहब का फोन है। आप से बात करेंगा।

बच्चा फोन लेता है लेकिन समझ में नहीं आता उसे कि कैसे पकड़ना है। माया उसे बताती है और कहती है - हैलो बोलने का।

- हैलो, आंटी आप जल्दी आओ। कबीरा नहीं आया।

मिसेज राय उसे बताती है - हम जल्दी आयेंगे बेटा। तुम आराम करो। ठीक है।

- ठीक है। फोन माया को लौटा देता है।

बच्चे का मूड बुरी तरह बिगड़ा हुआ है। वह ज़ोर ज़ोर से रोये जा रहा है। माया उसे कभी गोद में उठा कर चुप कराने की कोशिश करती है तो कभी खिलौने दे कर बहलाना चाहती है लेकिन बच्चा है कि एकदम बिफर गया है और किसी भी तरह से काबू में नहीं आ रहा है। माया इस बीच कई बार कोशिश कर चुकी है कि मेमसाहब को फोन पर बताये कि बच्चा किसी भी तरह से काबू में नहीं आ रहा है, वह करे तो क्या करे लेकिन वे किसी मीटिंग में हैं और उन तक वह कैसे भी करके संदेश नहीं दे पा रही। आज तक उसके सामने ऐसी स्थिति नहीं आयी थी। उसने कभी अपनी तरफ से मेम साहब को फोन ही नहीं किया है।

माया उसे बहलाने की कोशिशें कर रही है लेकिन उसे समझ में नहीं आता कि क्या करे। तभी माया ने उसे पैसिल और कागज ला कर दिया है। बच्चा उस पर आड़ी तिरछी रेखायें खींचने लगा है। कुछ देर के लिए वह बहल गया है। ये देख कर माया की जान में जान आयी है। वह रेखाएं खींच रहा है। कभी गोल, कभी सीधी। उसका मन बहल गया है और वह अब उसी में मस्त है। कागज रंगते रंगते उसे नींद नींद आ गयी है और वह वहीं सो गया है।

वह बालकनी में खड़ा है। नीचे पार्क में बच्चे खेल रहे हैं। वह थोड़ी देर उन्हें खेलते देखता रहता है। फिर माया से पूछता है - मैं नीचे खेलने जाऊं।

- जाओ बाबा, लेकिन जल्दी आ जाना।

माया उसके कपड़े बदलती है और जूते पहनाती है और उसके लिए दरवाजा खोल देती है।

माया को नहीं मालूम कि यह बच्चा इस दुनिया का नहीं है। वह जहां से आया है, वहां लिफ्ट, बहुमंजिला इमारतें, चिल्ड्रन पार्क और ये सारे ताम झाम नहीं होते। वह बच्चा इस दुनिया में खुद नहीं आया, बल्कि लाया गया है और उसे कई सारी चीजों के बारे में बिलकुल भी नहीं पता।

माया ने तो ये देखा कि बच्चा घर में बैठे बैठे बोर हो रहा है तो थोड़ी देर नीचे खेल कर लौट आयेगा। माया को ये बात सूझ ही नहीं सकती कि बच्चे को खुद नीचे ले जाये और अपने सामने थोड़ी देर तक खिला कर वापिस ले आये।

वह थोड़ी देर तक लिफ्ट के आगे खड़ा रहता है लेकिन उसे समझ में नहीं आता कि इसे कैसे खोले। इधर माया ने भी दरवाजा बंद कर दिया है। उसे डोर बैल के बारे में पता है लेकिन उस तक उसका हाथ नहीं पहुंचता। वह तीन चार बार हौल हौले से दरवाजा थपकाता है लेकिन भीतर काम कर रही माया तक आवाज नहीं पहुंचती।

वह धीरे धीरे सीढ़ियां उतरने लगता है।

वह बच्चों के पार्क में पहुंच गया है और उन्हें खेलता हुआ टुकुर टुकुर देख रहा है। वैसे भी वह उन बच्चों के सामने अपने आपको बौना महसूस कर रहा है। धीरे धीरे वह सामने आता है लेकिन तय नहीं कर पाता कि कौन सा खेल खेले या किस खेल में शामिल हो जाये। अचानक एक गेंद लड़कती हुई उसके पैरों के पास आती है और वह उसे उठा कर एक लड़के को दे देता है। पता नहीं कैसे होता है कि वह भी उनके खेल में शामिल हो जाता है। उसे अपना लिया गया है और उसे अच्छा लगने लगता है। वह सब कुछ भूल कर खूब मस्ती से खेल रहा है।

काफी देर तक वह उनके साथ खेलता रहता है।

इस बीच अंधेरा घिरने लगा है और सारे बच्चे अकेले वापिस जा रहे हैं या अपनी अपनी आयाओं, बहनों, माताओं के साथ लौट रहे हैं।

वह भी खेल कर थक गया है और वापिस लौटना चाहता है।

वह कदम बढ़ाता है, लेकिन उसे याद ही नहीं आता कि वह किस बिल्डिंग में से निकल कर आया था।

कभी एक बिल्डिंग की तरफ जाता है और कभी दूसरी की तरफ। वह लड़खड़ा रहा है, और घबरा कर रोने लगा है।

वह अपना घर भूल गया

है। वह रोते रोते भटक रहा है और अपनी इमारत

से काफी दूर आ गया है।

अंधेरा पूरी तरह घिर चुका है।

सड़क पर रोता हुआ अकेला बच्चा चला जा रहा

है।

बच्चा वापिस सड़क पर आ गया है।



## परिचय

.सूरज प्रकाश जी का जन्म १४ मार्च १९५२ को उत्तराखंड के देहरादून में हुआ।

उनकी पहली कहानी २० साल बाद छप कर आई।

अहमदाबाद में बिताए अपने ७५ महीनों में उन्होंने अपने लेखन को सजाया.संवारा। चुनौती के रूप में गुजराती सीखी और गुजराती साहित्य की कई किताबों का हिंदी अनुवाद किया। गुजरात हिंदी साहित्य अकादमी का पहला पुरस्कार १९९३ में सूरज प्रकाश जी को ही मिला था।

सूरज प्रकाश जी हिंदी पंजाबी अंग्रेजी गुजराती मराठी आदि कई भाषाओं के जानकार हैं। कहानीकार उपन्यासकार के साथ साथ वे एक कुशल सजग अनुवादक भी हैं। हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। आपकी ५० से ज्यादा कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। १०० से ज्यादा व्यंग लेख प्रकाशित हो चुके हैं और उसके दो संग्रह भी आ चुके हैं। लगभग डेढ़ सौ लेख आपके प्रकाशित हो चुके हैं। दो नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। अंग्रेजी व गुजराती दोनों भाषाओं से आपने खूब सारे अनुवाद भी किए हैं।





सरन घई

## कसीनो - भारत में क्यों नहीं!

सरन घई

कल्पना कीजिये कि आपके सामने सिक्के घड़ने की मशीन लगी है और वो लगातार आपके सामने सिक्के फैंक रही है - खन, खन, खन, खनन, खनन। सिक्के घड़ने की ऐसी सैकड़ों मशीनें हर कसीनो में लगी होती हैं। सिक्के खन-खन करके गिरने की यह आवाज लगभग हर स्लूट मशीन से आती सुनाई देती है तो लगता है मानो हम साक्षात लक्ष्मी निवास ही आ गये हैं। यही वो आवाज है जो हमें हमारी मनोरंजन की चाह को पूरा करने के लिये कसीनो ले आती है। यह भी सच है कि सिक्कों की वह खनक आपके मन में और अधिक जीतने का लोभ देती है और आपको अधिक से अधिक और आगे से आगे खेलने के लिये प्रेरित करती है लेकिन दूसरी ओर कसीनो जाने के आपके मंतव्य, मनोरंजन को चरम तक पहुँचाने में भी तो वही सहायक होती है।

लोग मनोरंजन के लिये फ़िल्में देखने जाते हैं, मुक्केबाजी, बास्केट बाल, फुटबाल और क्रिकेट के मैच देखने जाते हैं। जिनमें हैसियत है वो घुड़दौड़ और बड़े-बड़े क्लबों में जाकर अपने-अपने मनोरंजन के तरीकों को आजमाते हैं। क्रिकेट में सट्टेबाजी क्या किसी जुए से कम है लेकिन इसमें भी लोग अपने तरीके का मनोरंजन तलाशते हैं।

हर व्यक्ति के लिये उसका मनोरंजन भी उसका मौलिक अधिकार है। जरूरी नहीं कि जिसे बैडमिंटन खेलने या देखने में मजा आता है उसे कहा जाय कि नहीं तुम नौकायन में मनोरंजन ढूँढो। विश्व के अधिकतम देशों में हर व्यक्ति को उसकी चाह और हैसियत का मनोरंजन सुलभ है। लेकिन भारत में इस सोच से विपरीत कार्य हो रहा है। वहाँ सरकार

या तथाकथित समाज के ठेकेदार यह तय करते हैं कि कौनसा मनोरंजन स्वस्थ मनोरंजन है और कौनसा जुआ। किसी व्यक्ति की चाह अथवा सोच का वहाँ कोई स्थान नहीं है। मान लिया, सरकार के कुछ दायित्व हैं लेकिन जहाँ सच में और खुले आम जुआ चल रहा है वहाँ रोकने का कोई विशेष प्रबंध क्यों नहीं करती!

यह भी दुहाई दी जाती है कि भारत एक गरीब देश है, यहाँ

का आम नागरिक यदि जुए की लत में फंस जायगा तो अनेकों परिवार उजड़ जायेंगे। मेरा प्रश्न बस इतना सा है - नेपाल तो आर्थिक दृष्टि से भारत से कहीं ज्यादा विपन्न राष्ट्र है, वहाँ कितने परिवार उजड़ गये?

आज संसार अत्यंत तीव्र गति से प्रगति के सोपानों को तै करने की होड़ में एक के बाद एक उल्लांगे लगा रहा है। बैलगाड़ी से लेकर चीलगाड़ी तक का सफ़र तो हम कब का तै कर चुके, अब तो राकेट की गति भी धीमी लगने लगी है। विज्ञान ने तो जैसे चहुँमुखी प्रगति को पंख ही दे दिये हैं। शायद ही जीवन का कोई कोना बचा हो जिसमें विज्ञान ने प्रगति की दस्तक न दी हो। ऐसे में जहाँ विज्ञान ने एक और इंसान के जीवन को सुख-सुविधा संपन्न बनाने में महती भूमिका निभाई है वहीं दूसरी ओर उसके लिये मनोरंजन के भी अनेकानेक साधन उपलब्ध करवाये हैं ताकि वह जीवन यात्रा को जीते-जीते कहीं ऊब न जाये।

पहले जमाने में जब लोग शारीरिक श्रम अधिक करते थे कुश्ती या कबड्डी खेलकर भी मनोरंजन हो जाता था परंतु आज के युग में बहुधा ऐसे काम अधिक होते जा रहे हैं

जो शरीर के स्थान पर मस्तिष्क को अधिक थकाते हैं। ऐसे में मनोरंजन के साधनों में परिवर्तन आना अत्यधिक सहज है। यदि आप बच्चों के खेल उपकरणों की ही बात करें तो आज बच्चे खेल के मैदानों में पसीना बहाने की जगह घर में टी वी के आगे बैठ कर प्ले स्टेशन के उपयोग से कारें दौड़ाना अधिक पसंद करते हैं या कम्प्यूटर पर मगजपच्ची करने में अधिक सुकून महसूस करते हैं। उन्हें इसी से मनोरंजन मिलता है तो ऐसे में उन्हें बाहर जाकर मैदान में खेलने की हिदायत देना उनके मनोरंजन में खलल डालने के समान है।

हाँ यह हो सकता है कि शुरू के पाँच साल तक कसीनो में प्रवेश के लिये कम से कम १०० रुपये की एक प्रवेश फ़ीस लगा दें ताकि गरीबी रेखा के नीचे रह रहे लोग वहाँ जाने से हिचकिचायें लेकिन जिनके लिए १०० रुपये फ़ीस कोई मायने नहीं रखती, उनके लिये वहाँ खेलना भी शुद्ध मनोरंजन है, और कुछ नहीं। इसके अतिरिक्त २१ वर्ष से कम के युवाओं के लिये प्रवेश बिल्कुल वर्जित रखें जो कि विकसित देशों में भी सख्ती से निभाया जाता है।

ऊपर जो मैंने १०० रुपये की प्रवेश फ़ीस की बात की है वह कसीनो को न जाकर सरकार को जानी चाहिये जिससे सरकार की आमदनी बढ़ेगी और वह उस राशि को गरीबों की सहायताार्थ खर्च कर सकती है। इसके अतिरिक्त कसीनो की प्रतिदिन की आमदनी पर भी सरकार अच्छा-खासा टैक्स वसूल कर सकती है जिससे प्रधानमंत्री जी की तीव्र इच्छा स्कूलों में लड़कियों के लिये स्वच्छ भारत जैसे अभियानों के लिये तुरंत पैसा आ सकता है।

कसीनो अर्थव्यवस्था में योगदान का एक सशक्त माध्यम है। इनके निर्माण में निश्चित रूप से अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग की आवश्यकता होगी तो सोचिये कितना निवेश भारत में पहुँचेगा। कसीनो अरबों रुपये का व्यवसाय है। करोड़ों रुपये का लेन-देन प्रतिदिन हो जाता है। यदि भारत में कसीनो होंगे तो पर्यटन व्यवसाय चौगुना हो जायगा क्योंकि अधिकतम देशों में कसीनो हैं और लोग वहाँ अपने तरीके से मनोरंजन प्राप्त करते हैं।

अब समय आ गया है कि यदि भारत को चहुँमुखी प्रगति करनी है तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मनोरंजन की जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उन्हें भारत में भी सुलभ करवाये तभी हम विश्व के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रगति की दौड़ में उनकी समता कर पायेंगे वरना पीछे तो हम हैं ही



## परिचय

मेरा जन्म घई परिवार में जून १५, १९५० को जयपुर, राजस्थान, भारत में हुआ। मैंने इतिहास, हिंदी व अंग्रेजी विषयों में स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा प्राप्त की है। मुझे विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ द्वारा 'विद्यावाचस्पति' (पी.एच.डी) व 'विद्यासागर' (डी. लिट.) की मानद उपाधियाँ प्रदान की गई हैं

हिंदी व अंग्रेजी व्याकरण, सामान्य ज्ञान, इतिहास, पर्यावरण, लेप्रोसी, एड तथा कुछ कविता संग्रहों सहित मेरी लगभग ६० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

विशेष उल्लेखनीय उपलब्धियाँ: १. 'मुक्तिपथ-प्रेमपथ महाकाव्यगीत' विश्व की सबसे लंबी, अटूट, धाराप्रवाह कविता का प्रकाशन। २. 'खट्टे-मीठे रिश्ते' (विश्व के ६६ उपन्यासकारों द्वारा रचित एक सामूहिक उपन्यास), ३. 'राजद्रोही' (फ़िल्म निर्माण हेतु पंजीकृत उपन्यास) ४. कहानी संग्रह 'सुनो, तुम मुझसे झूठ तो नहीं बोल रहे' (लगभग ३४ कहानीकारों का एक ही विषय पर रचा गया कहानी संग्रह) ५. इंगरपुर (राजस्थान), में साहित्यरथ का संचालन, ६. टोरंटो, कनाडा में साहित्य रथ (पहियों पर कविता), का संचालन (२०१८, २०१९), ७. भोपाल (म. प्र.) में भोपाल ताल में एक कूज में साहित्य नौका (पानी में कविता) का संचालन, ८. अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्यिक सम्मेलन, कनाडा में भाग लेने आने वाले कवियों का हवाई जहाज में कवि सम्मेलन (आकाश में कविता) आदि प्रमुख हैं।

संस्थापक, विश्व हिंदी संस्थान, कनाडा



डॉ. उषाकिरण खान

## गाँधी और स्त्रियाँ

### डॉ. उषाकिरण खान

मैं सदा से जब भी अपने खोये हुए देश को ढूँढ़ने की कोशिश करती हूँ तब मुझे गाँधी ही याद आते हैं। जब मेरे भीतर अपनी संस्कृति अपना ज्ञान अपना सिद्धांत समझने की सोच विकसित हुई तब गाँधी ही याद आये। अपना माहौल गाँधीमय था, इससे कौन इनकार कर सकता है? ब्राह्म मुहूर्त में जाकर आश्रम भजनावलि गावों से दिन शुरू होता और ओम् तत्सत् श्री नारायण तू से पूर्ण होता। वह जीवन भर ढूँढ़ती रही अनेक ठिकानों पर। मानस वैसा ही निर्मित हुआ है। पालन पोषण के समय जरा भी यह अनुभव नहीं हुआ कि मैं लड़की हूँ। स्त्रीत्व के लक्षण प्रकट होने पर जरूर अहसास हुआ। पर वह व्यक्तिगत था जिसे नकारा जा सकता था।

“यहाँ मैं गाँधी की स्त्रियों की चर्चा कर रही हूँ। गाँधी के विषय में प्रचलित है यह कथन कि बापू का शरीर पुरुष का था परंतु उनका हृदय माँ का था।” माँ मतलब औरत। मनुष्य की संरचना में स्त्री और पुरुष के अलग-अलग तत्व होते हैं। जिस व्यक्ति में स्त्री तत्व अधिक होते हैं वे कोमल हृदय के होते हैं तथा जिनके अंदर पुरुष तत्व अधिक होते हैं वे उतने ही कुलिश कठोर होते हैं। यह तत्व स्त्री और पुरुष के व्यवहार में समय-समय पर प्रकट होता रहता है। इन तात्विक चर्चाओं के परे गाँधी ने देह की स्वतंत्रता के लिए जीवन समर्पित कर दिया। यही मुख्य मुद्दा रहा शेष जीवन में उनके। देश भ्रमण के दौरान उन्होंने पाया कि समाज में अंधकार व्याप्त है। उन्हें न तो आजादी की समझ है न

गुलामी का अंदाजा। समाज में बहुत खाई है। जाति उपजाति की खाई धर्म सम्प्रदाय की खाई। उसको किस प्रकार पाटा जाय? स्त्रियों की दुर्दशा का तो अंत नहीं था। सबकुछ समझते हुए गाँधी को एक दृष्टि मिली। समाज को अपनी अस्मिता का भान कराना होगा। स्त्रियों को अपनी इयत्ता का ध्यान दिलाना होगा। तब समाज एकजुट होगा। समाज को एकजुट करने में बड़ी बाधा थी शिक्षा। गाँधी को अशिक्षा दूर करने का उपाय ढूँढ़ना होगा। शिक्षा देने वाले गुरुजी लोग क्या अछूत को पढ़ायेंगे? अछूत या पिछड़े लोग जो रोज कमाते रोज खाते हैं वे इतना समय पढ़ने लिखने के लिए दे सकते हैं? तो स्वरोजगार की ओर उन्हें उन्मुख करना होगा। गरीब फटेहाल स्त्रियों के पास तन ढकने का वस्त्र नहीं था। वे घूँघट में रहने को घर के आँगन में कैद रहने को मजबूर थीं। बापू ने उन्हें उनके पुराने कार्य को पुनराविष्कृत कर थमा दिया था। वे चर्खा पर सूत कातने लगीं। गाँधी ने स्त्रियों में जागरण और शिक्षा की प्यास जगा दी। सिर्फ घर में ही नहीं वे बाहर जाकर शत्रुओं से टक्कर ले सकती हैं ऐसा उन्होंने सोचा। गाँधी जी के पहले ही महात्मा फुले और पंडिता रमा बाई फुले शिक्षा का, असामानता का बिगुल बजा रहे थे, तिलक स्वराज्य को जन्मसिद्ध अधिकार बता रहे थे। बंगाल में क्रांति दस्तक दे चुकी थी। गाँधी ने सभी आंदोलनों से सत्य ग्रहण किया, कुछ अपने विचार गुक्फित किये, समाज के लिए जो ग्राह्य हुए। गाँधी ने भारतीय वांग्मय का जमकर अध्ययन किया। भारतीय वांग्मय की श्रेणियों को पहचाना।

इस विशाल उर्वर देश पर समय समय पर क्षेत्रफल से बाहरी देशों का आक्रमण, उससे पैदा हुयी समस्याओं को देखा परखा। बाहर से आने वाले लोग मात्र लुटेरे नहीं थे। लुटेरे लूटकर भाग जाते हैं, वे आप पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ते परंतु हारकर या जीत कर जो इस सहिष्णु दश की धरती पर शरण लेते हैं या कब्जा करते हैं वे घुन की तरह लग जाते हैं समाज में। अपनी सभ्यता संस्कृति थोपते हैं। समाज पर प्रभाव डालते हैं। तथापि जिसकी भूमि यही है या जो आकर इसे अपनी भूमि बना चुके उनको अपना ही माना।

अछूत भारत भूमि की बहुत बाद की परिघटना है। अनेक कारणों से समाज से निकाले गये लोग अस्पृश्य होते गये परंतु समाज इतना रूढ़ नहीं हुआ था। स्त्रियाँ भी युद्ध के परिणाम के कारण धीरे-धीरे दीवारों में कैद कर ली गई। परंतु मूर्खता का तांडव सबसे अधिक अंग्रेजों के आने के बाद शुरू हुआ। उसने यहाँ की सारी पद्धतियों को नष्ट कर दिया। वह ऐसा लुटेरा बन गया जिसने आचार विचार, भाषा संस्कृति तथा भारतीय होने का गर्व भी लूटकर ले गया। उससे लड़ने के लिए पूरे समाज को एकजुट होना था। वह एक जुटता जाति धर्म में विभाजित भारत में नहीं आ सकती है। विभाजित तो हम घरों तक में थे। स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। तो गाँधी ने स्त्रियों को परदे से बाहर लाने का आहवान किया।

चंपारण में बा को बापू ने बुला लिया था। बा ने इतनी विपन्न और दुखी स्त्री कहीं नहीं देखी। वस्त्र के बिना स्नान नहीं कर पाती, पत्ते जलाकर वे स्वल्प भोजन बनातीं जिसका अत्यंत छोटा भाग कभी कभी पा जातीं। रक्ताल्पता की शिकार होतीं। उन्हें सुख किसी कहते हैं नहीं मालूम, यह भी नहीं पता था कि दुख क्या होता है। सभी एक ही स्थिति में थीं। यह स्थिति सभी प्रकार के परिवेश की औरतों की थी। अलबत्ता हवेली वालियों के पास पहनने के पूरे कपड़े होते कुछ आभूषण भी होते।

महात्मा गाँधी ने समाज की प्रत्येक समस्या को एक साथ उठाया। परदा तोड़ो, अछूतोद्धार, शिक्षा का द्वार खादी आंदोलन तथा स्वतंत्रता की पुकार।

परदा तोड़ने और स्त्रियों की शिक्षा के माध्यम से मुख्यधारा में जोड़ने का प्रयास गाँधी का सबसे अधिक सराहनीय रहा। गाँधी स्त्रियों पर सबसे अधिक विश्वास करते थे। स्त्रियाँ जो माँ हैं उनपर अविश्वास कैसा? स्त्रियों को भी गाँधी पर अटूट विश्वास था। आज भी है। अस्पृश्यता का दंश प्रत्येक स्त्री झेलती है इस देश में। रजस्वला होने पर उन्हें अछूत बनाकर अलग कर दिया जाता था। जिस राजोदर्शन

को वेदकाल में सृष्टि रचना का पर्याय माना जाता था वही श्रेता आते आते अशुद्ध करार कर दिया गया धीरे-धीरे वह स्त्रियों को अस्पृश्य बनाने का हथियार बन गया। संतानोत्पत्ति के समय जो स्त्री उसकी सहायता करती है वह अस्पृश्य होती है। उन दिनों डॉक्टर नर्स और टेबुल फॉरसेप नहीं होते थे। उसी दगड़िन के भरोसे जचगी होती बच्चे की नाल पुरइन से अलग की जाती। सो स्त्री स्वयं आधी अछूत दूसरी पूरी अछूत से दूरी बना ही नहीं सकती थी। स्त्रियाँ जितनी आसान शिकार धर्मांधता के लिए होती हैं उतनी ही आसान सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए भी हैं। उन्हें यह ठीक से समझा देने की जरूरत होती है कि वे सारे गहिंत बंधन टूट कर जीवन आसान कर देंगे। गाँधी ने इस भाव को जाना और समझा। उन्हें स्वयं एक परंपरावादी जिद्दी स्त्री (बा) से जूझना पड़ा था। बा जब बराबरी की अहमीयत समझ गई तब वे रंग गई पूरी तरह। बापू तथा प्रथम श्रेणी के सभी नेताओं के जेल पर सत्याग्रह की पूरी की पूरी जिम्मेदारी उन्होंने ली और सँभाली। गिरफ्तार हो कर जेल भी गई।

बिहार में पहला महिला विद्यापीठ दरभंगा जिले के मझौलिया गाँव में मगन आश्रम के अंदर स्थापित हुआ था। उस समय आज से सौ साल पहले वहाँ स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ परदे तोड़कर बाहर आई स्कूल में पढ़ने लगीं। वहाँ स्वरक्षा तथा सुरक्षा के उपाय भी बताये जाते थे। खादी के सूत कात काटने पर वस्त्र बुनने दे कर वे आत्मनिर्भर हो रही थीं। वह क्षेत्र सौ साल पहले से ही शिक्षित हो रहा था। वहाँ अछूत समस्या खत्म हो गई। स्त्रियों की शिक्षा बराबर द्विजों तथा अद्विजों में होने लगी थी। उस क्षेत्र की मिसाल देकर अन्य क्षेत्रों में भी गाँधी का यह सामाजिक आंदोलन चल निकला। गाँधी के आह्वान पर स्त्रियाँ सामाजिक अंधकूप से बाहर निकल आईं। शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करती स्त्रियाँ, असहयोग आंदोलन करती स्त्रियाँ, सविनय अवज्ञा कर धरने सत्याग्रह पर बैठी स्त्रियाँ वे ही थीं जो कुछ दिनों पहले दिन में हाजत भी नहीं जातीं। शिविर लगाकर बापू ने पहले स्त्रियों को प्रशिक्षित करवाया, फिर उन प्रशिक्षित स्त्रियों के द्वारा नगर नगर गाँव गाँव प्रशिक्षण दिया गया। तभी तो घर घर में चर्खा चलने लगा, मधुबनी और भागलपुर की खादी सबसे अधिक पसंद की जाती। पंडित जवाहरलाल नेहरू की पत्नी कमला नेहरू तथा इन्दु (इंदिरा गाँधी) की साड़ियाँ यहाँ से जातीं। वे आत्मनिर्भर हो गईं। घर के सारे काम निपटाकर वे सूत काततीं। कई प्रकार के रोजगार में वे लग गईं। प्रभावती जी गाँधी जी की बेटा सी थीं। उनके साथ बनी रहतीं जैसे

मनु और आभा गाँधी। जब उनके पति सर्वश्री जयप्रकाश नारायण अमेरिका पढ़ने गये थे तब उन्होंने आश्रम की कई लड़कियों के साथ मिल कर ब्रह्मचर्य का संकल्प ले लिया। गाँधी को यह पता चला तब उन्होंने प्रभावती जी को डाँटा कि वे अपने पति से पूछे बगैर यह निर्णय नहीं ले सकतीं आज की हम स्त्रीवादियों के गले यह नहीं उतरता कि अपना मन और शरीर अपने वश में है किसी से क्यों पूछना परंतु गाँधी जी सहजीवन को मानने वाले ठहरे दोनों को दोनों से पूछना चाहिए यह मान्यता थी। प्रभावती ने संकल्प लिया और जिद से पूरा किया। गाँधी जी स्वयं अनुशासन और संकल्प के पक्के इंसान थे अतः वे किसी के भी संकल्प में बाधा नहीं देते। जब नोआखाली में थे तब का वाक्या हमारी मित्र निवेदिता ने कहीं पढ़ा था उसने बताया। नोआखाली में विरोधी जन उनके रास्ते पर शीशी फोड़कर बिखरा देते जिससे प्रतिदिन उनके पैर घायल हो जाते। लौटकर गरम पानी से पैर धोते झाँवा पत्थर से रगड़ते जो कहीं बाजू में जंगल की ओर मिलते। एक दिन मनु लाना भूल तब रात में अकेले उसे जाकर लाना था। वह लेकर आई भी।

गाँधी जी के व्यापक सामाजिक सुधारों को ही तो हम प्रतिफल हैं। शिक्षित हुए लोगों को समझा पाने की काबिलियत आई। स्वरोजगार के प्रति सम्मान बढ़ा। गाँधी जी के समझाने पर ही प्रभावती जीने बिहार में महिला चर्खा क्लास प्रारंभ किया, जिसका अगला स्वरूप महिला चर्खा समिति हुआ। वहाँ के उद्योग केन्द्र अनपढ़ मेहनतकश लोगों से लेकर पढ़े लिखे लोगों के लिए भी उतना ही प्रेरक और कार्यक्षम है। शिक्षा केन्द्र तथा पुस्तकालय भी हैं। मात्र बड़ी पापड़ और अँचार ही नहीं सिलाई तथा संगीत केन्द्र भी है। यह सब समाज के निम्न से लेकर उच्चवर्ग के सभी जाति वर्गों से आते हैं।

स्त्री विमर्श करने वाली करोड़ों भारतीय स्त्रियाँ पलट कर देखें कि वे इस काबिल कैसे बन हैं पाई? कि विमर्श करें? यदि व्यापक रूप में सामाजिक कार्य उनके एजेंडा में न होता तो क्या होता? यह सब गाँधी ने अपनी परंपरा से ही लिया। वैदिक परंपरा रही है कि कोई यज्ञ अकेले पूर्ण नहीं होता, स्त्री पार्श्व में बैठती है तभी होता है। स्त्री की उस अहमीयत को कालांतर में गठरी बनाकर रख दिया गया था जिसके प्राणों की गाँधी ने पुनर्प्रतिष्ठा की, गठरी को प्राणवाण बना दिया। अतः गाँधी का स्त्री पर विश्वास तथा स्त्रियों का अनपर विश्वास अटूट है।●●

## परिचय

जन्म- २४.१०.१९४५- लहेरिया सराय (दरभंगा)

पी.एच.डी.- मगध विश्वविद्यालय

शिक्षण कार्य- बी.डी. कॉलेज, पाटलिपुत्रा विश्वविद्यालय

लेखन- मैथिली एवं हिंदी प्रकाशन १९७७ से

पुरस्कार हिंदी

१. कवि रमण पुरस्कार- १९८३

२. दिनकर राष्ट्रीय पुरस्कार- १९९४

३. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, हिंदी सेवी पुरस्कार- १९९३

४. बिहार राजभाषा का महादेवी वर्मा पुरस्कार- १९९९

५. कुसुमांजलि पुरस्कार- २०१२

कविता संग्रह-

१. विवश विक्रमादित्य- १९८२

२. दूबधान- १९८४

३. गीली पाँक- १९९३

४. कासवन- २०००

५. खेलत गंदे गिरे यमुना में- २०२०

पुरस्कार-मैथिली-

१. साहित्य अकादमी पुरस्कार- २०१०

उपन्यास

१. अनुव्रित प्रश्न- १९८०

२. मैं उप-दूर्वाक्षत- १९८८

३. हसीना मंजिल- १९८६

४. भामती: एक अविस्मरणीय प्रेमकथा- २००८

५. पोखरि रजोखरि- २०१५

६. मनमोहना रे- २०२०

खंड काव्य- जाइ सँ पहिने- (सियापिय कथा)

नाटक- चानो दाई, भुसकौल बला, फागुन, एक्सरि ठाढ़ि

१. बाल महाभारत

२. राधोक खिस्सा

अनेक भाषाओं में अनुवाद- उडिया, बांग्ला, उर्दू एवं अंग्रेजी

# हिंदी की आत्मपहचान कितनी सुरक्षित है

## शंभुनाथ

कोई भाषा जब आत्मपहचान खोती है तो वह पहले भीतर से रिद्ध होती है। उसमें ज्ञान और संवेदना का हास होने लगता है। हिंदी का सिद्ध.नाथों से लेकर कबीर.तुलसी और भारतेन्दु.प्रेमचंद.निराला से होते हुए आज तक एक बुद्धिदीप्त समावेशी और हृदय की भाषा के रूप में विकास होता आया है। इसे खड़ा करने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे व्यक्तियों ने सरकारी नौकरी छोड़ी थी। कई संस्थाओं का निजी प्रयास से निर्माण हुआ था घाटा उठाकर पत्र.पत्रिकाएं निकाली गई थीं और पता नहीं कितने लोगों ने कठोर श्रम किया था तब जाकर हिंदी सम्मानजनक स्थान पर पहुंची थी। हिंदी आज उन सबके विपरीत अज्ञानता और भेदभाव के निर्माण का औजार बना दी जा रही है। वह विदूषक होती जा रही है जो चिंताजनक है।

कुछ दशकों पहले हिंग्लिश की समस्या खड़ी हुई थी बाजार ने हिंदी का अहिंदीकरण करना शुरू किया था। यह विकृतिकरण थमा तो एक दूसरी कुटिलता सामने आई हिंदी का शुद्धिकरण होने लगा। हिंदी की आत्मपहचान पर यह खतरा कम बुनियादी नहीं है। हिंदी से चुन.चुनकर प्रचलित अंग्रेजी और उर्दू शब्दों को बाहर निकालने और इसे कठिन संस्कृतनिष्ठ बनाने का अभियान देश की इस महान भाषा को संकुचित करने की कोशिश कही जाएगी। २०वीं सदी के आरंभिक दशकों में षतरूकातष् अभियान चला था अपनी.अपनी भाषा से दूसरी भाषाओं के शब्दों को बाहर निकालने का कुचक्रण जबकि किसी भाषा की शक्ति का बोध उसके बढ़ते शब्द.भंडार से होता है। भारत के संविधान ने ऐसी हिंदी को प्रोत्साहित करने का निर्देश दिया है जिसमें दूसरी भाषाओं के शब्दों के लिए द्वार खुला हो। हिंदी जैसे भी सदियों से एक मिश्रणशील भाषा रही है

इसमें न जाने कहां.कहां से शब्द आकर घुलमिल गए। गंगा को जितना साफ किया जाए क्या उसके जल को अनगिनत जगहों की मिट्टी से अलग किया जा सकता है

हिंदी को सबसे अधिक संकुचित किया जा रहा है उसकी उस ज्ञान परंपरा से काटकर जिसका निर्माण संस्कृत साहित्य के अलावा लोकभाषाओं संतों.सूफियों.भक्ति आंदोलन तथा नवजागरण ने किया है। प्रेमचंद.निराला.अज्ञेय.रामविलास शर्मा जैसे लेखकों ने भी किया है। दि.दिगंत को छूती हुई लगभग ५५ करोड़ लोगों की भाषा है हिंदी। इसे हम मेढक के टर्टरते तौर से नहीं देख सकते। इस पर कोई एक रेखीय ढांचा नहीं थोपा जा सकता। ऐसा करनेवाले जाने.अनजाने अपने को विस्तृत साहित्यिक विरासत से ही अलग नहीं कर रहे होते हैं भाषा को कूप जल् भी बना रहे होते हैं।



### परिचय

शंभू नाथ जी एक लोकप्रिय, उच्च स्तरीय हिंदी मासिक पत्रिका वागर्थ के संपादक हैं। जिसका वार्षिक सदस्यता शुल्क रुपये ३०० और ३ साल के लिए रुपये ८५० है। आजीवन सदस्यता शुल्क रुपये ३००० है। विदेश से वार्षिक शुल्क ४० डॉलर। रजिस्टर्ड बुकपोस्ट से मंगाने पर वार्षिक २४० रुपये अतिरिक्त भेजना होगा। ११:०० बजे दिन से ६:०० बजे संध्या तक मोबाइल नंबर: ९९ ६३३ ७२६८३ भारतीय भाषा परिषद, ३६ ए, शेक्सपियर सारणी, कोलकाता - १७



प्रोफेसर इंदु वीरेंद्र

## आत्मकथाओं के संदर्भ में प्रोफेसर इंदु वीरेंद्र

स्त्री सशक्तिकरण के इस दौर में नारी-विषयक दृष्टि की प्रासंगिकता आज पूरे विश्व में सिद्ध हो रही है। आप सभी जानते हैं कि नारी अब अबला, सुकोमला नहीं रही।

एक समय था जब स्त्री चार दीवारी में रहती थी। उसके पास अधिकार नहीं थे। अब ये सब स्वप्न की बातें होती जा रही हैं। वैसे तो स्त्री के साथ कम अन्याय नहीं हुआ। स्त्री पर अन्याय के लिए पुरुष जिम्मेदार है! ऐसा कतई न समझें।

पंडित जवाहरलाल नेहरू हो या स्वामी विवेकानंद कहते थे कि स्त्रियों की दशा में सुधार लाए बिना विश्व कल्याण संभव नहीं है।

साहित्य का आधुनिकतम मुद्दा स्त्री विमर्श है। लेखक, साहित्यकार व बुद्धिजीवी सदियों से पीछे धकेली गई स्त्री को ही केन्द्र में लाने के लिए संघर्षरत हैं। हर तरफ स्त्री की गुहार है। आज स्त्री अपनी पहचान के लिए स्वयं भी जागरूक हैं। वह किसी पुरुष के अधिकार के बल पर आगे बढ़ना नहीं चाहती। उसे तो सिर्फ सम्मान भरा नज़रिया चाहिए जो उसके व्यक्तित्व की पहचान दिला सके और इसी पहचान पर वह पितृसत्ता की चली आ रही सोच पर विराम लगाना चाहती है क्योंकि अब पुत्री को अपने पिता के नाम से जानना पहचानना आवश्यक नहीं है अपितु नई सोच में

अब पुत्री के नाम से पिता को पहचाना जाता है।

स्त्री अमीर हो या गरीब, गोरी हो या काली। उसे अपनी लड़ाई स्वयं ही लड़नी होती है। ध्यान रहे यह दुनिया पुरुषों की बनाई हुई है, पर स्त्री से पूछ कर नहीं बनाई गई।

जहाँ तक विमर्श की बात है-विमर्श सांझा चूल्हा है, उसका लक्ष्य है संवाद। स्त्री विमर्श में उसके जख्मों को आइने की तरह दिखाने की परम्परा हो गई है। स्त्री-विमर्श में स्त्री जीवन की विडम्बना को प्रस्तुत किया जाता रहा है। स्त्री का संघर्ष उसके घर और बाहर के जीवन पर हावी हो रहा है। स्त्री विमर्श मानव की विकास यात्रा का एक सशक्त सोपान है।

इसी जीवन यात्रा के कारण ही स्त्री दासता की शिकार होती है। वैसे स्त्री सुरक्षित कब थी?

रामायण काल में - शूर्पणखा और सीता दोनों सिर हिला रही हैं!

महाभारत काल में - द्रौपदी, अम्बा, सत्यवती पूरी कतार में खड़ी स्त्रियाँ निषेध सी मुद्रा में सिर हिला रही हैं!

स्वतंत्रता से पहले या स्वतंत्रता के बाद स्त्री कब सुरक्षित थी? यह प्रश्न चिन्ह वहीं का वहीं है आज भी!

वह वैज्ञानिक है, अन्तरिक्ष यात्री है, रंगकर्मी है, पत्रकार है, सब कुछ है पर है अन्ततः स्त्री ही!

शोषण और हत्या के आंकड़े ही बता रहे हैं। ये

आंकड़े निरन्तर बढ़ रहे हैं। आखिर नारी कब सुरक्षित होगी! प्रश्न चिन्ह है हमारे सामने।

यह ठीक है कि आधुनिक युग विमर्शों का युग है जिसमें स्त्री विमर्श भी एक है। स्त्री विमर्श का मूल स्वर अस्मिता की पहचान है। हिन्दी में स्त्री लेखिकाओं द्वारा साहित्य लिखा गया है। उसमें स्त्री-पहचान, या स्त्री शक्ति को सृजन का विषय बनाया गया। वे बिना आन्दोलन के स्त्री-संबंधी लेखन के लिए पहचानी जाती हैं। वे स्त्री लेखिका हैं, इसीलिए स्त्री पक्ष पर बल देती हैं क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को हमेशा अबला तथा पराधीनता का लेबल लगाकर उससे सभी अधिकार छीन लिए। पितृसत्तात्मक संस्कृति ही स्त्री के लिए जंजीर बन गई। इस जंजीर को तोड़ने के लिए वह छटपटाने लगी। आधुनिकीकरण कहें या ये कहे कि समाज में ऊपरी तौर पर बदलाव आया पर मानसिकता पूर्ववत् ही रही परिवार में दोहरे मानदंड से उत्पन्न घुटन से मुक्ति पाने हेतु स्त्री आत्मकथाकारों ने अपने भोगे हुए जीवन को कलम के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

आत्मकथा का अर्थ ही है अपनी आप बीती कहना। मौलिक होने के कारण साहित्य जगत में इसकी अपनी विशेष पहचान है। व्यक्ति विशेष अपने जीवन में एक विशिष्ट मोड़ पर आने के बाद अपने जीवन में घटित घटनाओं के बारे लिखता है।

अपनी जीवनगाथा को पाठकों के समक्ष रखने के पीछे उसका उद्देश्य केवल अपने निजी जीवन को सार्वजनिक करना तो है ही, साथ ही अपने भोगे हुए जीवन को तटस्थता से देखना भी है।

उनके जीवन को जानना और समझना आज की स्त्री की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इतिहास की दीर्घा में १६४९ में रचित बनारसीदास जैन की आत्मकथा-अर्धकथानक लिखी गई,

दयानन्द सरस्वती-कुछ दिनचर्या, भारतेंदु-कुछ आप बीती कुछ जग बीती, भाई परमानन्द-मेरी राम कहानी, प्रेमचंद-आत्मकथात्मक 'हंस', बाबू गुलाबराय-मेरी असफलताएं, डॉ. श्यामसुन्दर दास-मेरी आत्मकहानी, राहुल सांस्कृत्यायन-मेरी जीवन यात्रा (कई भागों में),

यशपाल-सिंहावलोकन (कई भागों में), जानकी देवी बजाज-मेरी जीवन यात्रा-९ साल की उम्र में मैं विवाह हो गया-घूंघट से परेशान-लेखिका-ब्याह कैसे छूटे, तागड़ी

का मोह रखती हुई - तागड़ी क्या सारे गहनों को छोड़-राष्ट्रीय आन्दोलनों से जुड़ती है, खादी का प्रवेश-नमक सत्याग्रह-बापू के बलिदान की कहानी सुनाती है।

हरिवंश राय बच्चन-क्या भूलूँ क्या याद करूँ: बचपन से जवानी के प्रसंग, नीड़ का निर्माण फिर:श्यामा की मृत्यु से दुःख और तेजी से विवाह, बसेरे से दूर: केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु जाना, दशद्वार से सोपान तक: इलाहाबाद निवास दशद्वार से गुलमोहर पार्क दिल्ली में बनाए मकान, सोपान तक का वर्णन है।

वृन्दावन लाल वर्मा-अपनी कहानी, हंसराज रहबर-मेरे सात जन्म (चार भागों में प्रकाशित),

अमृतलाल नागर-टुकड़े टुकड़े दास्तान, डॉ. नगेन्द्र-अर्धकथा (जीवन की आधी तस्वीर प्रस्तुत की जाए), गोपाल प्रसाद व्यास-कहो व्यास कैसी कटी, मेहनदास नैमिषराय-अपने-अपने पिंजरे,

ओमप्रकाश वाल्मीकि-जूठन, सूरजपाल सिंह-तिरस्कृत व संतप्त। श्योराज सिंह बैचैन-मेरा बचपन मेरे कंधों पर, आदि आत्मकथाओं में निजी एवं जातीय संघर्ष है जबकि स्त्री आत्मकथाओं में-पितृसत्ता व्यवस्था से संघर्ष है।

इसी संदर्भ में कुछ प्रमुख स्त्री आत्मकथाओं पर बात की जाएगी।

स्त्री आत्मकथाओं में पितृसत्ता व्यवस्था से संघर्ष में अस्तित्व और अस्मिता की संघर्ष पर स्त्री नियति की बात करते हुए उसकी मुक्ति की चर्चा की जाएगी।

सीमान द बोडवार ने लिखा है 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि उसे बना दिया जाता है'। एक जीव के रूप में उसने जन्म तो लिया लेकिन पुत्री, पत्नी, बहन, माँ, प्रेयसी, अन्या, वेश्या इत्यादि पितृसत्तात्मक समाज द्वारा दिये गये नाम के तहत वह निरंतर शोषित होती रही। "समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिए हैं- पत्नी, रखैल और वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार ही नहीं करता है। जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो कहता है पत्नी लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता वह रखैल है। जहाँ वह न तो संरक्षण देता है न सामाजिक स्वीकृति, तो वह वेश्या होती है, क्योंकि संरक्षण के लिए उसे बहुतों पर निर्भर रहना पड़ता है, नतीजे में सामाजिक सम्मान का प्रश्न ही नहीं उठता।"



परिवार नामक संस्था पितृसत्ता का सबसे पहला और सबसे मजबूत आधार स्तम्भ है। परिवार में दो संरक्षक और एक उत्तराधिकारी होता है पहला संरक्षक पिता दूसरा पति और तीसरा संरक्षक पुत्र होता है जो उत्तराधिकारी भी होता है। ये तीनों मिलकर स्त्री पर अपना अधिकार जमाते हैं। यहीं से स्त्री की पराधीनता शुरू होती है। पिता, पति और पुत्र ये तीनों ही पुरुष सत्ता के प्रतीक बन जाते हैं और पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मजबूत आधार देने लगते हैं। स्त्री पुरुष सत्ता के अधीन होती चली जाती है और यह जान ही नहीं पाती कि वह पितृसत्ता के उत्पीड़न और शोषण का शिकार हो चुकी है। पितृसत्तात्मक मूल्यों ने नारी को एक विशेष साँचे में ढाला और साहित्य में वही छवि अंकित हुई। नारी को बचपन से ही उसी छवि को आदर्श मानकर चलने की शिक्षा दी गई थी। लंबे संघर्ष के बाद स्त्रियों को शिक्षा और संपत्ति के क्षेत्र में समान अधिकार मिले किन्तु पितृसत्तात्मक मूल्यों का सामाजिक वर्चस्व पूरी तरह नहीं टूटा। सेना, सत्ता, उद्योग, तकनीकी, विज्ञान, राजनीति, दफ्तर, विश्वविद्यालय, अदालतों, पुलिस आदि में अभी भी समस्त अधिकार पुरुषों के हाथों में हैं। स्त्रियाँ, पढ़-लिखकर नौकरी में आ रही हैं लेकिन वहाँ भी पितृसत्तात्मक नज़रिया सक्रिय रूप से हावी हैं। प्रभा खेतान का कहना है कि 'दुनिया घूमते हुए मैंने पाया कि औरत के काम के घंटे पुरुष की तुलना में ज़्यादा हैं। दुनिया में दो-तिहाई काम औरतें करती हैं लेकिन दुनिया की सबसे गरीब कौम औरत ही है।' पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को हमेशा अन्या ही मानता रहता क्योंकि सत्ता का स्वामी पुरुषवर्ग है और वह स्त्री को स्वतंत्र सत्ता मानने को तैयार नहीं होता।

आत्मकथा विधा आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है इसलिए नारी-शिक्षा और पितृसत्तात्मक समाज के भरण की प्रक्रिया के आरंभ होने की वजह से महिलाएँ लेखन के क्षेत्र में उतरने लगीं और अपनी आंतरिक घुटन और विद्रोह को आत्मकथा के माध्यम से व्यक्त करने लगीं। हिंदी की कथा लेखिकाओं की आत्मकथाओं में पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्थाओं की तीखी आलोचना मिलती है। हर लेखिका ने निजी स्तर पर भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत किया है। इन आत्मकथाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि इनका संघर्ष पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के खिलाफ है जिसे सामंती समाज व्यवस्था में कायम रखा गया है और अब पूँजीवादी और साम्राज्यवादी समाज-व्यवस्था में भी उसे कायम रखने

की कोशिश की जा रही है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था आज भी विद्यमान है बस उसके रूप बदल रहे हैं। यही कारण है कि महिला लेखिकाओं की रचनाओं में विशेषकर उनकी आत्मकथाओं में पुरुष सत्ता के वर्चस्व के खिलाफ तीखी आलोचना मिलती है। लेखन के स्तर पर भी प्रभा खेतान स्त्रियों के लिए कुछ अलग जगह की माँग करती है जो पुरुष लेखन से बिल्कुल अलग हो मुक्त हो। स्त्री द्वारा रचा उसका अपना संसार हो। वे लिखती हैं 'अक्सर मैं सोचती हूँ कि औरत अपने बारे में ऐसा कुछ लिखे, जिसे किसी पुरुष ने अभी तक न लिखा हो। क्या लिखना चाहिए? मैं अब भी नहीं समझ पा रही हूँ।... कुछ तो ऐसा होगा जो बिल्कुल हमारा, हम स्त्रियों का निजी सच होगा, हमारा अपना भोगा हुआ, जिया हुआ सच। अपना भोगा हुआ और जिया हुआ यथार्थ व्यक्ति अपनी आत्मकथा में ही व्यक्त करता है। उन्होंने जो जिया, जो भोगा उसे उसी रूप में अभिव्यक्त कर दिया। स्त्री चाहे कितना भी पैसा कमा ले, नाम कमा ले, लेकिन समाज उसे ऊँचा स्थान कभी नहीं देता। प्रभा खेतान इसकी भुक्तभोगी रही हैं। स्त्री त्रासदी को वे 'अन्या से अनन्या' में अभिव्यक्त करती हैं। कुछ बातचीत के अंश इस प्रकार हैं 'इसकी देखा-देखी हमारी बहू-बेटियाँ बिगड़ेंगी नहीं? और कल को वे किसी से भी उलझ जाए तो? इस औरत को हम मंच पर कैसे बैठाए? माना कि पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर स्त्री है पर ऐसी स्त्री समाज की नाक नहीं बन सकती' यह है हमारा भारतीय समाज जहाँ आत्मनिर्भर पढ़ी-लिखी स्त्री के प्रति ऐसा रवैया है। दोष सिर्फ इतना कि उन्होंने एक विवाहित पुरुष से निःस्वार्थ प्रेम किया। इस दंश को उन्होंने जगह-जगह पर महसूस किया वे लिखती हैं "मैं प्रभा खेतान..... मैं कौन हूँ? क्या मेरी कोई पहचान नहीं है? मैं सधवा नहीं, क्योंकि मेरी शादी नहीं हुई मैं विधवा नहीं.... क्योंकि कोई दिवंगत पति नहीं, मैं कोठे पर बैठी हुई रंडी भी नहीं.... क्योंकि मैं अपनी देह का व्यापार नहीं करती। मैं किसी पर निर्भर नहीं करती, स्वावलंबी हूँ, अपना भरण-पोषण खुद करती हूँ।... मैं क्या हूँ? मैं अबोध हूँ... अबोध माने मूर्ख। दीन-दुनिया से बेखबर, समाज की सच्चाइयों से दूर।" इतना ही नहीं समाज के इस रवैये पर तीखा प्रहार करते हुए वे लिखती हैं "मैं विवाहित होकर किसी से अफेयर चलाए रखती कुछ दिनों तक... तब भी ठीक था लोग स्वीकार लेते, आवारगी को समाज स्वीकार कर लेता है। मगर अविवाहित रहकर एक विवाहित पांच

बच्चों के पिता के साथ टंगे रहना, भला यह भी कोई बात हुई।” यह है हमारा पुरुष प्रधान समाज जहाँ पर हर बात के लिए स्त्री को ही दोषी ठहराया जाता है। डॉ. सर्राफ भी प्रभा खेतान से जुड़े हुए थे लेकिन एक भी ऊँगली उन पर नहीं उठती। डॉ. सर्राफ के साथ लेखिका का जो संबंध था वह समाज की दृष्टि से अनैतिक था क्योंकि यह एक स्त्री द्वारा लिया गया निगूण्य था और प्रतिकूल परिस्थिति में इस संबंध को बचाए रखने की जिद्द के कारण उन्हें व्यभिचारी तक कहा जाता है। जबकि डॉ. सर्राफ से कोई कुछ नहीं कहता। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की कोई पहचान नहीं होती! वह पुरुषों द्वारा निर्धारित रिश्तों और नियमों के तहत जीने के लिए बाध्य होती है जब कभी कोई स्त्री स्वेच्छा से कोई निगूण्य लेती है तो वह आवारा करार कर दी जाती है।

कृष्णा अग्रिहोत्री की आत्मकथा ‘लगता नहीं है दिल मेरा’ पितृसत्तात्मक समाज की नैतिक प्रतिमानों के खिलाफ स्त्री के हक में उठाए गए प्रश्नों का है, जहाँ स्त्री को मात्र भोग्या समझने वाले दृष्टिकोण का खुला विद्रोह है। लेखिका स्वयं मानती है कि “ये पुरुष हमारी संवेदनशीलता और ऊँचाई का अंदाजा नहीं लगा पाते... लेखिका ने कहीं भी निजी स्वार्थ के लिए किसी की समर्पिता बनना स्वीकार नहीं किया। पति का अत्याचार सहती रही। अपने वैवाहिक जीवन के प्रति कृष्णा जी का अनुभव बहुत दुखद रहा। वे कहती हैं ‘मुझे आज भी यही अहसास होता है कि जीवन तो नर-नारी दोनों का एक सा ही बीतना चाहिए। समझ व विश्वास से उसे तानाशाही की कालिख लगे संबंध को अंधेरा बना देती है। मैं दो पल इन्हें तांकती रही जिनकी दृष्टि में कोई अपनापन आत्मीयता न होकर अहं ही झलक रहा था।’ पितृसत्ता के अहं से स्त्री की चेतना हर पल आहत होती है। देह के स्तर पर पति द्वारा हर रोज शोषित होती थी “बीमारी में भी उन्हें रात में औरत की आवश्यकता थी और मुझे रोने के बाद भी एक पत्नी के दायित्व को पूरा करना पड़ता।’ यह औरत की नियति है। जहाँ लेखिका पति का घर छोड़कर पिता की शरण में जाती है तो पिता भी कह देते हैं कि ‘सोचा था कि तुम दोनों का ब्याह हो गया है, चलो कुछ तो मुक्ति मिली परन्तु तुम दोनों तो फिर से छाती पर मूंग दलने आ गई।’ कृष्णा जी चाहती थी कि पिता जी सिनेमा का एक हिस्सा उनको नाम कर दें ताकि उनकी कुछ आर्थिक मदद हो जाए लेकिन माँ ने स्पष्ट विरोध करते हुए कहा “मैं नहीं

चाहती कि मेरे बेटे के हिस्से में कोई भी बाहर का व्यक्ति भागीदार हो, बेटा भी नहीं।” स्त्रियों की ऐसी ही दयनीय अवस्था पर विचार करते अनायास ही यह विचार आना स्वाभाविक है कि ‘माँ-बाप सम्पत्ति के नाम पर और कुछ दें न दें, ब्याही हुई लड़की के हिस्से एक कमरा तो जरूर कर दें जहाँ वह कभी लौट सकती हो और सोच सकती हो नयी तरह से, आत्मनिर्भर जिन्दगी शुरू करने के बारे में। इतना ही हो जाये अगर तो उसे यह ताना न सुनना पड़े. कि रहेगी नहीं जो जायेगी कहाँ।’

मनू भंडारी की आत्मकथा भी पितृसत्ता के नए आयाम को दर्शाते हुए एक स्त्री की कहानी प्रस्तुत करती है जो अपने पति के अहं से स्वयं को मुक्त करना चाहती है। ‘एक कहानी यह भी’ में अपने पति और महान लेखक राजेन्द्र यादव के बारे में वे लिखती हैं तब किस बात से राजेन्द्र आहत हो जायेंगे, पता ही नहीं था। हंसी मजाक में मेरी या दूसरों के द्वारा कही गई साधारण सी बातें भी जब-तब उन्हें आत्मसम्मान पर चोट करती-सी लगती... मैं गुमसुम रहने वाले इस राजेन्द्र यादव में शादी से पहले वाले राजेन्द्र को ढूँढती रहती।” सच कहने का अपना तेवर होता है और यह मनू जी में दिखता है। पुरुषवादी अहं से ग्रस्त राजेन्द्र यादव के प्रति अपनी नाराज़गी व्यक्त करते हुए वे कहती हैं ‘मुझे इनके नौकरी न करने से न कोई शिकायत थी... न तकलीफ थी। तकलीफ थी तो सिर्फ इस बात से कि जब आप नौकरी कर ही नहीं सकते... करना ही नहीं चाहते तो कम से कम फिर मेरे नौकरी करने और घर चलाने पर इतनी-इतनी कुंठाएँ पालकर मेरा और अपना जीवन तो इतना असहज और तकलीफ देह मत बनाइए पर अपने अहं और सामंती संस्कारों से लाचार राजेन्द्र करें भी तो क्या करें” इस दाम्पत्य जीवन की समस्या यह थी कि यहाँ अर्थ स्त्री के हाथ में, जो अहंकारी पुरुष बर्दाश्त नहीं कर सकता जबकि स्त्री को आर्थिक रूप से कमजोर कर उसे पुरुष के अधीन करना पितृसत्ता की निशानी है।

प्रभा खेतान बराबरी की मांग करती है क्योंकि जब तक पुरुष स्त्री को समान दर्जा नहीं देगा वह शारीरिक या मानसिक रूप से शोषित होती रहेगी। मनू भंडारी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होते हुए भी पुरुषवादी अहं के कारण मानसिक यंत्रणा की शिकार होती रही। इसकी अभिव्यक्ति उनकी आत्मकथा में मिलती है अतः वे पुरुष सत्ता के वर्चस्व से वे भी मुक्ति चाहती थीं। मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ पितृसत्ता का

विरोध बिल्कुल खुले रूप में मिलता है। 'कस्तूरी कुण्डल बसे', हो या 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आत्मकथा के दोनों ही अंश पुरुष निर्मित पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों की धज्जियाँ उड़ाकर रख देते हैं। 'विवाह संस्था के दकियानूसी दंश को झेलती हुई कस्तूरी पारंपरिक विधवा की भूमिका का परित्याग कर नौकरीपेशा स्वावलंबी स्त्री की भूमिका में उपस्थित होती है और बेटी मैत्रेयी को भी इसी भूमिका में ढालना चाहती है। 'वह उसके नाक-कान छेदे जाने की भी विरोधी है। माँ बेटी को अपनी मूरत में कुछ यूँ ढालती है 'खादी के कपड़े, सूनी-बिन काजल की आंखें, खुश्क होता चेहरा, फटे-फटे हाथ-पाँव किसी चिकनाहट का इस्तेमाल नहीं। अपने वैवाहिक जीवन में कस्तूरी ने नाममात्र का भी सुख नहीं पाया। विकट संघर्षों से गुज़रकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि पुरुष के कारण ही नारी की ज़िन्दगी नरक बनी हुई है वैवाहिक जीवन से वह नफ़रत करती है जबकि उसकी बेटी मैत्रेयी विवाह करना चाहती है क्योंकि वह विवाह को अपनी मुक्ति का साधन मानती है लेकिन वह भी पितृसत्ता के चपेट में आ जाती है। विवाह की सेज से साफ सुथरी उठने के कारण पति के मन में उठे शक-सुबहे उसे बैचेन कर देते हैं वह समझ नहीं पाती कि आखिर पतिदेव उसे इतनी शक भरी नज़रों से क्यों देख रहे हैं। इसी अश्लीलता की कसौटी पर स्त्री को हर पल कसा जाता है। मैत्रेयी इस सत्य की भुक्तभोगी रही है। अश्लीलता की बनी बनाई लकीर जब न तब स्त्रियों को आगे जाने से रोकती है। विशेष तौर पर स्त्रियों के लिए तो बड़ी बाधा पैदा करती है क्योंकि अपने लिए कोई फ़ैसला लेना उसे अपनी गलती लगता है, अपराध-बोध जगाता है। और यहीं से उसका जीवन पराधीनता के हवाले हो जाता है।' अपनी आत्मकथा में पितृसत्ता के लिंग-भेद परम्परा का भी खुलासा करती है जहाँ वे एक पुत्री को जन्म देती हैं और डॉ. पति के चेहरे पर बारह बज जाते हैं। मैत्रेयी का मानना है कि 'जो पुरुष स्वयं इस बच्ची का पिता होने में हिचक मान रहा है उसे वह पति भी कैसे माने।' उत्तराधिकार के रूप में पुत्र पाने की इच्छा पितृसत्तात्मक सोच का प्रतीक है। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में मैत्रेयी ने अपने कैशोर्य, वैवाहिक जीवन और लेखक बनने की कथा लिखी है और साथ ही पितृसत्ता द्वारा शोषण को भी दर्शाया है। मैत्रेयी की खूबी इस बात में है कि वे सिर्फ स्त्रियों के साथ हुई शोषण को बताती ही नहीं बल्कि उसका मुँहतोड़ जवाब भी देती हैं। उन्होंने लिखा भी है "यदि कोई पति अपनी पत्नी की कोमल

भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है तो पत्नी को पतिव्रता के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।" चली आ रही परंपरा ने स्त्री के लिए जो मानदण्ड तय किया है जैसे तीज, करवाचौथ के व्रत, बेटे की सलामती के लिए व्रत इन सबको मैत्रेयी एक प्रकार से खारिज करती है और स्त्री अस्मिता की मांग करती है। स्त्रियों को अपने वजूद का अहसास दिलाती है। एक स्त्री द्वारा अपने अस्तित्व को कायम रखने की कथा है 'गुड़िया भीतर गुड़िया' जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पोल खोलते हुए स्त्री की संघर्ष कथा कहती है मैत्रेयी ने लिखा भी है "किताबों का गृहणियों के घर क्या काम, के सिद्धान्त को लेकर चलते हैं हमारे परिवार। हर सदस्य के लिए गृहणी हर समय उपलब्ध रहनी चाहिए। किसी भी मदद, जरूरत, सुविधा और शिकायत की बात सुनने के लिए भले वह उसके अपने ही खिलाफ क्यों न पड़े।" हर सदस्य से यहाँ तात्पर्य पुरुष से है क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री पुरुष (पति-पत्नी) में दास्य मालिक का संबंध है। कुछ स्त्रियाँ शिक्षित हैं भी तो पारिवारिक स्तर पर इस सत्ता से वे मुक्त नहीं हो पा रही हैं। मैत्रेयी स्वयं इसकी भुक्तभोगी रही है।

मैत्रेयी की लेखिका बनने की लालसा इनकी आत्मकथा का मुख्य विषय है तथा औरत के बाहर कदम रखने पर पुरुष कैसे तिलमिलाता है इसका भी जिक्र है। राजेन्द्र यादव के सम्पर्क में आना विभिन्न पुरुष आलोचकों और मित्रों से मिलना उनके जीवन की दिनचर्या बन जाती है इस कारण वे पति के शक का शिकार बनती हैं। तरह-तरह के लाने-उलाहने उन्हें सुनने पड़ते हैं इतना ही नहीं उनका दाम्पत्य जीवन भी खतरे में पड़ जाता है उनके पति कहते हैं "अब हमें अलग हो जाना चाहिए श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा! तुमने पुष्पा नाम की अहमियत छोड़कर मैत्रेयी का रूप धारण कर लिया, जिसे कम से कम मैं तो नहीं जानता-पहचानता।" यह है एक पुरुष का अहं, जहाँ वह स्त्री को अपनी मर्जी मानने के लिए बाध्य करता है लेकिन जब स्त्री अपनी इच्छानुसार कुछ करना चाहती है तो इसे इस तरह के वाक्य सुनने पड़ते हैं।

शिवानी की आत्मकथा 'सुनहु तात यह अकथ कहानी' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इस अनकही को लेखिका अब सबके साथ बाँटना चाहती है। चूँकि स्त्री आत्मकथा अपनी निज को व्यक्त करते हुए विभिन्न तरह के बंधनों से स्वयं को मुक्त करने का माध्यम है। स्त्री आत्मकथा

में स्त्रियाँ निज को सामाजिक बनाती हैं। इसमें प्रत्यक्ष रूप से उनके जीवन से जुड़े विभिन्न पहलू सामने आते हैं। इसमें जरूरी यह होता है कि हम अपने संबंधों की गांठ खोले। निजी और सामाजिक स्तर पर पाठकों से वार्तालाप करें तभी आत्मकथा ज्यादा रोचक और आकर्षित होगी। जबकि इस आत्मकथा में लेखिका का निजी संसार बिल्कुल छिपा हुआ है। इसमें उन्होंने अपने पारिवारिक सदस्यों माँ, बहन, बेटी, दादी, बहन के ससुराल वालों का आचरण बहन की मृत्यु इत्यादि प्रसंगों का जिक्र किया है। बहन की मृत्यु के लिए उसके ससुराल वाले जिम्मेदार हैं। पारंपरिक रीतियों का बोझ उनकी बहन चंदा नहीं ढो पाती है। पुरुषवादी संस्कार उसे जीने नहीं देते और वह दम तोड़ देती है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की कोई स्वतंत्र पहचान नहीं होती। उसका नाम जन्म से मृत्यु तक पिता, पति और पुत्र के साथ पैबन्द की तरह जुड़ा होता है। अगर वह इन सामाजिक बन्धनों से मुक्त होना चाहेगी तो उसका एक ही रास्ता है, आत्महत्या। शिवानी की बहन चंदा के साथ भी यही होता है लेकिन विडम्बना यह है कि इनता कुछ होने के बावजूद हमारा समाज उसे भुलाता नहीं बल्कि उसे सड़े हुए संबंध को निभाने की दुहाई देता है। शिवानी जी के दादा उनके पिता को समझते हुए कहते हैं “ये तुम्हारे समधी हैं, तुमने इन्हें कन्या दी है, इनसे बैर ठीक नहीं।” यह है पितृसत्तात्मक समाज का सामाजिक रूप जहाँ बेटी खोने के बाद भी इस तरह के संबंध से मुक्ति संभव नहीं।

रमणिका गुप्ता एक लेखिका से पहले सामाजिक कार्यकर्ता हैं। छोटानागपुर का आदिवासी क्षेत्र हो, बिहार विधान परिषद् या बिहार विधान सभा का सत्र हो या साहित्यिक क्षेत्र- सामाजिक मुद्दों पर राय बनाने का कोई भी मंच, वे हाथ से नहीं जाने देती। उनकी आत्मकथा ‘हादसे’ उनके जीवन में घटित विभिन्न हादसों का ब्यौरा है। यह आत्मकथा सिर्फ स्त्री, घर, परिवार समाज की चर्चा नहीं करती, बल्कि यह लीक से हटकर लिखी गई है। इससे गुजरते हुए एक तथ्य सामने आता है कि लिखना उनके लिए अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, वक्त और समाज को गढ़ने की संजीदा कोशिश है। स्त्री के लिए समाज वही है जो मनु ने गढ़ा था। परिवर्तन सिर्फ इतना कि आज की स्त्री शिक्षित होने के साथ आर्थिक रूप से सक्षम है लेकिन मानसिक तौर और शारीरिक शोषण आज भी अपने उसी रूप में विद्यमान है। घर या बाहर, समाज या राजनीति पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था और इसके

शोषण से स्त्री आज भी मुक्त नहीं है। स्त्री को आगे बढ़ते हुए आज भी पुरुष समाज नहीं देख सकता। रमणिका गुप्ता ने भी लिखा है “समीकरण बदलते रहते हैं पर अगर कोई यह कहे कि हमारा पुरुष समाज औरत को औरत समझकर उसकी हठधर्मिता बर्दाश्त कर ले या सह ले- तो यह नितान्त गलत-बयानी होगी। यह सच है कि पुरुष स्त्री को अपनी मर्जी के अनुसार रखना चाहता है, परिस्थितिवश स्त्रियाँ इस पुरुष सत्ता के अधीन होती चली जाती हैं। जबकि स्त्री को निर्मित फ्रेम को तोड़ना होगा। पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री शोषण का एक भी मौका नहीं छोड़ता परंतु कुछ लेखिकाएँ ऐसी हैं जो इस दिशा में इस व्यवस्था के खिलाफ कदम बढ़ा रही हैं। पारिवारिक स्तर पर रमणिका जी भी अपने पिता की आज्ञा के खिलाफ जाकर कहती हैं ‘एक दिन मेरे पापाजी ने कहा-‘ये फैसला तो बदलना होगा नहीं तो तुम दोनों में से किसी एक को ज़हर खाना होगा- तुम्हारी माँ को या तुम्हें!’ मैंने तुरंत जवाब दिया- ‘मेरी माँ और आप ज़िन्दगी का सुख देख चुके हैं, भोग चुके हैं, मुझे अभी ज़िंदगी देखनी बाकी है इसलिए ज़हर मैं नहीं खाऊँगी बीवीजी (माँ) खाए।’” ये एक औरत द्वारा अपनी इच्छा को महत्त्व देने की बात है जो पुरुष के अहं को ठेस पहुंचाता है। रमणिका गुप्ता की आत्मकथा या उनके लेखन की विशेषता यह है कि वे पुरुष का नहीं बल्कि पुरुष सत्ता का विरोध करती हैं जैसा कि प्रभा खेतान ने भी लिखा है कि “हम किसी व्यक्ति पुरुष के खिलाफ नहीं बल्कि इस पुरुष सत्ता के खिलाफ हैं।”

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा “शिकंजे का दर्द” दलित स्त्री के सामान्य जीवन को उजागर करते हुए एक अलग अनुभूति को साकार करती है और उसी में से समाज-संस्कृति धर्म व्यवस्था तथा पितृसत्तात्मक मूल्यों में जकड़ी हुई स्त्री का परिचय मिलता है। जाति के आधार पर महिला होने के आधार पर और गरीब होने के आधार पर तीन तरह का शोषण दलित महिला झेलती है, इस मुद्दे को सुशीला टाकभौरे ने बड़ी शिद्दत से उठाया है। वे लिखती हैं “समाज में नारी की स्थिति हमेशा निर्बल, असहाय रही। समाज में परम्परा के रूप में स्त्रियाँ न तो सम्पत्ति की अधिकारी हो सकती थीं और न ही घर की मुखिया। चाहे वे शिक्षित हों, स्वावलंबी हों, सम्पन्न हों, उन्हें सभी सुविधाएँ प्राप्त हों, फिर भी घर का मालिक पुरुष ही होता है। पुरुष अपनी सत्ता को कभी ताकत से, कभी समझदारी से और कभी छल-कपट से हमेशा अपने अधिकार में रखते हैं।” क्या पति के सामने

पत्नी का कोई स्थान नहीं होता? ससुराल में बहू की स्थिति क्या इतनी नगण्य होती है? उसे ऐसा क्यों बनाया गया? दुख के साथ हृदय में भावनाओं का बवंडर उठा था। 'सुशीला जी परिवार नामक संस्था के पुरुषसत्तात्मक सोच के खिलाफ लड़ती हैं। साथ-साथ समाज नामक दूसरी संस्था से, जहाँ उन्हें जाति के आधार पर हर पल तोड़ा मरोड़ा जाता है और उसके तीसरे आधार स्तंभ राज्य सत्ता से भी। कालेज की नौकरी करते हुए अच्छे पद पर होने के बावजूद उन्हें जाति के आधार पर हर पल नीचा दिखाया जाता है। वे लिखती हैं "मैं अपनी जाति के अपमान को भूल ही नहीं पाती हूँ। जाने अनजाने जो घटनाएँ घटती या प्रसंगवश जो बातें होती, वे मेरे जाति बोध को कुरेदती रहतीं। सम्मान होने पर भी मुझे सम्मान का बोध नहीं हो पाता। हमेशा अपमान की अनुभूति का एहसास मेरे आसपास ठहरा मिलता। कभी लगता मुझे उच्च शिक्षित और प्रध्यापिका का जो सम्मान दिया जाता है वह नकली है, बनावटी है। लोग औपचारिकतावश मजबूरी में मुझे यह सम्मान देते हैं यदि उनका वश चलता तो वह कभी मेरी सूरत भी नहीं देखते।" सुशीला जी को जीवन में हर कदम पर चुनौतियों का सामना करना पड़ा, लेखिका ने एक नहीं कई शिकंजों की बात की है। स्कूल में शिक्षक और विद्यार्थी सभी छूआछूत का पालन करते थे। कक्षा में सबसे पीछे टाट की पट्टी पर नहीं फर्श पर बैठना पड़ता था। दलित छात्र अपने हाथ से पानी लेकर पी नहीं सकता था। इसके लिए उसे दूसरे की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बचपन से लेकर जवानी तक और आत्म निर्भर होने पर भी दलित स्त्री को हर कदम पर दलित होने की पीड़ा से गुजरना पड़ता है।

कौसल्या बैसत्री की आत्मकथा है- दोहरा अभिशाप, वह मानती है कि स्त्री का जन्म पहला अभिशाप है और स्त्री का दलित होना दूसरा अभिशाप है। कौसल्या पढ़ी-लिखी नये विचारों की कायल, महिलाओं में अपने हक को लेकर जागृति का अभियान चलाती है। पर स्वयं अपने स्वाभिमान की लड़ाई लड़ती हैं। उनका मानना है कि घर संभालने का हो या बच्चों को संस्कार देने का काम तो हम औरतें ही करती हैं। हमारे इस काम की ओर पुरुष ध्यान नहीं देता। वह केवल सम्मान की भूखी है। उसकी बहुत ही सीमित स्त्री सुलभ अपेक्षाएँ हैं, जो समर्थनीय हैं।

हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ सिर्फ आत्मकथाएँ नहीं बल्कि व्यथा कथाएँ हैं। यह अनुभूति की सच्चाई, भोगे

हुए यथार्थ की कथाएँ हैं, इसलिए इन्हें स्वानुभूति की कथाएँ भी कहते हैं। स्त्री का सच, स्त्री की अनुभूति और उसकी बेबाक अभिव्यक्ति, अस्मिता संघर्ष, पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था, लिंग भेद जैसे मुद्दों पर जब लेखिकाएँ चर्चा करती हैं तो हमें विभिन्न स्त्री आत्मकथाओं की तुलना करने का अधिकार मिल जाता है। ये जो स्वानुभूति का संसार है वह व्यथित और चोट खाई स्त्रियों का है।

प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में संघर्षों से जूझते हुए अपनी पहचान कायम करने वाली स्त्री की छवि प्रस्तुत की है। इस आत्मकथा में एकनिष्ठ प्रेम का रूप भी दिखता है साथ ही समाज के क्रूर व्यवहार को सहने वाली अपनी नियति तय करने वाली जूझारू औरत का भी। प्रभा खेतान अस्तित्व की महत्ता बताते हुए कहती हैं "हम औरतें प्रेम को जितनी गंभीरता से लेती हैं, उतनी ही गंभीरता से अपना काम लेती तो अच्छा रहता जितने आँसू डॉक्टर साहब के लिए गिरते हैं तो उससे बहुत कम पसीना भी यदि बहा सकूँ तो पूरी दुनिया जीत लूँगी"। अतः इन पंक्तियों में सिर्फ आँसू बहाने वाली स्त्री नहीं दिखती तो एक पुरुष के लिए रोती रहे बल्कि दुनिया की नजरों में अपने अस्तित्व को कायम रखने वाली महिला का हौसला दिखता है जो एक सफल उद्योगपति बनने में अपनी सारी उर्जा लगा देती है। विवाहेत्तर संबंध के कारण पितृसत्तात्मक समाज का नज़रिया उनके प्रति कटु रहा लेकिन विपरीत दृष्टिकोण ने उन्हें तोड़ा नहीं बल्कि समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम करने के लिए और मजबूत किया। उन्होंने इन परिस्थितियों के सामने सिर नहीं झुकाया बल्कि इन्हें स्वीकारते हुए अपने को स्थापित किया। जो मारवाड़ी समाज उन्हें प्रतिष्ठित नहीं करना चाहता था उसी ने उन्हें कलकत्ता चेम्बर ऑफ कॉमर्स की प्रथम महिला अध्यक्षा का पद प्रदान किया। लेकिन प्रभा खेतान अपने अस्तित्व की लड़ाई में सफल सिद्ध होती हैं वे कहती हैं "प्रभा! यो तिल-तिलकर घुटने के लिए तो तुम पैदा नहीं हुई। यह जिंदगी हर व्यक्ति को बस एक बार के लिए मिलती है उसे जीना सीखो।" अस्तित्व और अस्मिता संघर्ष हर लेखिकाओं ने अपने-अपने जीवन में किया। इसकी बेबाक अभिव्यक्ति उनकी आत्मकथाएँ हैं। प्रभा खेतान को यह पता था कि अर्थ बिना मनुष्य की कोई इज्जत नहीं। खासकर औरत की। वे इस सत्य को अच्छी तरह जानती थीं कि स्वतंत्रता या आज़ादी अर्थ से ही मिलती है। निर्यात जगत में अपनी पहचान बनाने के लिए वे निरन्तर संघर्ष

करती रही। बहुत सी चुनौतियाँ आई लेकिन कुछ को अनदेखा किया और कुछ को स्वीकार करते हुए अपने को व्यापार की दुनिया में झोंक दिया वे कहती हैं “कुछ लोगों की नजर में यह एक छोटी विजय है, मेरी दृष्टि में यह आज़ादी की लड़ाई से कम नहीं।

मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ भी अस्तित्व और अस्मिता का संघर्ष दिखता है। विवाह जैसी बेड़ी में बांधकर कस्तूरी का जीवन नरक बना दिया जाता है कस्तूरी बौद्धिक स्तर पर सचेत और जागरूक महिला है लेकिन माँ और भाई के हाथों मजबूर होकर महज़ आठ सौ चाँदी के सिक्के के बदले बेच दी जाती है और कुछ समय बाद वैधव्य का दंश झेलती है। पर अपने अस्तित्व और होने वाली बच्ची के भविष्य के लिए वह पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ खड़ी होती है तथा यह संकल्प करती है कि “अब मेरी बेटी का मामला है मेरी कोख में जन्म लेने वाली मैत्रेयी का। मैं उसे इस खड्डे में नहीं गिरने दूँगी, जिसमें गिरकर औरत जीवन-भर निकलने को छटपटाती रहती है और एक दिन खत्म हो जाती है।” अपनी कोख पर हाथ रखकर लिया गया यह फैसला कस्तूरी की गहरी सोच, उसके साहस और अस्तित्व का ही सूचक है। कोख में आई संतान भी वह लड़की ही चाहती है तथा उसका नाम वह पहले ही रख देती है मैत्रेयी। कस्तूरी अपनी अस्मिता के लिए पूरे समाज का सामना करने को तैयार है। वह सिर्फ अपने विषय में नहीं सोचती बल्कि एक समाज सेविका बनकर पूरे गाँव की औरतों का कल्याण करना चाहती है तथा पारंपरिक, रूढ़ और जर्जर सोच से गाँव की औरतों को मुक्त करना चाहती है।

‘गुड़िया भीतर गुड़िया’ में भी घर-गृहस्थी के बंधे दायरे को तोड़कर अपनी रचनात्मकता (साहित्यिक लेखन) विकसित वाली लेखिका उभर कर सामने आती है। पैतालिस वर्ष की आयु में मैत्रेयी लेखन प्रारंभ करती है क्योंकि पत्नी और माँ की भूमिका निभाते हुए वे अपनी रचनात्मक दुनिया से कट गई थीं। लेकिन बेटियों द्वारा मनोबल बढ़ाने पर उनका हुनर इस तरह उभरकर सामने आता है कि बढ़ते कदम को रोकना मुश्किल हो जाता है। निरन्तर संपादकों द्वारा उनकी कहानियों का ठुकराया जाना, पति का विपरीत दृष्टिकोण कहीं न कहीं निराश करता है बावजूद इसके उनका मनोबल टूटता नहीं। इन परिस्थितियों से गुज़रते हुए मैत्रेयी को जीवन के धूप-छाव का सामना करना पड़ा लेकिन वे रूकी नहीं और अपनी योग्यता के बल पर उन्होंने साहित्य

की दुनिया में अमिट छाप बनाई।

कुसुम अंसल के यहाँ पहचान का संकट कैसे उनके जीवन में उथल-पुथल मचाता है। “अपनी अलग पहचान की आकांक्षा जब सिर उठाने लगती है, अक्सर तभी यह संकट खड़ा होता है। प्रायः जब भारतीय मध्यवर्गीय स्त्री ३५ के आस-पास पहुँचती है तो विवाह, पति, बच्चे, घर-गृहस्थी सबकी बीच वही है एक ‘फालतू’ जिसकी शायद किसी को अब कोई जरूरत नहीं। पति अपने धन्यों में व्यस्त है और बच्चे पढ़ाई या खेलकूद में। उसकी हर बात बाकी सभी को अवांछित हस्तक्षेप लगती है। सारा जीवन घर में होम करने के बाद उसके पास सिवाय सपनों के ‘स्वेटर’ उधेड़ने के रह भी क्या जाता है।” अधिकांश औरतें इसे नियति मान लेती हैं लेकिन कुछ स्त्रियाँ इसे बदलना चाहती हैं इसलिए आत्मसम्मान तथा अस्मिता की लड़ाई वे खुद से शुरू करती हैं। कुसुम अंसल भी घर-परिवार और बच्चों में बहुत दिनों तक अपनी योग्यता को दबाए रही पर अंततः वे कहती हैं “मैं आश्वस्त होकर पुनः उस सत्य की तलाश में जुट जाती उस सत्य की जो मेरी अपनी अस्मिता का है मेरे होने का है, पूर्ण हो जाने का है..... अपने अंतस को पहचान लेने का है।

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा पुरुष अहं और स्वार्थ से पीड़ित स्त्री की काँटों भरी जिंदगी की दास्तान है। साथ ही तमाम परिस्थितियों से जूझती अस्मिता और अस्तित्व के लिए जद्दोजहद करती स्त्री की गाथा है। पति द्वारा प्रताड़ित, मायके से सताई स्त्री जब बाहर निकलती है तो पितृसत्तात्मक समाज उसे बुरा कहता है। औरत के चरित्र पर ऊँगली उठाई जाती है लेकिन जो संघर्ष करके अपनी पहचान बनाती है अपने शर्तों पर जीती है उन्हें इस समाज की विकृतियों को सहना पड़ता है। कृष्णा अग्निहोत्री एक ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने पिता, पति की गुलामी स्वीकार नहीं की बल्कि काँटों भरी जिंदगी स्वीकार की और अपनी पहचान बनाई।

णका गुप्ता की आत्मकथा ‘हादसे’ औरत के सम्मान की गाथा है। आत्मसम्मान तथा अस्तित्व को महत्त्व देते हुए वे कहती हैं “मैं कांग्रेस से त्यागपत्र दे रही हूँ। मैं अपना रास्ता खुद बनाने में सक्षम हूँ। इसलिए अपना रास्ता खोज लूँगी, नहीं तो रास्ता ही मुझे खोज लेगा।” यानी वे किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती परिवार में भी अपने के खिलाफ जाकर पारंपरिक, रीति-रिवाज को अस्वीकार करती हैं क्योंकि इससे स्त्री का अहित होता है। उनकी आत्मकथा में स्त्री

मुक्ति, स्त्री निणय की बात है। वे मानती हैं कि औरत की पहचान उसके मर्दानी सोच या पहनावे से नहीं बल्कि मनुष्य होने से है इसलिए वे कहती हैं "अपनी अलग पहचान बनाने की धुन मुझमें इतनी तीव्र हो गई थी कि अगर किसी समारोह का निमंत्रण-पत्र मेरे नाम पर न आए तो मैं प्रकाश के साथ श्रीमती वी.पी. गुप्ता बनकर जाने से इन्कार कर देती थी। 'मुझे लोग मेरे कारण पहचाने प्रकाश की पत्नी होने के कारण नहीं मेरे मन में यह भावना अति तीव्र हो गई थी।' इनकी आत्मकथा अस्मिता की तलाश में निकली स्त्रियों को प्रेरणा देती है।

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' दलित स्त्री की वेदना की अभिव्यक्ति है। इसमें पूरे दलित समुदाय के लिए समता, स्वतंत्रता और न्याय की स्पष्ट माँग है। इनके परिवार के सभी सदस्य सफाई कर्मचारी का काम करते थे लेकिन लेखिका ने अपनी अलग पहचान बनाई। सवर्णों के साथ स्कूल में शिक्षा प्राप्त की और पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हुई। इन सबके दौरान यातनाएँ तो बहुत झेली लेकिन कमज़ोर पड़कर यथास्थिति के समक्ष घुटने नहीं टेके।

स्त्री नियति की चर्चा करते हुए प्रभा खेतान लिखती है "हमारी औरतें वह चाहे बाल कटी हो या गाँव देहात से आई हों, कहीं भी सुरक्षित नहीं। उनके साथ कुछ भी घट सकता है। सुरक्षा का आश्वासन पितृसत्तात्मक मिथक है। स्त्री कभी सुरक्षित थी ही नहीं। पुरुष भी इस बात को जानता है। सती-सावित्री रहने का निर्देशन स्त्री को दिया जाता है पर कोई स्त्री सती रह नहीं पाती हॉ सतीत्व का आवरण जरूर ओढ़ लेती है।

स्त्री मुक्ति का अर्थ बंदिशों और मजबूरियों से मुक्ति है। स्त्री द्वारा स्त्री होने की हीन भावना से मुक्त होना अनिवार्य है। इसी ओर प्रभा खेतान इशारा करती है। देश-विदेश भ्रमण करते हुए हर जगह उन्होंने पाया कि स्त्री मुक्त नहीं है "ये अमेरिकी औरतें भी हम भारतीय औरतों की तरह असहाय हैं। केवल पैट पहनने और मेकअप करने से औरत सबल नहीं हो जाती इस अमेरिका में भी औरतों को अपने हक के लिए लड़ना पड़ रहा है।" इन पंक्तियों के माध्यम से यह बताना चाहती है कि स्त्री अपनी ज़िन्दगी से जुड़े फँसले खुद लें, और अपनी ज़िन्दगी को खुद संयोजित करने के लिए आज्ञाद हो। अपनी इयत्ता को प्राप्त करने के लिए जिस दिन औरत सजग हो जायेगी उस दिन से मुक्ति

अभियान चलाने की आवश्यकता नहीं होगी। इसके लिए जरूरी है कि औरत स्वतंत्र निणय ले।

वास्तव में मुक्ति की यह लड़ाई स्त्री नियति को बदलने से है क्योंकि स्त्रियाँ निणय नहीं लेती जिसका फायदा पुरुष प्रधान समाज अपने तरीके से उठाता है। वह हमेशा 'अच्छी स्त्री' बनी रहे। 'अच्छेपन का ज़हर उसके खून में ऐसे घुलता गया, जैसे दर्दरहित इंजेक्शन दिए जाते हैं, जो नस-नाड़ियों से होते हुए रक्त धारा में समा जाते हैं। हृदय से मष्तिष्क तक बहते और उतरते हैं। ऐसी छवियों वाली स्त्रियों की मिसालें आदिकाल से हमारे सामने हैं। 'अच्छी स्त्री' की उपाधि पाने के क्रम में स्त्रियाँ हर तरह से शोषण की शिकार होती हैं। आज जरूरत है इस छवि पर अपना इन्कार दर्ज करने की।

अपने परिवार के लिए तो सभी लोग सबकुछ करते हैं-जो दूसरों के लिए कुछ करे वही इंसान है। हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाएँ जहाँ एक ओर अपने जीवन को परत दर परत खोलती हैं वहीं दूसरी ओर स्त्री विमर्श से जुड़े मुद्दों को भी सामने लाती हैं। यह सच है कि स्त्री-विमर्श ने स्त्री को वस्तु से व्यक्ति बनाया है। उसे मनुष्य होने का अहसास, बराबरी का बोध, मुक्त व स्वतंत्र रूप से निणय लेने का अधिकार और 'अपनी देह की मालिक मैं खुद हूँ' कहने का साहस दिया है। हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथाओं में इन सभी बातों से हम रु-ब-रु होते हैं। कृष्णा अग्रिहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में हम देखते हैं कि यहाँ स्त्री पुरुष की थोपी मानसिकता से ग्रसित है। भारतीय समाज में शादी से महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं। स्त्री शोषण से जुड़े कितने मुद्दे हैं वे विवाहोपरान्त ही उत्पन्न होते हैं। 'शादी का अर्थ, ऐसा लगा था जैसे मान्यताओं के पिंजरे में कैद कर किसी नाजुक पक्षी को सीक से कोंचा जाए और वह घायल न भाग सके, न उड़ सके, न मारने वालों को डरा सके।" एक पति की कल्पना किसी स्त्री के लिए आशियाने में बैठे प्यार से भीगे जीवनसाथी की ही होती है लेकिन जब उसे केवल पति के या ससुराल वालों के इशारों व मनमाने व्यवहार के सम्मुख सिर झुकाना होता है तो स्त्री का मन आहत हो जाता है। हर औरत अपने-अपने स्तर पर इस थोपी हुई मानसिकता से छुटकारा पाने के लिए छटपटा रही है। बाहर निकली औरत को पितृसत्तात्मक समाज स्वतंत्र औरत कहता है। यहाँ स्वतंत्रता का मतलब उस बिगड़ी हुई औरत से है जो हर थोपे हुए बंधन से अपने को मुक्त करना

चाहती है। थोड़ा साहस दिखाना स्त्री के लिए घातक हो सकता है। कृष्णा अग्निहोत्री ने इसे भोगा भी। इसलिए वे कहती हैं “मेरी सच्चाई और साफ़गोई की प्रतिक्रिया भयंकर हुई। मेरे पति ने लौटकर मुझे मेरी सास के सामने धकेलकर कहा, “तुम सबने मेरे गले कुलटा बांध दी, ये किसी और से प्रेम करती है।” स्त्री का अपने अधिकार के लिए बाहर निकलने का साहस उसे गलत साबित कर देता है। कृष्णा अग्निहोत्री ने इस तरह का अनगिनत अत्याचार सहा और जब नहीं सहा गया तब अलग हो गई। सच्चाई यह है कि इस तरह के संबंध से निकलकर लेखिका अपनी जीविका के लिए अनेक संघर्ष करती है और अपनी पहचान बनाती है।

स्त्री नियति और थोपी मानसिकता से मुक्ति की आवाज़ मैत्रेयी पुष्पा के यहाँ भी मिलती है। उनकी आत्मकथा के दोनों खंड ने अपने तरह से अलग हंगामा पैदा किया है। ‘कस्तूरी कुंडल बसै’ जहाँ एक ओर पितृसत्ता के आदेश पर बलि चढ़ती कस्तूरी को सामने रखता है वहीं परिस्थितियों से टकराकर साहस के साथ अपने पैरों पर खड़ी होने वाली कस्तूरी भी सामने आती है। थोड़े से पैसों के लालच में कस्तूरी को विवाह के नाम पर बेच दिया जाता है वह विरोध करना चाहती है लेकिन उसकी आवाज़ दबा दी जाती है “मैंने ब्याह नहीं करना चाहा था, किसी ने सुनी मेरी बात? मैं भाई के ब्याह के लिए बदले में किसी बूढ़े के साथ नहीं जाना चाहती थी, बस चुपके से बेच दिया मुझे। आज विधवा हो गई? मेरे साथ कौन है? चिन्ता है किसी को।” कस्तूरी ने वैधव्य का दर्द झेला, गाँव-घर की निंदा झेली। वैवाहिक जीवन और स्त्री पर थोपी गई पुरुष मानसिकता के खिलाफ वह अपनी आवाज़ बुलंद करती है तथा अपना जीवन अपने तरीके से जीने का निणय लेती है। वह अपनी बेटी के भविष्य को लेकर चिंतित है तथा उसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा करना चाहती है लेकिन नियति को कुछ और ही मंजूर था। मैत्रेयी शादी करना चाहती है। माँ द्वारा थोपे हुए निणय से खुद को मुक्त करना चाहती है। तंग आकर कस्तूरी परम्परा और मान्यताओं के विरुद्ध जाने का साहस जुटा कर टूटे-फूटे वाक्यों में बेटी की शादी करने की अनुमति दे देती है। उसका अन्तर्मन यह जानता है कि वैवाहिक जीवन और निरन्तर बढ़ती समस्याएँ कैसे स्त्री का मनोबल तोड़ती रहती है। इसलिए वह कहती है “‘लाली ब्याह हो गया पर तू नासमझ औरतों की तरह व्यवहार मत करना।

पाँव-पाँव मत पूजना किसी के भी। सुन ले कि ‘रोटी धुआई’ की रस्म, रस्म नहीं, तुझे चूल्हे-चौके से बांधने का महूरत निकलेगा। साफ मना कर देना। तेरी कुछ किताबें मैंने अटैची में रखी थी। किताबों का बोझ अटैची सह नहीं सकी और टूट गई।” साधारणतः देखा जाता है कि शादी के बाद हर माँ बेटी को ससुराल वालों की आज्ञा मानने की सलाह देती है हर पिता कर्तव्य पालन और ससुराल की प्रतिष्ठा के लिए बेटी को न्यौछावर होने की सलाह देता है। पाक शास्त्र में निपुणता की चाह रखने वाली स्त्री ही सुघड़ बहू कहलाती है लेकिन यहाँ कस्तूरी इन सबसे विपरीत है। वह जानती है कि ये सभी टोटके स्त्री को बाँधने के हैं जहाँ से बाहर निकलना बहुत मुश्किल है। इसलिए कस्तूरी मैत्रेयी को इन सबमें फँसने की सलाह नहीं देती वह तो कहती है “लोहे के बक्सों में तेरी किताबें हैं। बस, मेरी तो माँ के नाते इतनी ही कहावत है कि सिंगार-पटार में मत लगी रहना। तुझे बड़ा शौक है बिन्दी महावर का। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी जाना देखना कि पीएचडी की बात बनेगी या नहीं? सौ बातों की एक बात, अपना आना जाना अपनी इच्छा से करना। पति तो अपनी सुविधा से भेजेगा और लिवाने चला आएगा। कहने के बाद अपनी छाती से लगाया था बेटी को और उमड़ती आँखों के आंसूओं को जी कड़ा करके पी गई।

‘गुडिया भीतर गुडिया’ में मैत्रेयी पुष्पा ने लिखा है “सबसे पहले तो यह स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि स्त्री स्वतंत्रता की बात के मायने क्या है? क्यों अलग से स्त्री स्वतंत्रता की बात की जाती है? ऐसी कोई जरूरत पुरुषों को क्यों नहीं पड़ती और अगर पड़ती है तो उसकी माँग कहाँ है?” यह स्पष्ट है कि स्त्री पराधीन है उसे मुक्ति चाहिए। लेकिन समस्या यह है कि वह समझ ही नहीं पाती कि वह पराधीन है। जब उनसे आज्ञादी की बात की जाती है तो अपने में खोकर वे कहती हैं हम तो आज्ञाद है ही। अपने पति की बात मानना, उनकी सेवा करना, उनके लिए सजना संवरना, बच्चों के लिए काम करना, इससे ज्यादा हमें और क्या चाहिए यही हमारा स्वर्ग है। इस दौर से लेखिका गुजर चुकी है इसलिए वे अपने जीवन का हवाला देते हुए कहती हैं “मुझे खुद अपना ही किस्सा याद आता है। जब मेरी शादी की बात चली। मैं शादी करना चाहती थी और मेरी माँ आगे पढ़ाकर कुछ बनाना चाहती थी। मुझे अपने पति के सान्निध्य में जीवन बिताने में सुख नजर आ रहा था और लगभग अपनी माँ की अनदेखी करके मैंने ज़िन्दगी बिछिया, बिंदी,



महावर, मंगलसूत्र के हवाले कर दी। मेरी माँ का आशीर्वाद था कि मेरेक अंदर एक लिखने-पढ़ने वाला मन था। वो मन लाली-लिपिस्टिक से इतर भी सोचता था। वह किताबों के आस-पास मंडराता था। लेखिका यही बताना चाहती है कि हर औरत के अन्दर चेतना है बस उसको जगाने की जरूरत है।

सुशीला ने जाति का दंश हर कदम पर महसूस किया। इनके यहाँ औरत तीन स्तर पर शोषित दिखती है- गरीबी के स्तर पर, स्त्री के स्तर पर तथा दलित के स्तर पर। इसी शोषण से मुक्ति की गुहार लगाते हुए लेखिका कहती है “समाज में नारी के प्रति ‘अबला’ की मानसिकता को बदलकर नारी को सबलरूप में स्थापित करना नारी मुक्ति का उद्देश्य है।

नारी शोषण की स्थितियों को बदलकर उसे सभी अधिकारों से सम्पन्न बनाना सामाजिक प्रगति और परिवर्तन का लक्ष्य है। सम्पूर्ण दलित समाज और नारी वर्ग को शोषण-अपमान से मुक्ति का अधिकार मिलना चाहिए।” अतः मुक्ति का अर्थ यह नहीं कि जो काम स्त्री घर में करती है वही काम पुरुष भी करे। स्त्री मुक्ति का अर्थ है स्त्री की पुरुष के समान आज़ादी तथा एक समान अधिकार। मनु भंडारी की आत्मकथा ‘एक कहानी यह भी’ में अपनी आप बीती में कहती है एक अपाहिज पति को पूरी जिंदगी बर्दाश्त करना कोई आसान बात नहीं। लेकिन भारतीय स्त्रियों में पति परमेश्वर को छोड़ने वाली मानसिकता विकसित नहीं हुई है। पति अयोग्य पत्नी को छोड़ सकता है लेकिन पत्नी नहीं। अब इसे मजबूरी कहें या नियति, स्त्री इसे भोगने के लिए अभिशप्त है। औरत से घर और बाहर दोनों जिम्मेदारी निभाने की मांग की जाती है। इस पूरे क्रम में सबसे ज़्यादा स्त्री ही पीड़ित होती है। जो स्त्रियाँ शिक्षित हैं वे तो एक हद तक ठीक हैं लेकिन गरीब और अशिक्षित स्त्रियों की स्थिति भयानक है। केवल गरीबी ही स्त्री के लिए बाधक नहीं है। गरीब तो पुरुष भी है, अर्थाभाव तो वह भी झेलता है, क्योंकि जातिवाद का शिकार भी वह है। मगर पितृसत्तात्मक समाज की स्त्री-विरोधी परंपराओं का आयाम पूरी तरह विशिष्ट है। ये परंपराएँ स्त्री को घर सौंपती हैं। मानवता के नाम पर वृद्ध और बीमारों के लिए उससे निःशुल्क सेवा लेती हैं और बदले में उसके द्वारा की गई सेवाओं का महिमा-मंडन कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लेती हैं। स्त्री भूखी है या मर रही है, इसकी चिंता किसी को नहीं होती।” पितृसत्तात्मक

नज़रिये की गहराई को देखते हुए हम कह सकते हैं कि पुरुष प्रधान समाज द्वारा बड़े प्रयत्नों के बाद स्त्री और शुद्र को गुलाम बनाया गया इसीलिए इन स्थितियों को बनाए रखने के लिये उसने उत्पीड़न के नए-नए तरीके ईजाद किए। घर-परिवार तथा परम्परा का पालन स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य माना गया। प्रभा खेतान इसी रूप में हमारे सामने आती हैं। पिता की संपत्ति पर अधिकार होने के बावजूद प्रभा खेतान की माँ अपनी बेटियों के भविष्य को लेकर चिंतित हैं। हम सभी जानते हैं कि पितृसत्तात्मक समाज में संपत्ति के उत्तराधिकारी के रूप में लड़का और लड़की दोनों की भागीदारी है लेकिन वास्तविक संपत्ति पर अधिकार पुरुष ही जताता है जिस किसी बहन ने विवाह के पश्चात संपत्ति में अपना अधिकार मांगा वह भाई बहन का संबंध राख में मिल जाता है। प्रभा खेतान के परिवार में अथाह धन था लेकिन वे अपना अधिकार या यूँ कहे संपत्ति में अपना अधिकार नहीं मांग पातीं, क्योंकि वे लड़की थीं।

पितृसत्तात्मक लिंग-भेद की दमनकारी नीति का खुलासा कुसुम अंसल के यहाँ मिलता है। लड़की होने के कारण भेद-भाव किया जाना, शिक्षा, परिवार तथा हर महत्वपूर्ण मुद्दों पर लेखिका को काटने की कोशिश की गई। बड़े भाई को इंजीनियरिंग करने के लिए लंदन जाना था इसलिए उसकी भरपाई लेखिका ने की। पिताजी का मानना था कि यह तो लड़की है जरूरत लायक शिक्षा प्राप्त करने ले फिर तो शादी कर देनी है। दहेज देना है तो इतना रुपया लड़की की पढ़ाई पर क्यों खर्च किया जाए। एम.ए. की परीक्षा फर्स्ट डिवीजन से पास करने पर लेखिका को अपने सपने पूरे करने के लिए विदेश नहीं भेजा गया, महज़ एक लड़की होने के कारण। विवाह हुआ एक मध्यवर्गीय परिवार में जहाँ व्यवसाय के जरिये आर्थिक समृद्धि पाने की धुन महत्वपूर्ण थी। आगे चलकर कुसुम अंसल ने थोड़ा विद्रोह किया और ‘इप्ता’ के माध्यम से कला और साहित्य की दुनिया से जुड़ी। सम्पादक लेखक इस पूर्वाग्रह से बंधे हुए थे कि एक समृद्ध महिला अच्छा और प्रमाणिक लेखन कर ही नहीं सकती? यहाँ भी स्त्री की योग्यता को पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण ने कुचलने की कोशिश की। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए तथा इसकी गुत्थियों को खोलते हुए प्रभा खेतान लिखती है “स्त्री की अपनी संस्कृति है अपना इतिहास है, जीवन और परम्परा है, जो पुरुष से भिन्न है। साहित्य के इतिहास में इसे भिन्न तो माना जाता रहा, किन्तु भिन्नता को

अलग पहचान नहीं दी गई। साहित्य जगत में भी स्त्री पुरुष के संबंधों पर विवेचन करते हुए पुरुष की सत्ता स्वीकृत हुई। सत्ता की शक्ति का आधार पुरुष था, अलग से स्त्री की सत्ता नहीं थी नतीजतन स्त्री सत्ता को अलग पहचान ही नहीं मिली।

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का चक्रव्यूह ऐसा है जिसे तोड़े बिना स्त्री की मुक्ति संभव नहीं। जरूरत है इस मानसिकता से अपने को बचाने की। परिवार की चिंता किए बिना कस्तूरी अपने रास्ते खुद निकल जाती है क्योंकि उसे बेटी को अफसर बनाना है अपने पैरों पर खड़े होते देखना है। औरत की इस सोच पर पितृसत्तात्मक समाज बौखला उठता है कि पुरुष ने हमेशा से यही चाहा कि हर निणय वही ले। अहम मुद्दों पर निणय पुरुष का होता है यही कारण है कि बेटी के रिश्ते की बात लेकर कस्तूरी जब उसके ससुराल वालों से मिलती है तब लड़के के पिता को बर्दाश्त नहीं होता और वे कहते हैं “रोज़-रोज़ आ जाती है। तूने यह घर खाल का घर समझ लिया है? झोला उठाया और चल दी। हमारी कोई इज्जत नहीं है क्या, कि शादी ब्याह जैसा मामला लुगाई तै करे, जा यहाँ से, कोई मर्द-मानस हो तो भेजना।

औरत से जुड़ा कोई भी मुद्दा चाहे उसकी पहचान आज़ादी मुक्ति हो, हमें इस हकीकत का गहरा एहसास होना चाहिए कि हम एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जो पुरुष वर्चस्ववादी है। प्रेम विवाह करके जहाँ मन्नू भंडारी पिता रूपी पुरुष वर्चस्व के खिलाफ जाती है वहीं दूसरी ओर पतिरूपी पुरुष के जाल में फँस जाती है। मीता के साथ राजेन्द्र यादव के संबंध, कारण उनका दाम्पत्य जीवन खतरे में पड़ जाता है। बहुत कोशिश की बहुत संभाला, नहीं सहा गया अलग हो गई। इसका कारण पुरुष की सामंती सोच है। कहीं न कहीं राजेन्द्र यादव भी इस बात से परिचित थे। इसलिए हर जगह इसे स्वीकार भी करते हैं। एक साक्षात्कार में मानते हैं कि मन्नू के प्रति जो मेरी भूमिका रही यदि वहीं मन्नू की मेरे प्रति होती तो मैं बर्दाश्त नहीं सकता था। विचारों से आधुनिक होने के बावजूद राजेन्द्र यादव में ये सामंती संस्कार पुरुषवादी सोच मौजूद है यही कारण है कि काम पर जाने वाली मन्नू भंडारी को छोटी सी बच्ची का पालन-पोषण भी खुद करना पड़ता है। एक प्रसंग का जिक्र करती हुई वे कहती हैं कि उनकी बेटी रिकू की तबीयत बहुत खराब थी। ताँबई रंग का सूजा हुआ चेहरा.... तथा उसकी बेचैनी देखकर लेखिका

घबरा गई वैसी हालत में उसे बाहर ले जाना उचित नहीं था। लेखिका ने कहा “पहले रिकू की दवाइयाँ दे जाएं, फिर कहीं जाए तो इन्होंने कहा कि साहित्य अकादमी की एक बहुत ही जरूरी मिटिंग है, मैं वैसे ही लेट हो गया हूँ।... बेटी की ऐसी हालत देखकर भी राजेन्द्र यादव को कोई फर्क नहीं पड़ा क्योंकि बच्चा संभालना उनकी जिम्मेदारी नहीं। पितृसत्तात्मक समाज में घरेलू काम तथा बच्चों की सेवा देखभाल औरत के जिम्मे है यही कह कर पुरुष अपना पल्ला झाड़ लेता है लेकिन नौकरी करना, घर संभालना, बच्चा संभालना ये सब एक औरत करे, क्या ये पितृसत्तात्मक वर्चस्व का स्त्री के प्रति अन्याय नहीं है? राजेन्द्र यादव की पितृसत्तात्मक सोच का पता इस बात से चलता है जब वे कहते हैं “मेरे विचार से पत्नी को एक नर्स की भांति होना चाहिए जो सिर्फ पति की सेवा करे, बदले में उससे अपेक्षा कुछ न करे।”

रमणिका गुप्ता के यहाँ पितृसत्तात्मक नज़रिये का जो रूप दिखता है वह स्त्री को सिर्फ और सिर्फ गुलाम बनाना चाहता है। लेखिका एक सम्मानित डॉक्टर की बेटी तथा सरकारी अफसर की पत्नी रही हैं, बावजूद इसके ये बिहार के पिछड़े अशिक्षित और भूखमरी के शिकार उन क्षेत्रों में पहुँच जाती है जहाँ सामन्तवाद की शिकार जनता प्रतिदिन जी और मर रही होती है। न्याय के लिए लड़ने वाली इस साहसी महिला को भी पितृसत्तात्मक रवैये का शिकार होना पड़ा। उसकी तह तक जाते हुए तथा स्त्रियों की दयनीयता का कारण बताते हुए वे कहती हैं “मैं भी इन ग्रंथियों से मुक्त न थी सम्भवतः रूढ़िग्रस्त परिवेशों, सामन्ती माहौल से निकली महिलाओं को जब एकाएक जीवन के यथार्थ का सामना करना पड़ता है तो ये ग्रन्थियाँ, जो बचपन से ही उनकी चेतना में कूट-कूटकर भर दी जाती हैं और एक कवच के रूप में बांध दी जाती हैं, उन्हें घेर लेती हैं। उनका बहिर्मुख और अन्तर्मुख तनिक सी ठेस से धसक जाता है-जरा से आवेष से बह जाता है-पल भर में बहक जाता है और किसी भी सुझाव से मुड़ जाता है। मेरे व्यक्तित्व में भी ये दोनों ग्रन्थियाँ उभरती रही हैं।” स्त्रियों के लिए जो आदर्श और संस्कार निर्धारित किए गए हैं उनसे बाहर आने के लिए अभी बहुत संघर्ष करने की जरूरत है क्योंकि यह पिंजड़ा इतना व्यापक है कि इसकी तह तक जाने के लिए और उसे खोलने के लिए स्त्री को जर्जर मूल्य तोड़ने की जरूरत होगी। हर औरत इन पुरुष वर्चस्ववादी मानसिकता

से मुक्त होना चाहती है लेकिन जैसे ही वह परम्परागत रूढ़ियों के विरुद्ध कुछ करना चाहती है, तत्काल अपराध बोध से ग्रसित हो जाती है। वह अपने आचरण को गलत समझकर, खुद को ही दोषी मानती रहती है। इसी 'गलत' का अहसास उसे असुरक्षित और भयभीत करता है।

हिंदी की तमाम आत्मकथाएँ अपने-अपने स्तर पर स्त्री के संघर्ष की व्यथा कथा कहती है। औरत के संघर्ष के केन्द्र में उसका अस्तित्व है। इस 'अस्तित्व' की राह पर आगे बढ़ने वाली स्त्री उन चुनौतियों को स्वीकार कर, हर लेखिका ने अपने-अपने स्तर पर अनेकों समस्याओं का सामना किया। किसी भी लेखिका की आत्मकथा पढ़कर यह नहीं कहा जा सकता कि उसने ऐसा क्यों किया, क्योंकि जिस जीवन पर हम ऊँगली उठाते हैं उसे जीना आसान नहीं पर हिंदी की लेखिकाओं ने इस जीवन को जीया और अपने भोगे हुए यथार्थ को बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त भी किया।

हमेशा ध्यान रहे, समस्या का समाधान, समस्या के ज्ञान पर निर्भर है। और यह ज्ञान ज्ञाता की अपेक्षा रखता है। याद रहे अधिकार के इच्छुक व्यक्ति को अधिकारी भी होना चाहिए। सामान्यतः भारतीय स्त्री में इसी विशेषता का अभाव मिलेगा। कहीं उसमें साधारण दयनीता है और कहीं असाधारण विद्रोह, परन्तु संतुलन से उसका जीवन परिचित नहीं है।

अंत में एक बात लिखने से स्वयं को रोक नहीं पा रही।

जमाना कल भी खराब था और आज भी खराब है

द्रौपदी का चीरहरण करने वाले को लोग भूल गए पर जिसने सीता को हाथ न लगाया,  
वो रावण आज तक जल रहा है।



## परिचय

एम.ए (हिंदी), महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, हरियाणा! एम.फिल (हिंदी) गुजरात विश्वविद्यालय! पीएच.डी जामिया मिल्लिया इस्लामिया! पुस्तकें: हिंदू धर्म शास्त्र, साठोत्तरी कहानी में परिवार, भारतीय संस्कार, विज्ञापनों में प्रयुक्त हिंदी, कायाकल्प, चक्रव्यूह। संपादन समकालीन साहित्य के विविध पक्ष एवं समकालीन साहित्य और समाज।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और संपादित संपादित पुस्तकों में लेख शोध लेख प्रकाशित।

पुरस्कार-सम्मान: भारत सरकार, गृहमंत्रालय (राजभाषा) द्वारा हिंदी सेवा सम्मान (२०१९), भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा सम्मानित (२०१९) तथा गुरु नानक देव के ५५ वे प्रकाशउत्सव के अवसर पर (इग्नू, मीरपुर, रेवाड़ी) सम्मानित, राजभाषा गृह मंत्रालय द्वारा हिंदी सेवा सम्मान २०२०

राजभाषा भूषण सम्मान २०२१

संप्रति: प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

मोबाइल: ९८१०८९६९९०

Email: induvirendra@gmail.com

## कविताएँ

---

### प्रफुल्ल कोलख्यान

१

ये क्या कह गये!  
खुद ईश्वर को  
ईश्वर का वरदान  
कह गये!

और पूँजी!  
ये क्या कह गये!!

खैर प्रभु की मर्जी  
मालिक जो कह गये  
सो कह गये!

अच्छे दिनन का फेर!  
जी अच्छे दिन का फेर मालिक  
अब जो रहे आँख तेरेर मालिक  
जी ज्ञानी रहे कोई या रहे अज्ञानी  
सब तेरे आगे भरे, चलनी में पानी  
गंगा जमुना में पानी रहे या न रहे  
प्रभु इच्छा मालिक की नादानी रहे!

२

सच, जिनका दावा है कि कभी नजदीक हुए नहीं उनके  
मैं उनके ही दूर हो जाने के दुख का इकबालिया बयान हूँ

सदियों से जारी इस सफर में सभ्यता के हर मुकाम पर  
मैं मंजिल नहीं, आकुल-व्याकुल, थके प्राण का प्रस्थान हूँ

वह मुहब्बत एक शब्द है उम्दा किताबों का बड़ा प्यारा  
उन उम्दा किताबों के पन्नों का दुख पगा छोटा गान हूँ

सच तू न माने या न माने, दुनिया को कोई खबर नहीं  
और बाकी बातों का क्या, अभी बंद कोयला खदान हूँ

सारी जिंदगी पहाड़ों में गुजरी हो जिसकी, मैं उसकी  
आँखों में ठिठकी-सी खामोशी की हाँफती हुई ढलान हूँ

अपनी झुर्रियों से कोई शिकायत क्या करे जो कोई अब  
मैं तो, उन हजारों रुसवाइयों का, ढह चुका दालान हूँ

सच, जिनका दावा है कि कभी नजदीक हुए नहीं उनके  
मैं उनके ही दूर हो जाने के दुख का इकबालिया बयान हूँ



प्रो. डॉ. राम आह्लाद चौधरी

## निर्गुण ढांचे की जान रैदास

### प्रो. डॉ. राम आह्लाद चौधरी

अब कैसे छूटै राम नाम रट लागी

प्रभु जी, तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी।  
प्रभु जी, तुम धन बन हम गोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।  
प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती जाकी जोति बरै दिन राती।  
प्रभु जी, तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहि मिलत सुहागा।  
प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

निर्गुणिया संतों में रैदास का नाम अन्यतम है। विश्व साहित्य में निर्गुण संतों ने जिस तरह से अपना स्थान बनाया है, उससे यही लगता है कि एक कालखंड को किस तरह बदलना आवश्यक हो जाता है तथा उस कालखंड को बदलने से समाज को क्या-क्या मिलता है; यह एक पेचीदा सवाल है। जनमानस में सिर्फ 'मिलने' का हिसाब करने या रखने की प्रवृत्ति है, पर जनमानस 'खोने' का भी हिसाब रखता है। सवाल रखना तभी मुकम्मल होता है; जब 'पाने' और 'खोने' का हिसाब रखा जाए; यह तभी संभव होता है, जब मनुष्य खुद को पहचानते हुए यह सिद्ध करता है कि इस दुनिया में उसे क्या करना है; क्या करना है, उससे भी बड़ा सवाल यह है कि क्यों करना है और क्यों करने से भी महत्वपूर्ण 'कैसे' करना है। जिन रचनाकारों ने 'कैसे करने' का सही-सही आकलन तैयार किया है, उन रचनाकारों की रचनाएं कालजयी बन गयीं। और जब कोई रचना काल को जीत लेती है, तब उसके मूल्यांकन का क्षितिज भी अनन्त दिखने लगता है। काल

को जीतने का सीधा-सीधा अर्थ यही है कि एक रचनाकार किस तरह से अपने समय का विधान लिखता है। यह सच है कि उस विधान का मूल्यांकन उस तरह से नहीं होता है, जिस तरह से उसके मूल्यांकन की अपेक्षा समाज करता है। पर आने वाले समय में उस मूल्यांकन को अपनी जगह बनानी पड़ती है। अपनी जगह बनानी कठिन है। जगह बनानी और जगह नहीं बनानी में कोई फर्क नहीं है; लेकिन फर्ज अदा करने के उद्देश्य से जगह बनानी अत्यंत जरूरी है। इसी फर्ज अदा करने के चलते मनुष्य अन्य जीवों से अलग है। उदाहरण के लिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि मनुष्य के अलावा अन्य जीव जब भोजन खोजने लायक हो जाते हैं, तब वे इस संसार में जी लेते हैं। लेकिन मनुष्य को सिर्फ भोजन खोजने तक या जीने तक ही सीमित नहीं रहना पड़ता है। उसे दूसरों के लिए भी जीना पड़ता है यानी दूसरों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए कारगर हस्तक्षेप करना पड़ता है। मनुष्य इसलिए महान् है कि उसने दूसरों के लिए 'जीने' को जाना। हर मनुष्य दूसरों को लिए जीता

है; नहीं चाहकर भी उसे जीना पड़ता है। यदि कोई ऐसा नहीं करता है, तो उसे मानव की कोटि में नहीं रखा जाता है। यह सच है कि इस कार्य में आनंद नहीं मिलता; पर मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह आनंद प्राप्ति के लिए ही करता है। यदि जीवन के किसी कार्य में आनंद नहीं मिलता है, तो इसका कदापि अर्थ यह नहीं कि वह काम उसे पसंद नहीं है या वह काम उसके लिए अनर्गल है। दरअसल जीने में दुःख है और यही दुःख आने वाले कल का खजाना है।

यह सिर्फ ज्ञान की चर्चा करना नहीं है; समय को खपाने के लिए समुद्र से एक-एक बाल्टी पानी निकालना नहीं है बल्कि सच की उपलब्धि करना है। सच की उपलब्धि करना भी कठिन है। क्या सच है और सच को किस तरह अपनाया जाए- यह एक दूसरा महत्वपूर्ण सवाल है। यदि सच की उपलब्धि हो जाती है; तो उसके अनुसार आगे कार्यक्रम बनाया जा सकता है, लेकिन वही ठीक होगा, इसकी गारंटी कोई नहीं दे सकता है। जिसे इस संसार में निष्ठुर कहा जाता है, जिसने अपनी निष्ठुरता बार-बार उपस्थित की है, जिसकी निष्ठुरता ने समाज को एक हद तक नुकसान पहुँचाया है; हो सकता है कि उसके स्वभाव में अचानक परिवर्तन आ जाए और वह महान संत बन जाए या जो संत बनने के लिए चला है, वह महा दानव बन जाए। दुनिया में इस तरह के हजारों हजार घटने वाली घटनाओं के परीक्षण से यही पता चलता है कि रचनाकारों को सृजन का उपाय खोजना पड़ता है। इसके लिए उन्हें उपमा और रूपक का सहारा लेना पड़ता है। उपमा और रूपक के प्रयोग में रैदास का जोड़ मिलना मुश्किल है। रैदास ने जीवन को नजदीक कसे देखा तथा जीवन को बेहतर बनाने के लिए उपमा और रूपक को नवजीवन प्रदान किया। दरअसल विचारों को जब रूपक-उपमा में बदल दिया जाता है, तभी किसी रचनाकार की रचनात्मकता या सृजनशीलता की असलियत सामने आती है, जैसा कि रैदास के पदों को पढ़ने से पता चलता है। सृजनशीलता का अनुशीलन महत्वपूर्ण है; इस अनुशीलन की बात इस पर निर्भर नहीं करती है कि अनुशीलन करने वाला व्यक्ति कहां से आया है। वह कहीं से आये, उसकी कलात्मक क्षमता को परखा जाता है। जहां विज्ञान आवश्यकता को पूरा करने का काम करता है वहीं साहित्यिक कलात्मकता जीवन को संघर्ष की राह पर उन्नत करती है। यह बानगी जहां-तहां उपलब्ध नहीं होती है, उल्लेखनीय है कि गङ्गे से

पूरे समाज को साहित्यकार निकालने में सक्षम होते हैं। साहित्यकारों के अलावा किसी दूसरे में वह क्षमता नहीं होती है कि गङ्गे से समाज को निकाल सके। आखिर रचनाकारों में यह क्षमता कहां से आती है? इस प्रश्न का जवाब यही है कि एक सृजनशील व्यक्ति अपनी कलात्मकता के जरिये ही पूरे समाज को न केवल गङ्गे से निकालता है बल्कि पूरे समाज को एक नया आयाम देता है। इस आयाम के चलते ही रचनाकार अमरत्व प्राप्त करता है; जैसा कि रैदास को अपनी रचनाओं के जरिये ही अमरत्व प्राप्त होता है। यह अमरत्व किसी वीर को मिलता है या नहीं; यह कहना मुश्किल है। निश्चित रूप से वीर के वीरत्व की प्रशंसा की जाती है; पर गहराई में जाने के बाद पता चलता है कि वीरत्व की एक सीमा होती है। सीमाओं का अतिक्रमण करना वीरों के लिए कठिन होता है, जबकि सर्जक के लिए सीमाओं का अतिक्रमण करना अत्यंत सहज होता है; इसलिए कि सर्जक हवा के रुख को समाज के हित में बदल देते हैं जबकि एक वीर को हवा के रुख में खुद को बदल देना पड़ता है। एक वीर आर-पार की लड़ाई लड़ता है जबकि एक सर्जक आर-पार से परे जाकर जीवन संघर्ष को रचनात्मक संघर्ष में बदलने का प्रयास करता है। रचनात्मक संघर्ष सीधे-सीधे जीवन का मूल्यांकन करता है और उस मूल्यांकन से जीवन की कमी दूर होती है। रचनात्मक संघर्ष जीवन के अभाव को दूर करते हुए उसके जीवन को चहुँमुखी विकास की राह पर ला खड़ा करता है; जबकि एक वीर की वीरता किसी न किसी रूप में उसे सत्ता की गलियारे में धकेलने का प्रयास करती है। इस पर गौर करने से यह पता चलता है कि जीवन को निष्कलंक निष्पाप बनाने में जहां रचनाशीलता की भूमिका होती है इसलिए कि सृजनशीलता हमेशा सृजक को सत्ता और उसकी गलियारे से दूर रखती है। सृजनशीलता निश्चित रूप से वर्तमान को संवारते हुए भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। यही कारण है कि किसी कालखंड का सही-सही विचार रचनाकार ही करता है। उस पर जब-जब किसी का ध्यान जाता है; तब-तब यही कहा जाता है कि सृजनशीलता का अधिष्ठान त्याग है। त्याग के बिना कोई किसी का गुण नहीं गाता है।

इस संदर्भ में यही कहना पड़ेगा कि यही वह बिन्दु है, जहां से रैदास पर नजर डाली जा सकती है। रैदास ने अपने जीवन में जितना त्याग किया, उस त्याग

पर यदि किसी की नजर जायेगी, तभी वह समझ सकेगा कि रैदास ने इस दुनिया के लिए क्या किया, जिस दुनिया में सुबह-सुबह सूरज को उगना पड़ता है तथा शाम होते-होते डूबना पड़ता है। जाहिर है कि रैदास को क्या नहीं मिला; एक से बढ़कर एक आमंत्रण आया; कभी इस राजा के यहां से, तो कभी उस महाराजा के यहां से, रैदास ने हर आमंत्रण के लिए दिल से शुकिया अदा की लेकिन किसी आमंत्रण के बंधन में वे नहीं फंसे। किसी आमंत्रण के बंधन में नहीं फसना ही सबसे बड़ा त्याग है और यदि इस दृष्टि से रैदास ही क्यों और अन्य रचनाकारों के त्याग पर विचार किया जाए तो स्पष्ट होगा कि दुनिया के सभी रचनाकारों ने कुछ न कुछ त्याग किया है और उसी त्याग के चलते उन रचनाकारों को लोग याद रखते हैं। यदि दुनिया उन्हें याद नहीं भी करे, तब भी उनकी याद ताजा हो उठती है; क्योंकि इस संसार में कहीं-न-कहीं उनका कृतित्व झलक ही उठता है; जैसा कि रैदास का व्यक्तित्व झलक उठता है और इस झलक के कारण ही मीरा उन्हें अपना गुरु मानती हैं। जिस रचनाकार को मीरा जैसी शिष्या प्राप्त हो, उस रचनाकार के लिए क्या कहना; हिंदी भाषा और साहित्य में शायद ही ऐसा गौरव किसी संत को मिला होगा और यह गौरव उन्हें हासिल है, तब यही कहना पड़ेगा कि सचमुच उस रचनाकार ने या उस संत ने अपने जीवन कितना बड़ा त्याग किया। ऐसा लगता है कि आलोचना पद्धतियों में मूल्यांकन करने के लिए त्याग को आधार ही नहीं बनाया गया है; जब त्याग को आधार नहीं बनाया जायेगा, तब वह आलोचना पद्धति एक तरह से प्रशंसा-पद्धति बन जाती है और जहां प्रशंसा होने लगती है; वहीं से पतन शुरू होता है। प्रशंसा पूरी तरह से पतन की सच्ची भूमिका होती है। कहा भी गया है; जब जहर देने कोई नहीं मरता है, तब उसकी मृत्यु प्रशंसा करने से हो जाती है। प्रशंसा जैसा खराब तत्व इस संसार में कुछ और नहीं है। प्रशंसा जीवन को कुंठित करती है। प्रशंसा राह का अवरोध है; और उसी तरह प्रचार भी जिन्दगी की राह की खाई है। जिसे प्रचार की भूख लग जाती है, उसका पेट कभी नहीं भरता है, चाहे वह दर-दर क्यों न भटके। ज्ञान के अभाव में कोई भटकता है, भटकने की भी अपनी लय हो सकती है। लेकिन लय सिर्फ जिन्दगी की होती है। यदि गायक गायिकी जानता है, तो उसका मुंह खुलते ही शब्द दिल को जीत लेता है। शब्द वही है, जो दिल-दिमाग को व्यवस्थित

करे तथा नियंत्रित करे। पतवार रखने से नाव थोड़े चलने लगती है, बल्कि पतवार चलाने वाला मांझी चाहिए। सही अर्थों में सृजन करने वाला व्यक्ति मांझी होता है। उसे पता है कि समुद्र में किस तरह राह खोजना है। यह जीवन सात समुंद्र से कम नहीं है; यहां भी राह की तलाश करनी पड़ती है। लेकिन क्या एक दिन में राह की तलाश होना संभव है। एक दिन में क्या होगा; सुनते हैं कि इस पृथ्वी को ठंडा होने में दस हजार करोड़ साल लग गये। कौन हिसाब रखता था, यह भी कहना मुश्किल है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में यही कहा जायेगा कि हिसाब रखने वाला हिसाब रखता होगा। हिसाब रखने से क्या होगा, इसलिए कि हिसाब भी एक तरह का अनुमान है, जिसकी निजी प्रवृत्ति है। जिसने अपनी वृत्ति को सुधारने के सिलसिले में कुछ बना डाला, उसकी प्रवृत्ति सामने आ गयी; यदि ज्यादा उसने अपनी जान-पहचान बना ली, तो उसकी यही प्रवृत्ति उसकी विशेषता बन जाती है। और जब किसी की विशेषता सामने आ जाती है, तब वह प्रमुख बन जाता है। मूल्यांकन ने; ब्रांडिंग ने लूट के लिए रास्ता चौड़ा किया। जिसने अपनी यात्रा इस राह पर शुरू की, वह हर वक्त शंका-अशंकाओं के बीच ऊब-डूब खाने के लिए मजबूर रहा। इस मजबूरी से बाहर निकलने की राह भी कहीं मिलती है, यदि राह मिलती नहीं है, तो पथिक कहां से आते हैं।

पथिक को अपनी राह बनानी पड़ती है। चलते-चलते जिस तरह राह बनती है, ठीक उसी तरह लिखते-लिखते रचना बनती है। निरंतर संघर्षरत रहना ही जीवन की बुनियादी पहल है; जैसा कि रैदास ने निरंतर रचनात्मक संघर्ष को सम्मान दिया। और यही कारण है कि रैदास ने ज्ञान का 'पीथी' किया अक्सर लोग ज्ञान का पहाड़ खड़ा करते हैं, जबकि रैदास ने हमेशा ज्ञान का पान किया और ज्ञान का पान करते-करते उन्होंने अपने तर्कों को प्रमाण से सजाया है। यह सच है कि प्रमाण के बिना तर्क का कोई महत्त्व नहीं है। यह सच है कि ढांचे पर सबकी नजर जाती है, पर ढांचे को बनाने या ढांचे के निर्माण में कौन-सा महत्त्वपूर्ण अवदान है, उसके सम्बन्ध में जब भी किसी का ध्यान जायेगा, तब वह यही कहेगा कि रैदास निर्गुण ढांचे की जान हैं। यदि निर्गुण भावधारा से रैदास को हटाया जाए और यह देखने की कोशिश की जाए रैदास के बिना निर्गुण का ढांचा कैसा दिखता है, तब यही कहा जायेगा

कि निर्गुण की पूर्णता एक तरह से शून्यता में बदल गयी है; वह पूर्णता क्यों नहीं अपूर्णता को प्राप्त कर सकी। यदि वह पूर्णता एक हद तक अपूर्णता के रूप में बदलती तब उसे ठीक करने का मौका मिल सकता था, लेकिन जब पूर्णता पूरी तरह से शून्यता में बदल जाती है, तब वह ढांचा सदा के लिए अपने अस्तित्व से हाथ धो बैठता है। इस कठिन भाव को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि जीवन यदि मृत्यु में समा जाता है, तब एक पूर्णता एक हद तक शून्यता में बदल जाती है, लेकिन वही पूर्णता जब अपूर्णता में बदलती है, तब वह बीमार हो जाती है। सृजन करने वाले व्यक्ति को यह पूरा पता होता है कि कब जीवन की पूर्णता शून्यता में बदलती है और कब वह अपूर्णता में बदलती है। यह बदलाव क्यों होता है, इसकी व्याख्या भी रचनाकार ही करते हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है कि गति पैदा करने की क्षमता सिर्फ जीवन में है। इस पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति इसलिए विद्यमान है क्योंकि जीवन में गति है। विज्ञान जहां जवाब देना बंद कर देता है, वहां साहित्य तुरंत जवाब हाजिर करता है। जैसा कि विज्ञान गति को परिभाषित करता है तथा उसके प्रभाव पर आलोकपात करता है। वही साहित्य यह बताता है कि आखिर गति कहां से आती है। यह जवाब कितना सही या गलत है, यह किसी को पता नहीं है, लेकिन रैदास ने यह स्पष्ट कर दिया कि ज्ञान की चर्चा करने के लिए तर्क और प्रमाण दोनों की आवश्यकता होती है। प्राच्य दर्शन का महत्त्व तभी ज्ञात होता है, जब कोई संत अपनी वाणी का उपयोग जीवन के कल्याण के लिए करता है। जीवन को उज्ज्वल बनाने के नाम पर संतों ने कागज को सिर्फ काला नहीं किया है बल्कि कागज पर जिंदगी की एक तस्वीर खींची है, जो जीवंत है और साथ-साथ मोहक है। रैदास के पदों की जीवंतता किससे छिपी हुई है। इसलिए रैदास ने निश्छलता के निर्गुण को प्राथमिकता दी है। इस निश्छलता के चलते रैदास को चारों तरफ से आमंत्रण मिलने लगा यानी एक तरह से उनके सामने प्रश्न-पत्र हाजिर होने लगे, इस प्रश्न का जवाब देना ही होगा; पर कौन सुनने वाला है-जवाब? रैदास ने हर सवाल का जवाब दिया है। जवाब भी अपने-अपने ढंग से समझना होगा। सिद्धांत के महारथियों द्वारा वाक्य के अर्थ को गरिमामय बनाने के हजार प्रयास करने के बावजूद इस शून्य जगत में किसी भी एक वाक्य का जहां सटीक अर्थ नहीं निकल पाता है, वहां रैदास ने अपने

जवाब से इस चित्र शून्यता को रसमय बना दिया। निर्गुण में कितना रस है, इसकी सही-सही जानकारी रैदास को मालूम है और यही कारण है कि रैदास ने निर्गुणिया भावधारा में रस का इतना मोहक संचार कर दिया कि चारों तरफ रस ही रस छलकने लगा, चारों तरफ उद्यान हरे-भरे दिखने लगे। रैदास ने यहीं तक खुद को सीमित नहीं रखा है बल्कि उन्होंने अपने पदों में सुगंध को भी संचारित कर दिया। इस संचार में गति के साथ-साथ एक प्रक्रिया की वकालत है। रैदास को निश्चित रूप से निर्गुण भाव धारा का संत-कवि कहा जाता है और उन्हें भाव प्रधान दार्शनिक कहना ही उचित है, लेकिन उनकी नजर में यथार्थ के चित्र स्थिर नहीं नजर आते। उन चित्रों में गति है, वे चित्र चिल्लाते नहीं हैं, उन चित्रों में 'हाय-हाय' की बीमारी नहीं है; वे चित्र सहज दिखते हैं। वे चित्र इसी धरती की उपज हैं, जिस उपज को देखकर इस धरती के लाल गदगद हो जाते हैं, क्योंकि रैदास की स्थापनाएं खंडन-मंडन की प्रक्रिया से नहीं गुजरती हैं, उनकी स्थापनाएं सहजता की राह पर चलते-चलते निश्छलता की मंजिल हासिल करती हैं। इसलिए रैदास को आकुल-व्याकुल नहीं होना पड़ता, इसलिए रैदास को न किसी को चुनौती देनी पड़ती है और न किसी की चुनौती स्वीकारने के लिए मुठभेड़ करना पड़ता है। रैदास को अच्छी तरह मालूम है कि समुद्र का पानी बादल बनेगा और पहाड़ों के बीच से वह बादल गुजरेगा और प्यासी धरती की प्यास बुझायेगा; हालांकि कहने वाले कहते रहेंगे कि जो बादल गरजता है वह बरसता नहीं है। कहने का अभिप्राय यही है कि बादल की पहचान उसके गरजने बरसने पर नहीं निर्भर करती है, उसकी पहचान इसी पर निर्भर करती है कि उसने धरती की प्यास किस हद तक बुझाई है, जैसा कि रैदास अपने काव्य के पाठकों की प्यास निश्छलता रूपी बादल से बुझाते हैं। रैदास में आत्मगौरव है। जहां पूरे समाज में जाति-पांत के आधार पर विभाजन है और जिस विभाजन के चलते समाज टूट के कगार पर पहुँच गया था, वहां से समाज को खींचकर रैदास ने एक ऐसे मुकाम पर खड़ा कर दिया, जिसे देखकर कोई भी प्रसन्न हो सकता है, जैसा कि रैदास ने लिखा है:

‘कहैं रैदास सुनि के सवे अंतहकरन विचार तुम्हारी मगति कै कारनै फिरि है है चमार’ रैदास ने उपेक्षा को खराब नहीं मानते हुए उसे उपलब्धि सिद्ध करने का प्रयास



किया है। इस प्रयास की वजह से रैदास की रचनाशीलता अमर हो जाती है। यदि उस अमरता की तरफ ध्यान दिया जाए, तो यह कहा जायेगा कि रैदास के पदों का गायन आज तक ही कायम नहीं है बल्कि आने वाले कल को भी वह गायन प्रकाशवान बनायेगा। और यही कारण है कि रैदास के पदों को जीवन से जोड़ने का जो प्रयास मध्यकाल में शुरू हुआ था, वह प्रयास जारी है और भविष्य में भी जारी रहेगा। जहां जाति मान-अपमान की कसौटी बन गयी थी, वहां रैदास ने उस कसौटी को तोड़ते हुए अपनी सरलता और सहजता का परिचय दिया। रैदास ने अपने जीवन संघर्ष को न केवल संतों की परंपरा से जोड़ने का काम किया बल्कि उस परंपरा में उन्होंने चार चांद लगाने की कोशिश की। उस कोशिश में उन्हें पूर्णता हासिल हुई। इस पूर्णता ने इस सृष्टि को एक नया आयाम दिया है। इस आयाम के जरिये इतिहास को भी आधार मिलता है। इस सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि प्राच्य के कवियों ने दार्शनिकता को आधार बनाकर इतिहास चेतना को सामाजिकता से जोड़ने की सार्थक कोशिश की है। इस कोशिश को सिर्फ व्याख्या के आधार पर देखना उचित नहीं है बल्कि इस कोशिश को कार्यान्वित करने से जीवन की सार्थकता प्रकट होती है। यही कारण है कि रैदास की सारी कोशिशों को जीवन-जगत की प्रगति कहना अनुचित नहीं होगा। संत साहित्य में रैदास शिरोमणि कहे जाते हैं, यह भी कहना उचित होगा कि खुद कबीर ने रैदास के सम्बन्ध में कहा है कि संतों में रैदास संत हैं। और यही कारण है कि रैदास निर्गुण ढांचे की जान हैं और पहचान भी। इस जान और पहचान के आधार पर यह स्थापित करना वर्तमान संदर्भ का सबसे महत्वपूर्ण काम है कि रैदास ने कभी भी प्रशंसा और प्रचार के दलदल में कदम नहीं रखा। यह कहना कि प्राच्य दर्शन ने सदा प्रशंसा और प्रचार को दरकिनार किया है; अत्यंत प्रसांगिक है। साथ ही एक सवाल उठता है कि यदि प्राच्य ने प्रशंसा और प्रचार को तरजीह नहीं दिया, तब भला मौजूदा दौर में प्रशंसा और प्रचार की इतनी भूख कहाँ से आ गयी; चारों तरफ जहां तक नजर जाती है, हर किसी को प्रचार और प्रशंसा चाहिए, वही लेने की प्रवृत्ति जाग उठी है और यह प्रवृत्ति लगातार तेज होती चली जा रही है। आंचलिक स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उठने वाले तूफानों के कारण ऐसा लोभ-लालच पैदा हो रहा है और यह लोभ-लालच युग

की प्रवृत्ति बन गयी है। जिस धरती पर इतने बड़े-बड़े संत हुए, जिन्होंने त्याग के जरिये समाज की सारी चुनौतियों का सामना करते हुए विकल्प तैयार किया; उस विकल्प को आखिर किसकी कुदृष्टि लग गयी। सही अर्थों में भारत नामक इस धरती को लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा है और लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ेगा, तभी जाकर रैदास सहित उन सभी संतों की वाणी सार्थक और मंगलदायक बन पायेगी, जिन संतों की महिमा सूरज और चांद भी गाते थकते नहीं हैं। ऐसा क्या कारण है कि सूरज और चांद को भी उनका मूल्यांकन करने के लिए जीवन का सुर धरना पड़ा। संतों ने जीवन को भाव दिया। उस भाव के रस ने दुनिया को एक ध्वनि दी और वह ध्वनि यही है कि मानव का विकल्प मानव होता है, जिसे खुद को प्रस्तुत करना पड़ता है- इस जगत में एक मानव के रूप में। और जब किसी रचनाकार की दृष्टि एक मानव की सृष्टि करती है, तभी जाकर वह रचनाकार काल से मुठभेड़ करने में सफलता हासिल करता है। इसी बात का सच्चा प्रमाण है- रैदास के जीवन से जुड़ी विविध घटनाएं और उनकी वाणियां। रैदास ने संत काव्यधारा के अन्य कवियों की तरह समन्वयात्मकता को जगह दी है। इस समन्वयात्मकता ने जीवन को आधार दिया है, निश्चित रूप से इस आधार ने अधिरचना के विभिन्न कोनों को सजाया है। सजाने और संवारने के कार्यों पर गौर करने से पता चलता है कि रैदास ने जूता बनाने का काम किया। सचमुच जूते के बिना संजने-संवरने की प्रक्रिया पूरी नहीं होती है। जहां लोग चेहरों को सजाने के लिए उपादान खोजते हैं, वहां रैदास ने पैरों के लिए जूते प्रस्तुत करते हुए मंदिर-मस्जिद को एक कहने का प्रयास किया। जिन विचारों से रैदास का काल मथा जा रहा था, उस काल को अपनी वाणी रूपी मथनी से रैदास ने मथकर रख दिया; जहाँ मक्खन के रूप में कुछ मिला तो वह कुछ और नहीं जीवन की निश्छलता है। यही निश्छलता रैदास की वाणी में मौजूद है।

रैदास ने जिस भावलोक का निर्माण किया है, वह अपने-आप में अनोखा-अद्वितीय है। यह कहना उचित होगा कि रैदास ने एक शोषणहीन समाज की कल्पना की है। दरअसल इस कल्पना के जरिये विकल्प की स्थापना होती है। कल्पना कवि रैदास की कविताओं के धरातल पर सहज रूप से उतरती है; इसके लिए रैदास को गढ़ना नहीं पड़ता है यानी ईंट-पत्थर जुटाना नहीं पड़ता। सहजता को

जीवन से जोड़ते हुए रैदास ने एक सुन्दर-सी कल्पना की है कि यह दुनिया बेगमपुरा की तरह हो, जहां की मोहकता सभी को आनंद दे सके, जहां रहने वाले सभी एक-दूसरे के साथी हों, जहां दुःख न हो, जहां भेदभाव न हो, समाज कई स्तर में विभाजित न हो। इस बेगमपुरा का वर्णन करते हुए रैदास ने यह बताया कि इस बेगमपुरा के नागरिक उनके मित्र हैं। मित्रता को आधार बनाकर मानवता की रक्षा करने का रैदास ने एक सुंदर-सा दृष्टांत स्थापित किया है। इस दृष्टांत को कैसे कारगर किया जा सकता है, इस सम्बन्ध में भाववादी जिस तरह चुप रहते हैं, उसी तरह से रैदास चुप हैं, ऐसी बात नहीं है। रैदास ने इसके लिए श्रम और कर्म की महत्ता को स्वीकार किया है। यह कहा जा सकता है कि गहरी मित्रता की फसल श्रम के जरिये ही संभव है। 'बेगमपुरा शहर' अचानक नहीं बन जाता है। यहां यह भी लक्षित होता है कि रैदास ने शहर की अवधारणा पेश की यानी शहरीकरण पर उन्हें ज्यादा विश्वास है। इससे यह भी लगता है कि रैदास यह अच्छी तरह जानते थे कि गांव से शहर की ओर मानव सभ्यता की अग्रगति होती है। यही वह बिन्दु है, जहां यह कहा जा सकता है कि रैदास की काव्य-कलात्मकता में तर्क के साथ-साथ विज्ञान भी समाहित है। जिस कविता में विज्ञान के उपादान होते हैं, उस कविता की ग्रहणशीलता आकर्षण है। इस ग्रहणशीलता की चर्चा रैदास की कविताओं में बार-बार हुई है। उनकी कल्पना एक उम्मीद जगाती है, वह उम्मीद सहज और स्वाभाविक। रैदास के पदों के पाठक को यह विश्वास होता है कि उम्मीदें पूरी हो सकती हैं, इसलिए रैदास के पदों का अध्ययन-मनन-चिंतन ज्यादा से ज्यादा होता है। यदि इस दृष्टि से संत साहित्य के सभी संतों पर ध्यान केंद्रित किया जाए, तो स्पष्ट होगा कि रैदास ने अपना पाठक-समुदाय तैयार किया। रैदास के पाठकों की संख्या अन्य संतों की अपेक्षा है। रैदास के पाठक मूल्यों को लेकर जीते हैं। जहां मूल्यों के क्षरण का जमाना चरम की ओर आगे बढ़ता जाता है, वहां रैदास ने मूल्यों की स्थापना पर जोर देते हुए मित्रता को मजबूत कपर विचार किया है। यदि मित्रता मजबूत होती है, तो समाज की बुनियाद भी शक्तिशाली बनेगी। सिर्फ समाज में लेने की प्रवृत्ति पर बल देने से काम सफल नहीं होता है, बल्कि समाज को शक्तिशाली बनाने के लिए त्याग की भावना सबसे महत्वपूर्ण है। त्याग की भावना से समाज में

विश्वसनीयता पैदा होती है। जिस कविता में भ्रम दूर करने की क्षमता जितनी होती है, वह कविता उतनी विश्वसनीय होती है; जिससे समाज में मंगल की भावना स्थापित होती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि त्याग की प्रवृत्ति से कविता ही न केवल विश्वसनीय बनती है बल्कि मित्रता भी मजबूत होती है। यही कारण है कि रैदास ने बार-बार बेगमपुरा में मित्रता की गुणवत्ता पर रोशनी डाली है। मध्यकाल में जहां अक्सर गांव की प्रधानता थी, वहां यदि कोई शहर की अवधारणा पेश करता है, तो यही महसूस होता है कि उस सोच में निश्चित रूप से आधुनिकता की अवधारणा रही है; यदि आधुनिकता की अवधारणा को नहीं भी माना जाए, तो इस बात को स्थापित करने में किसी तरह का मलाल नहीं है कि तत्कालीन समाज में रैदास ने बेगमपुरा शहर की अवधारणा पेश की, जो निश्चित तौर पर उस समाज में निर्माण की प्रक्रिया को गति देती है। जब अवधारणा गति देने का काम करती है, तब शब्द सुन्दर हो उठते हैं, और शब्दों द्वारा रचित वाक्य वाणी बन जाते हैं और उस वाणी का अपना महत्त्व कायम हो जाता है, जैसा कि रैदास ने लिखा:

बेगमपुरा सहर नो नाऊं, दुखु अंधों नहीं तिहि  
ठाउं।

ता तसवीस खिराणु न मालु, तड़कू न खता न  
तरसु ज्वालु।।

काइमु-दाइमु सदा पाती साही,

दोम न सेम एक सी आही।

आबादानु सदा मसहूर,

ऊंहा गनीठासहि मामूर।।

तिउं तिउं सैल करहि जिउं भावै,

मरहम महिल न को अटकावै।

कहि रविदास खलास चमारा,

जो हम सहरी सो मीतु हमारा।।

रैदास ने एक ऐसे बेगमपुरा की स्थापना करने की इच्छा जाहिर की है कि जहां दुःख और अंधेरे के लिए जगह नहीं होगी। क्या मानव समाज इस तरह की दुनिया बसा सकता है; क्या ऐसा संभव है? मानव समाज निश्चित रूप में ऐसा संसार बना सकता है, रैदास की यह वाणी तब तक कारगर साबित नहीं होगी, जब तक कि वैसा शहर बन नहीं जाता है और यही कारण है कि रैदास के काव्य-लोक की शाश्वत प्रासंगिकता अभी बरकरार है और

आने वाले दिनों में यह प्रासंगिकता और उज्ज्वल साबित होगी। इससे यह पता चलता है कि रैदास की कविता जन चेतना की संवाहिका है। जब किसी कविता द्वारा जन चेतना को संवहन करने की क्षमता अर्जित कर ली जाती है; तब यह पता चलता है कि कविता के सृजक ने इस दुनिया में किस तरह का विकल्प पेश किया है। सही मायने में सृजनशीलता में विकल्प प्रस्तुत करने की क्षमता होती है। इसी क्षमता के जरिये कवि और कविता की गुणवत्ता स्थापित होती है; जैसा कि रैदास की गुणवत्ता स्थापित होती है।

रैदास की गुणवत्ता इसी में निहित है कि श्रम के बिना और कुछ नहीं है इस संसार में कि जिसके जरिये कुछ किया जाए। इस वाक्य की अर्थव्यक्ति यही है कि इस संसार में जो कुछ दिखता है वह श्रम के कारण ही दिखता है। मानव समाज श्रम के महत्त्व को समझता है तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार श्रम करता है। यह कहा जा सकता है कि श्रम ही विकास का स्रोत है। जो श्रम करता है, वह चैन से सोता है। श्रम करने वालों को दुःख नहीं झेलना पड़ता है, हां, यह है कि उसे बार-बार धोखा खाना पड़ता है। लेकिन धोखा खाने से प्रगति बंद नहीं होती है, जो धोखा देता है, उसकी प्रगति रुक जाती है। प्रगति उसकी सुनिश्चित है, जिसने श्रम करने में खुद को खपा दिया है। श्रम करने से निर्माण की प्रक्रिया पूरी होती है। निर्माण करने वाले श्रमशील होते हैं। निर्माण में श्रम लगता है। हर किसी में श्रम करने की क्षमता नहीं होती है। रैदास को यह विश्वास है कि वही समाज आगे बढ़ता है, जिस समाज ने श्रम को साध लिया है; जैसा कि रैदास ने लिखा है:

रविदास श्रम कर खाहहि,  
जौलौं परा बसाय।  
नेक कमाई जऊ करई,  
कबहुं न निष्फल जाय।।

नेक की कमाई पर रैदास का विश्वास अडिग है। सच्चाई के बिना जीवन अधूरा है। सच सचमुच बड़ा पेचीदा होता है, कभी-कभी जो दिखता है, वह भी सच नहीं लगता है और जो नहीं दिखता है, वह भी सच होता है। सच को परिभाषित करना और सच के अनुसार कदम उठाना चाहे जितना कठिन हो; लेकिन इतना सही है कि नेकी की कमाई में चैन है। यह आत्मविश्वास को पैदा करता है। श्रम करने

वालों में आत्मविश्वास होता है, उनकी एक अद्भुत क्षमता होती है, वह क्षमता यह होती है कि वह समाज के भक्षकों को जल्दी पहचान लेते हैं। समाज की अग्रगति में जो गतिरोध पैदा करते हैं, श्रम करने वाले उन्हें न केवल पहचान लेते हैं, बल्कि उनका सदा के लिए नाश करने का उपाय भी सोच लेते हैं। यह सोच निश्चित रूप से मध्यकालीन सोच नहीं है; लेकिन रैदास ने श्रम की गुणवत्ता पर प्रकाश डालते हुए यह लिख दिया कि श्रम करने वालों का श्रम निष्फल नहीं होता है। इसका अर्थ यही है कि रैदास ने पूरे मध्यकाल का निर्माण की पद्धति से परिचय कराया। इस संदर्भ में यह भी कहना होगा कि जहां मध्यकाल में अधिकतर उपदेश देते थे, ज्ञान की चर्चा करते थे, समाज को फटकार लगाने में अपनी बहादुरी साबित करते थे, वहीं रैदास बड़ी सहजता-बड़ी निश्छलता से समाज को श्रम करने के लिए प्रेरित करते थे। रैदास खुद श्रम कर उदाहरण पेश करते थे तथा श्रम को परम पवित्र कहने का दावा करते थे।

रैदास ने श्रम करने को कर्म से जोड़ने का प्रयास किया है। यह कर्म उनके यहां कर्तव्य के रूप में स्थापित हुआ है। कर्म को कर्तव्य तक पहुँचाने की कला निर्गुण साहित्य में यदि किसी के पास है, तो वह कोई और नहीं रैदास ही हैं। रैदास ने लिखा है:

कर्म बंधन मंह रति रह्यो,  
फल की तज्यो न आस  
करम मनुष्य को धरम है  
सत्त भाषै रैदास  
श्रम को ईसर जानि कै  
जऊ पूजहि दिन रैन  
रैदास तिन्हहि संसार मंह  
मिलहि चुख चैन

इस पद में रैदास ने एक तरह से भारतीय समाज में मजदूर-किसान की महत्ता को स्थापित किया है। मजदूर-किसान ने श्रम के जरिये इस संसार में अपने महत्त्व को स्थापित किया। यदि वर्तमान के संदर्भ में मजदूर-किसानों की स्थितियों पर ध्यान जाता है तो स्पष्ट होता है कि उनकी स्थिति शोचनीय है। उनकी इस स्थिति को बदलने की जरूरत है। उनकी इस स्थिति को कोई दूसरा आकर नहीं बदल सकता है बल्कि सामाजिक चेतना को उन्नत करते हुए अपने अधिकारों को स्थापित करने के लिए अपना फौरी कर्तव्य निभाना पड़ता है। रैदास ने यह भी

कहा कि जन्म लेने के कारण कोई छोटा-बड़ा नहीं होता है। काम करने के चलते कोई छोटा-बड़ा होता है; जैसा कि रैदास ने लिखा है:

रविदास जन्म के कारनै,  
होत न कोउ नीच  
नर कू नीच करि डारि है,  
ओछे करम को नीच  
रविदास सुकरमन कारन  
सौं नीच ऊँच हो जाय  
करइ कुकरम जौ ऊँच भी  
तौ महानीच कहलाय

रैदास के पदों में सामाजिक समस्याओं के उन्मूलन पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। रैदास ने पूरे समाज को इस तरह से शिक्षित करने की कोशिश की है कि जाति-पांत की समस्याएं सामाजिक विकास में सबसे बड़ी बाधक हैं। इस गतिरोध को किस तरह हटाना होगा, इस संदर्भ में रैदास ने गंभीर चिंतन किया है। दरअसल जाति-पांत के चलते समाज में नफरत खड़ी हो जाती है। इस नफरत के चलते विद्वेष भाव सिर चढ़कर बोलने लगता है। नफरत एक तरह की बीमारी है; वह धीरे-धीरे सामाजिक जीवन को कमजोर बनाती है। वह भीतर ही भीतर भय को संचारित करती है। इस भय से निकलने के लिए झूठ का सहारा लेना मजबूरी बन जाती है। इस मजबूरी से विभिन्न तरह की भ्रांतियां उत्पन्न होती हैं। हर चीज में विकृति नजर आने लगती है, हर जगह साजिश दिखने लगती है। भ्रम में जीने के लिए मजबूरी हो जाती है। मध्यकाल में यह एक भयानक रोग बन गया था। पूरे समाज में उस वक्त यह रोग समा गया था। पूरे समाज को उससे बाहर निकालने की जरूरत थी और रैदास ने इस जरूरत को पूरा करने का प्रयास किया। इसलिए उन्होंने इस रोग को पकड़ने के सिलसिले में समाज से जाति-पांत नामक बीमारी को दूर करने के लिए सामाजिक चेतना को प्रसारित करने पर बल दिया। इसे प्रसारित करने से यह जरूर हुआ कि लोगों में यह अलख जगा कि इस जाति-पांत को मिटाना जरूरी है, लेकिन उसकी जड़ें इतनी मजबूत हैं कि उस काल से लेकर इस काल तक सारी कोशिशों के बावजूद इस रोग को पूरी तरह हटाना संभव नहीं हो सका। लेकिन इतना सच है कि रोग चिह्नित हो गया। इस

धरती में जो रोग उत्पन्न होता है, वह मिटता कहां है, कम जरूर हो जाता है। इस दृष्टि से विचार किया जाए, तो पता चलेगा कि रैदास ने भी इस रोग को दूर करने में एक हद तक निश्चित तौर पर सफलताएं अर्जित की हैं। उन्होंने जिस तरह से नफरत की दीवार गिराने की कोशिश की, वैसी कोशिश मध्यकाल में शायद ही मिले; लेकिन यह कहना उचित होगा कि पूरे के पूरे संत-साहित्य ने नफरत को दूर करने का भरसक प्रयास किया। रैदास ने जिस तरह से नफरत दूर करने का काम किया, वह अंदाज भी अलग है। इस अलग अंदाज की जितनी प्रशंसा की जाए, उतना कम है। रैदास ने जाति-पांत पर कुठाराघात करते हुए लिखा है:

जन्म जात मत पूछिये  
का जात अरु पात  
रविदास पूत प्रेम प्रभु के  
कोउ नहीं जात कुजात  
जात पात के फेर महिं  
उरझि रहइ सब लोग  
मानुषता को खात हइ  
रविदास जात को रोग  
जन्म जात कूं छाँड़ी करि  
करनी जात पर धान  
इह्यो वेद को धरम है  
करै रविदास बखान  
रविदास एक ही नूर ते  
जिमि उपज्यो संसार  
रविदास जात मत पूछहूं  
का जात का पात  
बामन खत्री बैस सूद्र  
सभन की एकै जात

एक तरह से रैदास ने वर्ण व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के उद्देश्य से वाणी को स्थापित किया। रैदास की वाणी में वह क्षमता है, जिसके आधार पर मानव समाज इस रोग से लड़ सकता है। संकीर्णता से रैदास की वाणी प्रेरणा देती है। इस प्रेरणा को पूंजी बनाने से इंसान और इंसानियत की रक्षा की जा सकती है। रैदास की वाणी इंसानियत को अधिष्ठान देती है; जो अधिष्ठान अत्यंत मजबूत है। इस अधिष्ठान पर समाज को रहने लायक समाज का रूप दिया जा सकता है। साहित्यकारों का

दायित्व है सामाजिक रोगों को चिह्नित करना तथा उन्हें दूर करने की सारी कोशिशों को समाज के हित में प्रयुक्त करना। जो सृजनशील रचनाकार अपनी रचनात्मक क्षमता से समाज में विश्वसनीयता को स्थापित करते हुए नये-नये बिम्बों की रचना करते हैं, उन सर्जकों से इंसान की दुनिया शिक्षा ग्रहण करती है तथा खुद को बनाने का प्रयास करती है। खुद को बनाना एक तरह से चिंतन की दिशा में वह सीढ़ी है, जिसके जरिये आगे बढ़ने में मदद मिलती है। रैदास की वाणी इस समाज को भीतर ही भीतर न केवल मजबूती प्रदान करती है बल्कि वह वाणी एक आलोक स्तंभ की भूमिका अदा करती है। रैदास ने अपनी वाणी के जरिये न केवल १४वीं-१५वीं सदी के समय को आलोकित किया है बल्कि उनकी वाणी मौजूदा दौर को भी आलोकित करती है। मौजूदा दौर में रैदास की वाणी को इंसानियत के हित में अधिक से अधिक प्रयोग करने की जरूरत है, इसलिए कि समाज में त्राहि-त्राहि बढ़ी है। यह सच है कि इसके लिए जिम्मेदार कुछ मुट्ठीभर लोग हैं, जिनके चलते यह समस्या उत्पन्न हुई है। अब जरूरत है- इसका निदान। जो इसका निदान चाहता है या करता है, वही इस समाज को आगे बढ़ा सकता है और समाज को आगे बढ़ाने की जो पहल होगी, उसी पहल में रैदास की वाणी का फिर से सृजन संभव है; इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि रैदास की वाणी की चर्चा करने से समाज का चक्का पीछे घूमने लगेगा; सच तो यह है कि रैदास की वाणी सामाजिक उन्नति के चक्के को आगे बढ़ाने का हौसला देती है। रैदास की वाणी उत्पीड़ित वंचित-शोषित समाज की हिम्मत है। इस हिम्मत को वर्तमान में नये सिरे से स्थापित करने से यह पता चलता है कि भारत की धरती पर हिन्दू-मुस्लिम की एकता का सवाल सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। रैदास ने इस सवाल को गंभीरता से प्रस्तुत किया है। संत साहित्य ने इस धरती पर सबसे पहले इस सवाल को उपस्थित किया। सभी संतों ने एकमत से हिन्दू-मुस्लिम एकता की अहमियत को जाहिर किया है। रैदास ने इस अहमियत के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है। इस अध्याय की बार-बार व्याख्या की गयी है; जिस व्याख्या से समाज को आगे बढ़ने में सहूलियत मिली है। रैदास की वाणी सही अर्थों में करुण स्थिति को बदलने की वकालत करती है। वह वकालत इंसानियत को नया आयाम देती है। इस आयाम पर जब भी किसी की नजर जायेगी, तब यही

सवाल सामने आता है, जैसा कि रैदास ने कहा है:

मंदिर मसजिद एक है  
इन मंह अंतर नाहि  
रैदास राम अह्यान का  
झगड़ए कोई नाहि

दरअसल उपासना-स्थलों को लेकर विवाद खड़ा करने से कुछ नहीं होता है। उपासना स्थल की बनावट और उसकी बुनावट शक्ति का प्रदर्शन है। जिसके पास जैसी शक्ति है, वह उसका वैसा प्रदर्शन करेगा। यदि किसी के पास शक्ति है, तो उसका क्षरण होना तय है, जिस शक्ति से उपासना-स्थल का निर्माण होता है, उसी शक्ति के क्षरण के बाद वह उपासना-स्थल अवहेलित हो जाता है। इसलिए इस विषय पर विशेष ध्यान देना जरूरी है कि आखिर किसी उपासना स्थल और उपास्य को किस रूप में साहित्य में स्थान दिया जाए। रैदास ने बड़ी बुद्धिमत्ता से अपनी वाणी में उपास्य को स्थान दिया है और उनका उपास्य इंसान और इंसानियत है। मध्यकाल में रैदास एक ऐसे संत हैं, जिन्होंने हर वक्त अच्छे कर्म करने की वकालत की है। रैदास की वाणी है:

राग द्वेष कूं छांडि कर  
निहकरम करहू रे मीत  
सुख दुख सम रहि  
रविदास सदा मन जीत

राग-द्वेष से ऊपर उठकर निष्कर्ष करना सबसे उपयोगी बात है, जिसे आदत में उपस्थित करना अत्यंत जरूरी है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह पता चलता है कि रैदास ने अपनी रचनात्मक ऊर्जा से इस दुनिया में यह स्थापित किया कि सोच-विचार में तब्दीली करने से प्रगति की राह प्रशस्त होती है। रैदास की वाणी जिन्दगी को उन्नत करने के लिए न केवल ऊर्जा प्रदान करती है, बल्कि एक दृष्टि देते हुए यह प्रमाणित करती है कि जिन्हें हाशिये के लोग समझा जाता है, वे सिर्फ हाशिये के लोग नहीं हैं, दरअसल निर्माण के कर्णधार हैं। निर्माण के इन कर्णधारों के लिए राह छोड़ना अत्यंत आवश्यक है। यही कारण है कि रैदास ने जीवन की हर पराधीनता को खत्म करने की बात की है। पराधीनता विभिन्न दुःखों का कारण है। स्वाधीन व्यक्ति ही कुछ कर सकता है। पराधीनता के सम्बन्ध में रैदास की अवधारणा प्रस्तुत है; जैसा कि उन्होंने लिखा है:

पराधीनता पाप है  
जान लेहु रे मीत

रविदास दास पराधीन सों  
कौन करे है प्रीत  
पराधीनता बेदीन  
रविदास दास पराधीन कौ  
सबहि समझे हीन।

रैदास की भाषा सरल है। उनकी भाषा में संस्कृत-फारसी के शब्दों के अतिरिक्त जनपदीय शब्दों का भरमार है। इससे यही प्रतीत होता है कि रैदास इस समाज के प्रति प्रतिबद्ध हैं; उनकी प्रतिबद्धता इसी में है कि समाज की चहुंमुखी उन्नति हो। रैदास की पारदर्शी भावना की पवित्रता युग-युग तक व्याप्त रहेगी; इसलिए कि उस व्याप्ति में अमरता की ध्वनि गूंजती है। रैदास की वाणी के इस गुंजन में मंगल की भावना निहित है। इस भावना को चहुं दिशा में फैलाने की पहल ही रैदास की वाणी को समझने और परखने का सार्थक प्रयास है। रैदास ने जिस तरह से मंगल की भावना प्रकट है, वह अन्यत्र दुर्लभ है, जैसा कि उन्होंने लिखा है:

माधवे। पारस मनि लै जाऊँ  
मोहिं सोने ना नहिं चाऊँ  
जउ मोपै राम दयाला  
दैउ चून लून धीउ दाला  
मैं रूखी सूखी खाऊँ  
औरन की भूख मिटाऊँ  
को पै परै ना दुख की पास  
सब सुखी बसैं रविदासा।



## परिचय

राम आह्लाद चौधरी शिक्षा:एम.ए ,पीएच.डी  
संपर्क : १०५०/२ सर्वे पार्क, एम आई जी, २बी, फ्लैट  
७/२,कोलकाता -७०००७५

संप्रति: प्रोफ़ेसर एवं पूर्व अध्यक्ष,हिंदी विभाग,  
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता- ७०००७३

९४३२०५१५००

ramahlad@gmail.com

पुस्तकें:

- १.विद्यासागर
२. मुक्तिबोध
- ३.हिंदी संवाद
- ४.मीडिया:खबरों की बुनियाद
- ५.मीडिया:सत्ता और संस्कृति
- ६.मीडिया का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य
- ७.काव्य-सृजन के विजय-चिह्न
- ८.भाषा और साहित्य
- ९.कथा मंजरी
- १०.लोकतंत्र मीडिया और हिंदी
- ११.वैचारिक संकट और बुद्धिजीवी-वर्ग
१२. विजय की प्रतीक्षा
- १३.दिन जाए रात जाए
- १४.मार्क्स:संघर्ष ही जिंदगी
- १५.नवम्बर-क्रांति

संपादन:

- १.स्वाधीनता
- २.स्वाधीनता शारदीय विशेषांक  
(विगत दो दशकों से संपादन कार्य जारी )



डॉ श्याम सखा श्याम

## कविता का अराजक काल

### डॉ श्याम सखा श्याम

छंद एक बंधन है और बंधन चाहे रेशम का हो या मूंज की रस्सी का हो बंधन ही होता है। पिंजरा भी बेशक सोने का बना हो पिंजरा ही रहता है और भला ऐसा बंधन किसी को भी कैसे स्वीकारीय हो सकता है। ऐसे ही कुछ जुमले निराला जी के मुक्त छान्दसिक रचना के बाद उस समय के आलोचकों ने उछाले थे। उन्होंने कविता को छंद की कारा से मुक्त होने का उद्घोष भी कुछ कुछ बर्लिन की दीवार टूटने जैसा ही किया था। हालांकि बर्लिन की दीवार कविता के छन्दमुक्त होने के बहुत बाद गिराई गई थी। लेकिन वे भूल गये थे कि मानव कुछ बन्धनों को बड़े उन्मुक्त उल्लसित भाव से स्वीकार करता है। स्नेह के प्यार के दोस्ती के बंधन को और इन बन्धनों के टूटने पर बुरी तरह व्याकुल व्यथित बेचैन होता है मन ही मन टूट जाता है। हाँ कभी-कभी ये बंधन भी दमघोटू बन जाते हैं और तब बंधन के इन सीखकों को तोड़ने का प्रयत्न होता है। जैसे विवाह नामक बंधन के के साथ हाल ही में हो रहा है। विवाह से मुक्त होने में तलाक जैसी जटिल प्रक्रिया से बचने के लिए एक नवीन बंधन का निर्माण हुआ, लिव इन रिलेशन का। जिसमें दो व्यक्ति एक स्नेह बंधन में बंधते तो हैं लेकिन वे अपनी स्पेस अपनी स्वछंदता की लगाम दूसरे को न सौंप कर अपने पास रखते हैं। यानी पिंजरे में रहते हैं मगर पिंजरे का द्वार खुला रखते हैं जब जिसका दिल करे उडारी ले ले। छंद के साथ भी कुछ कुछ ऐसा ही किया था महाप्राण निराला ने। लेकिन छंद, मुक्त छंद से छंद मुक्त तक पहुँचने हेतु हमें हिंदी कविता के संक्षिप्त इतिहास से तो गुजरना ही होगा

यह तो सर्वविदित, सर्वमान्य तथ्य है कि पूरे विश्व में,

हर भूखंड, देश व जाति का इतिहास, संस्कृति, साहित्य व संस्कारों को कविता ने ही सहेज कर रखा है। विश्व की पहली पुस्तक ऋग्वेद भी पद्य में ही लिखी गई। कविता का इतिहास विकसित मानव सभ्यताओं जितना ही पुराना है।

हिन्दी कविता की परम्परा बहुत समृद्ध है।

हिन्दी कविता का इतिहास देखने पर पता लगता है कि विद्वानों ने इसे कई काल खंडों में विभाजित किया है।

वीरगाथा काल (सन् १००० से १२५ तक), भक्तिकाल (सन् १२५ से १६५० तक) के प्रमुख कवि।

रीतिकाल (सन् १६५० से १८५० तक) आधुनिक काल (१८५०-अब तक)के प्रमुख कवि।

वीरगाथा काल (सन् १००० से १२५ तक)- दलपति विजय, चंदबरदाई, नरपति नाल्ह, जगपति, अमीर खुसरो, विद्यापति इस काल के मुख्य कवि रहे हैं।

भक्तिकाल (सन् १२५ से १६५० तक)- तुलसीदास, कबीरदास, सूरदास, रहीम, मीराबाई, बिहारी (साहित्यकार), मलिक मोहम्मद जायसी, इस काल के मुख्य कवि रहे हैं।

रीतिकाल (सन् १६५० से १८५० तक)- बिहारी, केशव, भूषण, पद्माकर, देव, घनानंद, रत्नाकर, आचार्य कृपाराम, रसलीन, ठाकुर, आलम, बोधा।

आधुनिक काल (१८५०-अब तक) आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास।

आधुनिक काल १८५० से इक्कीसवीं शताब्दी-हिंदी साहित्य के इस युग में भारत में राष्ट्रीयता व प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का बीज अंकुरित होने लगा था। यह संग्राम विफल हुआ मगर एक चिंगारी सुलगती रही और इसी चिंगारी के

कारण भारत लगभग एक सदी बाद स्वतंत्र हो पाया। इस काल में और भी परिवर्तन हो रहे थे यथा छापेखाने का आविष्कार हुआ, यातायात में रेलगाड़ी, संचार में समाचार पत्रों तार टेलिफोन की पगडंडी से होता हुआ तकनीकी विकास का पहिया तेजी से आम आदमी के जीवन में जन संचार के विभिन्न साधनों, रेडियो, टी.वी. इन्टरनेट ब्लॉगिंग फ़ेस बुक व सोशल साइट तक आ पहुंचा। साक्षरता के साथ-साथ शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार बना। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ ही था। शुरुआत में ब्रजभाषा का आधिपत्य रहा मगर द्विवेदी युग के आते ही आधुनिक हिंदी खड़ी बोली में कविता ने अल्प समय में उपलब्धि के उंच शिखर प्राप्त किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाट्य आदि क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवन-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

आधुनिक काल की हिंदी कविता पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुज़री?। भारतेंदु युग से आरम्भ होकर महावीर प्रसाद युग से होती हुई कविता में अनेक धाराओं का बहुत तेज़ी से विकास हुआ। छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नयी कविता युग, अकविता और साठोत्तरी कविता इन नामों से जाना गया। साठोत्तरी कविता की बात करने से पहले हमें इन सभी कालों का संक्षिप्त विवेचन कर लेना चाहिये।

१. भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (१८५०-१९००)
२. पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता (१९००-१९२०)
३. छायावादी युग की कविता (१९२०)
४. उत्तर-छायावाद युग-(१९६-१९४)
५. प्रगतिवादी युग की कविता (१९६)
६. प्रयोगवाद-नयी कविता युग की कविता(१९४ - १९६०)

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (सन् १८५०-१९००)  
- सन् १८५० से १९०० तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसीलिये उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का पितामह कहा गया है। जिस तरह संत

तुलसी ने संस्कृत से इतर ब्रज-अवधि भाषा को अपनाया था उसी तरह भारतेंदु जी ने भाषा स्तर पर भक्ति काल और रीति काल की कविता को ब्रज भाषा के आधिपत्य से निकाल कर खड़ी बोली हिन्दी को अपनाया। इस काल के साहित्य में प्राचीन एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। एक ओर जहां भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी इस काल की कविताओं में पाए जाते हैं। भारतेंदु के विपुल साहित्य में भक्ति-प्रधान, शृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-एवम् परतन्त्रता के विरुद्ध रचनायें हुईं। उनके अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी विविध प्रकार से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इस काल के प्रमुख कवि हैं- भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, अंबिका दत्त व्यास।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता (१९००-१९२०) - सन् १९०० के बाद दो दशकों तक काव्य के पुरोधा पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखता है, इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। सरस्वती पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से गायब हो गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। इस युग में आदर्शवाद का बोलबाला था अतः कविता भी इससे अछूती नहीं रही। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम इस काल की कविता के मुख्य विषय रहे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खड़ी और सरल रही। उस समय उर्दू की कोमलता के सामने यह अक्खड़ या खड़ी बोली ही कहलाई इसका एक और कारण खड़ी बोली का उद्भव हरियाणी भाषा का प्रभाव भी रहा है- बहुत लोग इस तथ्य से परहेज कर लेते हैं कि खड़ी बोली की बुनियाद हरियाणवी होना है जो मुस्लिम शासकों के आगमन के समय दिल्ली की मुख्य सम्पर्क भाषा रही है और मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी को दौलताबाद ले जाने पर दिल्ली से प्रवास करने वालों के साथ-साथ दक्षिण गई और आभिजात्य वर्ग तो वापस लौट आया मगर आम मजदूर व छोटे कामगार व छोटे व्यापारी वहीं रह गये, उन्हीं लोगों के भाषाई प्रभाव से दक्खिनी हिन्दी का आविर्भाव हुआ और यह सर्वविदित तथ्य है कि दक्खिनी बोली ही हिन्दी और उर्दू भाषा की बुनियाद



है। इस युग के प्रमुख कवि- अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, जगन्नाथ दास रत्नाकर, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, त्रिलोचन प्रसाद पाण्डेय, सियारामशरण गुप्त।

छायावादी युग की कविता (१९२०)- द्विवेदी जी के बाद १९२० के आसपास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिस्जिम से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद यह कविता अत्यधिक लोकप्रिय हुई। इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

यह काल एक और कारण से विशेष है। इसी काल में कविता छंद के बंधन से मुक्त होने लगी

जैसा हम पहले कह चुके हैं की इसी काल में कविता के बंधन मुक्त होने का नारा लगने लगा ।

लेकिन इस समय के कवि वृन्द व आलोचक मनुष्य की इस फितरत को भूल गए कि मानव कुछ बन्धनों को बड़े उन्मुक्त उल्लसित भाव से स्वीकार करता है । स्नेह के प्यार के दोस्ती के बंधन को और इन बन्धनों के टूटने पर बुरी तरह व्याकुल व्यथित बेचैन होता है मन ही मन टूट जाता है । हाँ कभी -कभी ये बंधन भी दमघोटू बन जाते हैं और तब बंधन के इन सीखचों को तोड़ने का प्रयत्न होता है । जैसे विवाह नामक बंधन के के साथ हाल ही में हो रहा है । विवाह से मुक्त होने में तलाक जैसी जटिल प्रक्रिया से बचने के लिए एक नवीन बंधन का निर्माण हुआ , लिव इन रिलेशन का । जिसमें दो व्यक्ति एक स्नेह बंधन में बंधते तो हैं लेकिन वे अपनी स्पेस अपनी स्वछंदता की लगाम दूसरे को न सौंप कर अपने पास रखते हैं । यानी पिंजरे में रहते हैं मगर पिंजरे का द्वार खुला रखते हैं जब जिसका दिल करे उडारी ले ले । छंद के साथ भी कुछ कुछ ऐसा ही किया था महाप्राण निराला ने

निराला जी ने एक नये छंद का आविष्कार किया- जैसे संगीत क्षेत्र में नये राग रागिनियां बनती रही हैं ठीक उसी तर्ज पर उन्होंने एक नया छंद बनाया इसमें छंद का बंधन उन्मुक्त हुआ। निराला ने छन्द से कविता को मुक्त नहीं किया, वरन् छन्द को अपने भीतर स्वछंद कर दिया और यह

छंद मुक्त छंद कहलाया, इसमें छंद की यति गति व लय तो थी केवल हर पंक्ति में मात्रा क्रम माने अगर बहर कहें तो हर मिसरे में अलग बहर छन्द हो जाती है विजय वन वल्लरी पर सोती बैठी थी/ सस्नेह स्वप्न भंग कोमल अमल/ तन शिथिल/ दृग बंद किये जुही की कली सुहाग भरी/ तरुणी। १

मुक्त छन्द की इस रचना में इसमें छन्द की गति और लय बहुत स्पष्ट है। आप इन पंक्तियों की गति-लय को नजरअन्दाज करके पढ़ ही नहीं सकते। अर्थात् छन्द तो है, पर वह अपनी ही जकड़ से मुक्त हो गया है- ज्यादा सही होगा कि यहाँ छन्द उन्मुक्त कहना शुरू कर दिया जाये, पर उन्होंने पारम्परिक छन्दों का चेहरा ही बदल दिया, जैसे- बाहर मैं कर दिया गया हूँ / भीतर पर भर दिया गया हूँ छन्द की दृष्टि से यह चौपाई है- पर हमारा इस बात की ओर ध्यान नहीं जाता। यानी चौपाई का जो स्वरूप हमारे मन में जड़ हो गया है, उससे निराला ने चौपाई को बाहर निकाला। इसी तरह- बाँधो न नाँव इस ठाँव बंधु / पूछे ना सारा गाँव बंधु। २इसमें भी १६, १६ मात्राओं की दो अर्धालियाँ हैं। अर्थात् चौपाई का निराला ने इस तरह का जो दोहन किया है- वह वे ही कर सकते थे। वरना साधारण कवि तो रामचरितमानस की चौपाइयों के स्वरूप से ही मुक्त नहीं हो पाता। उन्होंने अनेकानेक गीतों में जो छन्दों का प्रयोग किया है, वह अब्दुत इस दृष्टि से है कि उन्होंने मूल छन्दों की गति और लय को पकड़कर नये छन्दों का निर्माण इस तरह किया कि वे कविता के कथ्य, मनोभावों, आशाओं और निहितार्थों पर हावी न हो जाये-वरन् कविता अपने शब्द-अर्थ, भाव-भंगिमा, नाद-अनुनाद, संकेतों, बिम्बों के द्वारा जो स्वरूप रचे वह अपने ही रचे हुए छन्द के द्वारा नयी आभा से चमक उठे। निराला जी ने चौपाई ,कवित, हरिगीतिका आदि अनेक छन्दों को मुक्त छंद में ढाल कर नव छंद निर्मित किये । दिनकर, अज्ञेय , मुक्तिबोध एवं मैथिलिशार्ण गुप्त आदि ने अपनी अनेक रचनाओं में निराला जी द्वारा हरिगीतिका के नव स्वरूप का प्रयोग अपनी अनेक रचनाओं में किया है । गुप्त जी के भारत भारती व जयद्रथ वध नामक खंड काव्य हरिगीतिका के इस नये रूप में रचित काव्य हैं ।

उत्तर-छायावाद युग (१९६-१९४) - यह काल भारतीय राजनीति में भारी उथल-पुथल का काल रहा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, कई विचारधाराओं और आन्दोलनों का प्रभाव इस काल की कविता पर पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणामों के प्रभाव से भी इस काल की कविता बहुत हद तक प्रभावित है। राष्ट्रवादी, गांधीवादी, विप्लववादी, प्रगतिवादी, यथार्थवादी,

हालावादी आदि विविध प्रकार की कवितायें इस काल में लिखी गईं। इस काल के प्रमुख कवि हैं- माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, हरिवंश राय बच्चन, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रांगेय राघव।

प्रगतिवादी युग की कविता (१९०६) - छायावादी कवि केवल बुद्धिजीवियों की पसन्द भर रहे। इस काल के कवि आत्ममुग्धता के शिकार रहे। आमजन इस कविता से अप्रभावित रहा। सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलनों से भी ये कवि अप्रभावित थे। इस समय न केवल रूस और यूरोप मार्क्सवाद से प्रभावित हो रहा था अपितु सारे विश्व में सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसका प्रभाव हिंदी कविता पर भी पड़ा। १९६६ में प्रगतिशील लेखक संघ के गठन के साथ हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरुआत हुई। इसका सबसे अधिक दूरगामी प्रभाव हिन्दी आलोचना पर पड़ा। मार्क्सवादी आलोचकों ने हिन्दी साहित्य के समूचे इतिहास को वर्ग-संघर्ष के दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास आरंभ किया। प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन के साथ नयी कविता के कवि मुक्तिबोध और शमशेर को भी रखा जाता है।

प्रयोगवादी-नयी कविता युग की कविता (१९४०-१९६०) - दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई तो साहित्य इससे अछूता रहता यह कैसे संभव था। हिन्दी साहित्य पर इसका असर अज्ञेय के संपादन में १९४८ में तार सप्तक के प्रकाशन में देखा जा सकता है। तार सप्तक से ही हिंदी कविता में नयी कविता या प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसा माना जाता है। नयी कविता ने कविता के सौन्दर्य को नकार कर खुरदरे, बिम्बों मिथकों के माध्यम से निराशात्मक, कुंठित, वैयक्तिकता, छंदहीनता को अपनाया और शेष सब को बुर्जुआ कहकर नकार दिया। इस आंशु में सबसे पहले आक्रमण छंद पर हुआ। वास्तव में नयी कविता नयी रुचि का प्रतिबिंब कहा जाना लगा और इसे आधुनिकता का प्रमाण भी है। इस धारा के मुख्य कवि हैं- अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, शमसेर बहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, जगदीश गुप्त, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुंवर नारायण, केदार नाथ सिंह।

आप देख रहे हैं कि हर काल में अन्तिम कविगण अपने

से आगे आने वाले समय में पहुंचते रहे हैं। बिहारी भक्ति से प्रारम्भ हो कर रीति काव्य में आये उसी तरह भारतेन्दु जी व उनके समकालीन कवियों ने आरम्भ में शृंगार रस में कवितायें लिखीं फिर आधुनिक काल में पदापर्ण किया है। इसी तरह प्रगतिवाद में मुक्त छंद के पुरोधों ने अपना सृजन छांदसिक कविताओं से आरम्भ किया था चाहे वे त्रिलोचन हो या मुक्तिबोध या अज्ञेय आदि।

इस काल के कवियों ने अनेक सारगर्भित छन्द मुक्त रचनाएं दी हैं-क्योंकि इन्हें छंद का ज्ञान था इसलिए इनकी कविताओं में सधी हुई लय निहित थी। उनकी कविताओं में लय मौजूद है वे भाव पक्ष की सुदृढ़ रचनाएं हैं।

उनकी मुक्त छन्द कविताओं में भी काव्य सौन्दर्य मौजूद है। कारण ये सभी कवि अपने आरम्भिक काल में छान्दसिक कविता रचते रहे हैं। इनमें से किसी ने भी छन्द की महत्ता को कभी नकारा नहीं। यह उनकी कविताओं व वक्तव्यों में भी देखा जा सकता है। मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'अँधेरे के छंद विधान का अवलोकन करें'। वर्तमान समाज चल नहीं सकता /पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता स्वतंत्र्य व्यक्ति वादी/ छल नहीं सकता मुक्ति के मन को /जन को ३ या

फूँक मार एकाएक मशाल बुझा दी / मुझको यूँ अँधेरे में पकड़कर/ मौत की सजा दी ४

क्या इनमें पद्य की लयात्मकता स्पष्ट नहीं दिखती। मुक्त छंद कविता के प्रबल समर्थक श्री अज्ञेय को कहना पड़ा-

(बरगीनगर के लेखक शिविर में दिया गये व्यक्तव से उद्धृत)

'लेखकों की गोष्ठियों और लेखक शिविरों में जब समकालीन कविता की चर्चा होती है तो आरंभ में ही यह स्वीकार कर लिया जाता है कि छंद दूसरी चीज है और लय दूसरी; यहाँ से आरंभ करके ही यह कहा जाता है कि आधुनिक कविता ने छंद छोड़ दिया अथवा छंद के बंधन तोड़ दिए लेकिन लय नहीं छोड़ी। बात निश्चय ही सत्य है; इसे स्वीकार करके चलना सर्वथा उचित है। लेकिन इससे स्वीकार करने के बाद भी बात जब आगे बढ़ती है तो प्रायः दोनों को पर्यायवाची मान लिया जाता है। हमारे दो शिविरों में भी ऐसा ही हुआ है और इस भूल का संशोधन अभी तक नहीं हुआ। विद्वज्जन यह भी कह गए कि चाय का भी एक छंद होता है। मेरी समझ में यह बात या तो कहनी नहीं चाहिए या जिस विशेष अर्थ में कही जा सकती है उसे स्पष्ट

करके कहनी चाहिए। गद्य की एक लय होती है यह मान लेने में तो मुझे कठिनाई नहीं है, लेकिन गद्य का एक छंद होता है यह मैं बिना पारिभाषित व्याख्यया के स्वीकार नहीं करूँगा।

यहाँ इस आपत्ति से यह तो स्पष्ट ही है कि मैं छंद और लय को अलग कर रहा हूँ। लेकिन कहाँ अथवा कैसे उन्हें अलग कर रहा हूँ, इसको फिर से स्पष्ट करना उपयोगी होगा- बल्कि शायद आवश्यक भी है।

छंद की चर्चा में प्रायः उन चीजों का उल्लेख होता है जिन्हें हमने अर्थात् समकालीन कवियों ने छोड़ दिया। ये चीजें पहले छंद का अंग मानी जाती थीं; एक-एक करके हम पहचानते गए कि इनके बिना भी हमारा काम चलता है। लेकिन लय पर आकर हम लोग लटक गए- हमने माना कि इसके बिना काम नहीं चलता- अर्थात् अगर कविता है तो लय है; अगर लय नहीं है तो काव्य और गद्य में भेद का आधार नहीं रहता। मैंने कहा कि हम लय पर आकर अटक गए, लेकिन आज शायद ऐसे कवि अनेक होंगे जो लय को भी उतना ही फालतू अथवा डिसपेंसेबल मानते हैं जितना और सब चीजों को। पता नहीं वे उचित को भी क्यों डिसपेंसेबल नहीं मान लेते हैं! या कम-से-कम यह क्यों नहीं पूछते कविता लिखना ही क्यों आवश्यक है?.....

मैंने कई कवियों को जो गीत भी लिखते हैं और नए ढंग का मुक्त छंद या कि छंद-मुक्त कविता भी लिखते हैं, यह कहते हुए सुना है कि जब वे गीत लिखते हैं तब तो छंद उन्हें आवश्यक जान पड़ता है, लेकिन उसके बाहर कविता में छंद की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती, न ही लय का विचार वे करते हैं। जैसा हो कैसे सकता है, मेरी समझ में नहीं आता। जो कुछ मैंने कहा है उसमें कुछ भी सार है तो यह बात स्पष्ट भी हो जानी चाहिए कि ऐसा हो ही नहीं सकता। अगर आप किसी एक समग्र रूपाकार तक पहुँचना चाहते हैं तो छंद की आवश्यकता होगी ही होगी। यह जरूर है कि छंद की परिभाषा में कुछ संशोधन होगा, छंद का विचार दूसरे ढंग से होगा। लेकिन कवि अगर किसी समग्र आकार तक पहुँचता है, कोई ऐसी चीज पाता है जिसके आधार पर यह बोध हो कि च्यहाँ रचना पूरी हो गई, और ऐसी पहचान स्वयं ही नहीं करता बल्कि दूसरे तक संप्रेष्य भी बनाता है, तो मानना होगा कि उस रचना में छंद है और वह छंद इष्ट था। और यदि वह नहीं है, एक पूरे रूपाकार की संप्रेष्य पहचान नहीं बनी, तो वहाँ कविता भी नहीं हुई, भले ही कितनी भी सच्ची या चमत्कारी बात कही गई हो।

(बरगीनगर के लेखक शिविर में दिया गये व्यक्तव से उद्धृत)

सच कहें तो छंद मुक्ति से कविता को फायदा कम घाटा ज्यादा हुआ। कविता न केवल छंद विहीन अपितु लय विहीन भी हो गई। और लय विहीन सपाट शब्दावली किस मायने में कविता कहा जाए यह वाजिब सवाल आलोचक की निरंकुशता के नीचे दब गया। छान्दसिक कवियों को कविता के जलाशय में उतरने से पहले छंद शास्त्र अलंकार शास्त्र रूपक मिथक का ज्ञान अनिवार्य था, ठीक वैसे ही जैसे नदी में उतरने से पहले तैरना सीखना। छंद सीखते सीखते वे अपनी भाषा, अपने समाज व अपने देश की परम्पराएँ भी सीख जाते थे मगर छंद मुक्ति से तो वे बेलगाम जंगली घोड़ी से उश्रन्खल हो कूदने फांदने लगे। इससे कविता चोटिल, लहू-लोहान होने लगी। कविता की सांस टूटने लगी। आलोचकों ने फतवे दे दे कर इन्हें महाकवि तो ठहरा दिया, इन्हें मोटे मोटे ईनाम मान सम्मान भी दिलवा दिए। मगर ये ईनाम मान सम्मान आदि महज वेंटिलेटर साबित हुए और कविता को जीवन दान देने में असफल हो गये। और नामवर जैसे आलोचक को जिसने कभी कविता के नये प्रतिमानों का उद्घोष किया था लिरिक की वापसी की दुहाई देनी पड़ी ठीक वैसे ही जैसे आधुनिक चिकित्सक सब प्रयास फेल होने पर कहता है कि अब मरीज को केवल दुआ ही बचा सकती है। एक और अजीबो गरीब तथ्य यहाँ उजागर करना जरूरी हो जाता है कि चाहे नामवर हो या अशोक वाजपेयी छंद मुक्त कविता की पैरवी करते हुए अपने भाषणों में सदैव रामचरित मानस की चौपाइयों या उर्दू शेर ही दिखाने पाए जाते हैं। मुक्त छंद कवितांश कभी कभार ही उद्धरित करते हैं। यहाँ एक और बात कहाँ आवश्यक है कहा जाता है कि छंद विधान अनेक बार हमारी अनुभूतियों को प्रगट करने में बाधा प्रस्तुत करता है लेकिन यह केवल उन लोगों की बात है, जिनको अपनी परम्परा का ज्ञान नहीं है, जिनके पास शब्द सम्पदा नहीं है जिनके पास शब्दों से खेलने का हुनर नहीं है। बलबीर सिंह रंग, गोपाल सिंह गोपाली या दुष्यंत को छंद कभी आड़े नहीं आये।

कविता का अराजक काल

१९६० के बाद के काव्य क्षेत्र को बड़ी सहजता से कविता का अराजक काल कहा जा सकता है। क्योंकि इस काल में कहने को जनवादी साहित्य लिखा जा रहा था मगर न इसके कवियों को जन से सरोकार था न ही आमजन के सरोकारों से मतलब। वे छद्म छायावादी कवि थे- उन्हीं की

तरह आत्म मुग्ध। वे, सरकारी पदों विश्वविद्यालयों, अकादमियों पर कब्जा किये वातानुकूलित ऑफिसों में बैठे कहने भर को अपनी कविताओं में किसान मजदूर दलितों शोषितों की बात कर रहे थे। वे इतने आत्मतल्लीन व स्व'छंद थे कि छंद का बंधन यहां तक कि निराला द्वारा रचित निर्मित मुक्तछंद को भी नकार दिया।

इन लोगों ने अपनी अकर्मण्यता, अपनी नाकामी छुपाने के लिये मुक्त छंद का सहारा लेकर, न केवल छंद- को कविता से बाहर कर दिया। कविता जो शब्दों और भावों की कलात्मक बुनकरी कहलाती आ रही थी उसे निर्वस्त्र कर दिया। कविता की ही नहीं साहित्य की सभी मर्यादाओं को तिलांजलि दे डाली। इन्हीं दिनों अकविता नाम से भी एक वाद, अकविता पत्रिका माध्यम से खड़ा करने की नाकाम कोशिश हुई मगर उसका हश्र भी अकहानी आन्दोलन सरीखा हुआ। मगर इन तथाकथित आन्दोलनों से कविता को काफ़ी नुकसान हुआ, इस अराजक काल में कवि ही नहीं कवयित्रियां भी कविता के साथ भयावह खिलवाड़ कर रही हैं। शब्दों भावों की भयावह संरचना व भौंडे बिम्बों मिथकों द्वारा। 'बनाना स्लग' नामक एक उभयलिंगी कीट की तरह ये लोग आत्मरति में आनन्द मग्न दिख रहे हैं। इस काल में स्वनामधन्य कवि रहे सर्वश्री- जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन आदि- इन तथाकथित कवियों ने कविता-साहित्य की सभी मर्यादाओं को ताक पर रख दिया। शायद ये बदनाम हुए तो क्या हुए नाम तो हुआ कि हवा पर सवार हैं आज भी कुछ लोग इस राह पर चल रहे हैं। इसकाल के कुछ नमूने देखें-

१. प्रतिज्ञा की अन्तिम कड़ी में /उसकी गुप्त योनि मेरे सन्निकट निर्वसन पड़ी है/और मैं कराह रहा हूँ।

२. रोते हुए कुत्ते खंडित दीवारों के पास/निद्रा में चौंक जाती है बेखौफ लड़कियाँ/घायल गौरैय्यों सी फडफड़ाती है उनकी देह/

और बिस्तर में रेंगते हैं, गिल बिले सर्पों के/मानव लिंगीय आकार। (जगदीश चतुर्वेदी की कलम से)

३. बिना किसी विशेषण के/उसकी पिंडलियों में गुदगुदी करते/हुए मैंने उस औरत को रात के अंधेरे में पहचाना

मैल और रज में सने उसके अग्रभाग को सूँघकर/ कुत्ते की तरह हवा में ठहरे रहा। (सौमित्र मोहन)

४. सुबह होने से लेकर दिन डूबने तक/मैं इंतजार करती हूँ रात का/जब हम दोनों एक दूसरे को चाटेंगे।

विवाह के बाद जिंदा रहने के लिये/जानवर बनना

बहुत जरूरी है।

५. क्या ऐसा संभव नहीं/कि मैं इतनी

हृदयहीन हो जाऊँ कि एक साथ/बहुत से लडकों से प्यार कर सकूँ। (मोना गुलाटी)

६. एक गुफा है/मेरी नाभि के नीचे!/अपनी ही खूँखारिता से थके

शेर-चीते-अजगर/आते हैं कुछ देर सोने

यहाँ पर!

एक नये आखेट की खातिर/जाते हैं जब अगले दिन बाहर,

उनके वे टूटे नाखून/राल, केंचुल

एक अजब बहनापे से देखते हैं मुझे! (अनामिका)

इसी काल तक आते -आते अधिकाँश हिंदी कविता लयात्मकता के अभाव में अपठनीय, उबाऊ ही नहीं अपने भौंडे प्रतिमानों के कारण अश्लीलता की जद में आ चुकी थी । निरंकुश आलोचक

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि कविता में छंद के बंधन को तोड़ने का नारा लगाने वाले अतिउत्साही लोग एक तथ्य को अनदेखा कर बैठे की प्रकृति मूलतः लयधर्मी है। ऋतुओं की लय हो या समय समय पर फूल खलने की लय हो । और मनुष्य इसी प्रकृति का एक विशेष अंग है । उसका जीवन भी लयात्मक है जन्म जवानी बुढ़ापा मृत्यु में क्या एक लय समाहित नहीं है । यही नहीं लोक से जुड़ा मानव चाहे वह किसान हो या मजदूर इसी लयात्मक जीवन को जीता है । किसान की कुदाल या लोहार के हथोड़े की ले जिसने सुनी हो वह भला जीवन की लय को कैसे भूल सकता है । यही लय दुनियाभर के मेहनतकशों के जीवन का मर्म धर्म भी है । कल क्रान्ति ड मशीन युग भी इस को नहीं बिगाड़ पाती । इसे बिगाड़ता है लय से दूर बैठा पूंजीपति या उसका दलाल जो बाजार की ताकत के माध्यम से उपभोक्ता वाद के हथियार से आम व्यक्ति के जीवन की लय ड मानव मूल्यों बिगाड़ देता है और एक दमघोंटू वातावरण उत्पन्न करता है । इस पूंजीपति वर्ग के लिए धन पूँजी ही त्वमेव माता च पिता है ।

इस काल में एक ओर खास बात यह हुई- आलोचक स्वयंभू बन बैठे और इन स्वयंभू आलोचकों ने कविता में यति गति लय या तुकान्त पाये जाने पर उसे कविता न होने या रूढ़ी वादी होने का ऋतवा देना शुरू कर दिया। ये आलोचक अत्यन्त शक्तिशाली व निरंकुश हो गये थे आज भी हैं गो कि चमक फीकी पड़ती जा रही है। क्योंकि ये विश्वविद्यालयों की

चयन समितियों पर काबिज थे, अकादमियों के सर्वसर्वा थे, देश भर की सरकारी पुस्तक खरीदने वाली समितियों पर इनका कब्जा था। इनकी अनुकम्पा के बिना विश्वविद्यालयों या कॉलेजों में नौकरी पा जाना ही असम्भव न था अपितु साहित्य क्षेत्र के सभी मान सम्मान पुरस्कार इनकी भृकुटि के इशारे पर ही मिलते आ रहे हैं। यही नहीं सरकारी पुस्तक खरीद के एकछत्र स्वामित्व ने इन्हें प्रकाशकों का भाग्य विधाता बना दिया था। प्रकाशक इनकी भेजी गई घटिया से घटिया पांडुलिपी को इस तरह लपकते थे जैसे कोई भूखा रोटी या कंजूस दमड़ी को। बड़ी पत्रिकाओं के सम्पादक भी या तो इनके गुट के लोग बनते रहे हैं या वे सम्पादक भी भयभीत होकर अस्ल कविता से-छंद या मुक्त छंद में होने पर नकारने हेतु बेबस हो गये

पहले कवि स्वान्तः सुखाय या सामाजिक सरोकारों से प्रभावित होकर कविता लिखता था। मगर कविता के इस अराजक काल में कविता साहित्य न रह कर कवि कर्म बन गई। जिस तरह दर्जी ग्राहक के आदेशानुसार उसकी पसन्द के डिजाइन की पोशाक सिलता है। आधुनिक कवि भी भयभीत हुआ निरंकुश आलोचक के आदेशानुसार कविता नहीं माल सफ़ाई करने लगा और आलोचक एक निरंकुश शासक की तरह कौन सी रचना कविता है कौन सी कूड़ा है यह छंटने बताने लगा, कविता पर फतवे देने लगा। यह सब कुछ इतने व्यवस्थित ढंग से हुआ कि कविता की मौत हो गई- अब कविता का मानक 'कविता वही जो पाठक/श्रोता मन भाये' न रह कर 'कविता वही जो आलोचक मन भाये' हो गया। इसी कारण से कविता पाठक और श्रोता को विमुख हो जाने का। अपने एक साक्षात्कार में प्रसिद्ध जनवादी छंद मुक्त ढकविता के सशक्त पैरोकार कवि विजेंद्र को कहाँ पड़ा की ' हिंदी आलोचना का गिरता स्तर वाकई शोचनीय है। आलोचक को कविता में यथार्थ की छाया प्रतीति को भेदकर उसके सार तत्व तक जाना जरूरी है। अधिसंख्य समीक्षक अपनी सुविधा के लिए कुछ ऐसी पंक्तिया चुन लेते हैं जिनसे वे अपनी बात प्रमाणित कर सकें। कविता के सार तक पहुँचने के लिए आलोचक को बड़ा श्रम करना पड़ता है। वैसा धैर्य, वैसी साधना आज के हिंदी समीक्षकों में वायरल है हमारे यहाँ आलोचक को कवि का मित्र, स्वामी, मंत्री, शिष्य और गुरु तक कहा गया है - यानी उसके और कवि के रिश्ते बड़े व्यापक होते हैं। 'ल इसाहित्य शिवेतर क्षतये' अलाव अंक ३५.]

तो क्या यह कहना अनुचित होगा कि कविता के इन

स्वयम्भू आलोचकों मठाधीशों ने पूंजीपतियों की भूमिका निभाकर कविता कामनी का चीर हरण किया है। लय विहीन कविता को बाबा तुलसी के शब्दों से कहूँ तो

अब आप जानते हैं कि आमजन अधिक दिनों तक तानाशाही को सहन नहीं कर सकता। रूस जैसी तानाशाही ही नहीं मध्य एशिया, पाकिस्तान आदि देशों के शासकों को जाना पड़ा। बर्लिन की दीवार को बमों से नहीं हथोड़ों से तोड़ा गया था।

इसी तरह कवि मन रखने वाले लोगों ने हथियार उठा लिये हैं- हथोड़ों की तरह ये हथियार भी छोटे पर कारगर सिद्ध हो रहे हैं। ये हैं दोहा और शेर डगज़ल और हाशिये पर आया गीत भी कमर कस कर तैयार हो गया है और कविता लौट रही है छंद लौट रहा है चाहे वह मुक्त छंद ही क्यों न हो। अब तक पाठक कविता पुस्तक नहीं खरीद रहा था मगर गत दो पुस्तक मेलों में गज़ल पुस्तकों की की गई पाठकीय खरीद इसका प्रमाण है कि पाठक कविता की तरफ लौट रहा है। बड़े बड़े प्रकाशक गज़ल पुस्तकों को प्रकाशित कर रहे हैं जो पत्रिकायें छंद के नाम से नाक भौं सिकोड़ती थीं वे दोहे गज़ल विशेषांक छापने को मजबूर हो गई हैं। कि कविता का अराजक काल समाप्त हो रहा है। यह साहित्य के लिये कविता के लिये छंद के लिये शुभ लक्षण है। हम कह सकते हैं कि कविता लौट रही है।

जब मनुष्य की आत्मा का नाद लय ताल युक्त होकर प्रस्फुटित होता है उस दिव्यपल में साधारण मनुष्य कवि हो जाता है और उसकी यह लय ताल युक्त अभिव्यक्ति कविता कहलाती है।

कविता मुख्य अंग मन को आन्दोलित करना है हृदय को मन उद्वेलित करने वाले माणिक भावों का संचारी भाव की संज्ञा दी जाती है जिनकी संख्या संस्कृत विद्वान ३३ बतलाते हैं। परन्तु मुख्य भाव या रस नौ ही है। शृंगार, वीर, हास्य, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अब्दुत एवं शान्त।

कविता शब्द व भावों की वह अब्दुत बुनकरी है जो हमारी अनुभूतियों को उद्वेलित कर लय ताल व राग से जोड़ती है। किसी बात को विशेष प्रभावी व मोहक ढंग से कहना ही तो है कविता।

कविता किसी भी प्रारूप में तभी सार्थक है जब वह श्रोता या पाठक को उसकी वर्तमान भाव स्थिति से ऊपर (उर्ध्वगामी) ले जाने में सहायक हो।

भाव को कविता की आत्मा कहा जाता है और ठीक ही कहा जाता है जब कि छन्द अनुष्टुप छन्द से लेकर मुक्त

छन्द तक कविता के स्थूल शरीर भर कहलाने के हकदार हो सकते हैं। जैसे आत्मा के बिना शरीर निर्जीव या शव, कहलाता है और प्रियजन, परिजन भी तुरन्त इसे दूर फेंकना जलाना या दफन करना चाहते हैं इसी तरह भाव विहीन छन्द को भी विद्वान शवनुमा ही मानते हैं कुछ ऐसा ही कथन अंग्रेजी के प्रसिद्ध छन्द कार एडमन्ड स्पेनसर के बारे में प्रसिद्ध है। मैं स्पेनसर के बारे में कुछ उद्धरण उद्धृत करता हूँ। उन्हें प्रमुख शिल्पकारोंड क्राफ्ट्स में के रूप में मान्यता प्राप्त न कि कवि के रूप है

स्पेनसर ने अंग्रेजी काव्य को एक नया छन्द दिया जिसे स्पेंसेरियन स्टेंज़ा छंद 'फेयरी क्वीनज़' जो स्पेनसर की सबसे प्रसिद्ध कृति है के बारे में कहा जाता है किस्पेनसरचौसर की पुरातन भाषा का उपयोग करता है ।

उस समय के आलोचक स्पेनसर की छन्द प्रतिभा एवं माने वह पुरातन भाषा या वे शब्द जो अब प्रचलन में नहीं है के प्रयोग से ज्यादा प्रभावित थे न कि भाव अभिव्यक्ति से ।

हमने यहाँ स्पेनसर का उदाहरण क्यों दिया क्योंकि हिन्दी आलोचना ने अंग्रेजी की फ्री वर्सज् से प्रभावित होकर पूरी छन्द कविता को ही कविता मानने से इन्कार कर दिया तथा केवल उस शब्द समूह या भावभिव्यक्ति को ही कविता माना जिससे छन्द तो क्या लय ताल भी नदारद थी और इस तरह के सपाट बयानी (कविता) से दुखी होकर ।



### परिचय

: २८ अगस्त १९४८, रोहतक, M.B;B.S., FCGP  
कृतियां : अंग्रेजी, हिन्दी, पंजाबी व हरियाणवी में कुल प्रकाशित ३२ , ६ उपन्यास, ६ कहानी संग्रह, पाँच कविता, एक दोहा सतसई, दो गज़ल संग्रह आदि

सम्मान

लोक साहित्य व लोक कला का सर्वोच्च सम्मान पं० लखमीचन्द्र सम्मान (हरियाणा साहित्य अकादमी)।

सम्पर्क 703 GHS 88 sect. 20, पंचकूला-१३४१११३ (हरियाणा),

घुमन्तू भाष -९४१६३५९०१९ , ८३६०२९९१३६  
shyamskha1973@gmail.com

## गज़ल

### डॉ श्याम सखा श्याम

काँच का बस एक घर है लड़कियों की जिंदगी  
और काँटों की डगर है लड़कियों की जिंदगी

इस नई तकनीक ने तो है बना दी कोख भी  
आह कब्रिस्तान भर है लड़कियों की जिंदगी

हो अहल्या या हो मीरा या हो बेशक जानकी  
मात्र चलना आग पर है लड़कियों की जिंदगी

द्रोपदी हो, पद्मिनी हो, हो भले ही डायना  
रोज लगती दाँव पर है लड़कियों की जिंदगी

प्यार करने की खता कर लें कहीं जो ये कभी  
तब लटकती डाल पर है लड़कियों की जिंदगी

ठीक है आजाद होना, हो मगर उद्वण्ड तो  
कब भला पायी सँवर है लड़कियों की जिंदगी

ठान लें जो कर गुजरने की कहीं ये आज भी  
फिर तो मेधा पाटकर है लड़कियों की जिंदगी

क्यों नहीं तैतीसवाँ हिस्सा भी इसको दे रहे  
आधे की हकदार गर है लड़कियों की जिंदगी

देवता बसते वहाँ है पूजते नारी जहाँ  
क्यों धरा पर भार भर है लड़कियों की जिंदगी

हाँ, कहीं इनको मिले गर प्यार थोड़ा दोस्तो  
तब सुधा की इक लहर है लड़कियों की जिंदगी

'कल्पना' को 'श्याम' जब अवसर दिया इतिहास ने  
उड़ चली आकाश पर है लड़कियों की जिंदगी



डॉ नीरज कृष्ण

## हिन्दी के 'मुंशी'

### डॉ नीरज कृष्ण

बनारस के मणिकर्णिका घाट पर प्रेमचंद की चिता सज चुकी थी और आग देने के समय रस्म के अनुसार डोमराज ने नेग लेने के लिए हुज्जत शुरू की तब वहाँ उपस्थित जयशंकर प्रसाद ने हंस कर कहा, 'आपको नेग दिए बगैर हम आग लेंगे ही नहीं, किंतु एक बात ठीक से समझ लीजिए कि यह उस शख्स की चिता है जिसकी अपनी आग आपकी इस क्षणभंगुर आग से सर्वथा उलट, अनंत है, जिसकी कलम ने समाज में लगातार अब तक प्राणवंत अग्नि का संचार ही जारी रखा और अब आगे भी उसके लिखे शब्द युगों-युगों तक यही कार्य करते रहेंगे।

हिंदी भाषी समाज में कबीर और तुलसी के बाद सबसे अधिक लोक स्वीकृति प्रेमचंद को ही प्राप्त है। वे सच्चे अर्थों में 'लोकवादी' रचनाकार हैं। लोकवादिता उनकी रचनाओं का अभिन्न अंग है। अपने कथा साहित्य में प्रेमचंद ने भारतीय समाज के यथार्थवादी चित्रण के लिए जिस कला को विकसित किया वह लोक जीवन के प्रति सूक्ष्म और व्यापक अनुभूति का परिणाम है। भारतीय जन जीवन के जितने रूपों, वर्गों और मनुष्य के जितने पक्षों का उन्होंने वस्तुपरक चित्रण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेमचंद के कथा साहित्य का ऐतिहासिक संदर्भ है। इसलिए उनकी रचनाओं में जो लोक जीवन या मनुष्य विद्यमान है वह अपनी पूरी ऐतिहासिकता के साथ मौजूद है।

प्रेमचंद एक लेखक के रूप में जिस समय आये, उस समय हिंदी में बाबू देवकीनंदन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों की धूम मची हुई थी। सांस्कृतिक उहापोह की स्थिति थी, भारतीय जनता परम्पराओं के नाम पर रुढ़ियों, अन्धविश्वासों

और बाह्य आडम्बरों का पालन कर रही थी जिनसे विमुख होकर शिक्षित-वर्ग पश्चिमी संस्कृति की ओर प्रवृत्त हो रहा था। प्रेमचंद ने उपन्यास को संकीर्ण विचार-वीथियों से निकालकर जीवन और जगत के बहुरंगी व्यापक पाठ पर खड़ा कर दिया। उनके कथानक ग्राम्य जीवन के सवाक चित्रपट खींचने में अत्यंत सफल हुए हैं। ग्राम्य जीवन की समस्याओं के, ग्राम्य जीवन के वे एक अनुभवी, सहृदय विवेचक थे। गाँव का लेखक गाँव की भाषा में तो जीता ही है, रचना में भी उतरता है, आवश्यकता पड़ने पर वह दर्शन की गुत्थियाँ भी सुलझाने लगता है, काल चिंतन करता है। ग्राम्य जीवन से उन्हें सच्चा प्रेम था। उसकी प्रत्येक रेखा व रंग से वे परिचित थे।

'साहित्य केवल विलासिता की वस्तु नहीं है। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है' (साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचंद)। यह उदघोषणा उनके सामाजिक दृष्टि बोध और आधुनिक भाव बोध का प्रमाण है। उनके उपन्यासों- प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, निर्मला, गोदान आदि और कहानियों में तत्कालीन यथार्थ बोध-वर्ग वैषम्य, किसानों और मजदूरों का शोषण, सामाजिक असमानता, वेश्या जीवन, अनमेल विवाह, पूंजीवादी संस्कृति की अभिव्यक्ति ही नहीं हुई बल्कि जनता की साम्राज्य विरोधी भावना भी अभिव्यक्त हुई। इसलिए प्रेमचंद के कथा साहित्य का मूल स्वर सामंतवाद विरोधी, पूंजीवाद विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी है। यह कथन अक्षरशः सत्य है कि 'साहित्यिक क्षेत्र में प्रेमचंद ने वही काम किया जो राजनीतिक

क्षेत्र में गाँधी ने किया।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास- राम स्वरूप चतुर्वेदी,)

प्रेमचंद को किसानों से गहरा लगाव था। उन्हें यह एहसास था कि इस देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है और किसान ही इसे मजबूती प्रदान कर सकते हैं जबकि किसानों की हालत अत्यंत दयनीय है। वे महाजनों, सूदखोरों, सामंतों और पंडे-पुरोहितों के चौतरफा शोषण के शिकार हैं। वे किसानों की त्रासद समस्याओं और शोषण की अनंत श्रृंखला की वास्तविकता की पहचान करते हैं और सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और नैतिक पाखंडों का पर्दाफाश करते हैं। किसानों और मजदूरों के प्रति इस अनन्य लगाव को देखकर ही राम विलास शर्मा लिखते हैं कि 'प्रेमचंद की कला इस बात में है कि वे हिंदुस्तान के बदले हुए किसान का चित्र खींच सके हैं।'

प्रेमचंद ने किसानों, दलितों, स्त्रियों, मजदूरों और दूसरे शोषित जन समुदायों के जीवन संघर्षों का समग्रता से चित्रण कर उपन्यास के स्वरूप को ही बदल दिया। यूरोपीय देशों की तुलना में भारत में उपन्यास मध्य वर्ग के जीवनानुभवों का महाकाव्य नहीं रहा, बल्कि भारतीय समाज की संरचनाओं, संस्थाओं और जीवन मूल्यों के संदर्भ में भारतीय मनुष्य के अपराजेय जीवन संघर्ष को देखा जाने लगा। वे उपन्यास को 'मानव चरित्र के अध्ययन' से जोड़ने के लक्ष्य के प्रति हमेशा सजग रहे। इसीलिए उनके पात्र मानसिक तनावों और अंतर्द्वंद के बावजूद सहज और स्वाभाविक ही लगते बल्कि हमारे बहुत ही निकट लगते हैं।

प्रेमचंद का जीवन और साहित्य इस बात का प्रमाण है कि लोकजीवन में रचने-बसने वाले और इस देश की मिट्टी की सुगंध की पहचान करने वाले महान रचनाकार थे। इसके अतिरिक्त उनकी कोई विशिष्टता नहीं थी। वे आम जनों की तरह ही थे, पूरी तरह से सहज, जीवन संघर्षों से जूझते हुए। उनमें गहरी जीवन दृष्टि थी। इसलिए समाज और राजनीति की उन्हें गहरी समझ थी। लोक जीवन के प्रति गहरी संवेदना के कारण ही वे सूदखोरों, महाजनों, जमींदारों और पंडे पुरोहितों से सीधी टक्कर लेते हैं। प्रेमचंद के कथा साहित्य में 'किसानों का जीवन संघर्ष ही केंद्रीय विषय है। जीवन में किसान जिस शोषण के शिकार थे, उस शोषणके पेचीदे तंत्र, उसकी जटिल प्रक्रिया और उसकी भयानक परिणति का चित्रण प्रेमचंद ने किया है।' इसका अर्थ यह नहीं है कि उनके कथा साहित्य में मध्य वर्ग हाशिए पर है। समाज का प्रत्येक वर्ग या समुदाय अपनी पूरी वास्तविकता के साथ

विद्यमान है।

'सेवासदन' में प्रेमचंद वेश्यावृत्ति की सामाजिक समस्या को अशिक्षा, दहेज और स्त्री की व्यापक पराधीनता जैसी समस्याओं से जोड़कर देखते हैं वहाँ वे 'पराधीन सपनेहू सुख नहीं' कहने वाले महाकवि तुलसीदास के साथ खड़े होकर इस मानवता विरोधी प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार करते हैं। इसके साथ ही स्त्री की शिक्षा, बाल विवाह का विरोध और विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या उनके मुख्य एजेंडे पर थे। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद औपनिवेशिक और सामंती व्यवस्था के अंतर्गत ग्रामीण जीवन की त्रासदी का अंकन के साथ ही किसानों के जीवन में आती हुई संघर्ष चेतना का यथार्थवादी चित्रण करते हैं। सरकारी दमन और क्रूरता के बावजूद गांधीजी का 'चम्पारण' और 'खेडा' सत्याग्रह जिस तरह से सफल होता है, उसी प्रकार 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर के नेतृत्व में चलने वाला लखनपुर गांव का किसान सत्याग्रह भी सफल होता है। 'रंगभूमि' में नवविकसित पूंजीवाद और भारतीय परंपरा के द्वन्द के संदर्भ में अंग्रेज रेजिडेंट के माध्यम से देसी रियासतों में प्रजा पर किए जाने वाले अत्याचारों का मार्मिक अंकन किया है। 'कर्मभूमि' अछूतों के प्रति अत्याचार और शोषण का चित्र है। 'निर्मला' अनमेल विवाह से उपजी समस्याओं के बीच घुटते और परिवार की त्रासदी है। 'कायाकल्प' में जागीरदारों के वैभव विलास और इसके लिए किसानों के शोषण का चित्रण है। अंत में 'गोदान' शोषण के दुष्क्रम के बीच किसान के मजदूर होते जाने की दारुण दशा की महागाथा है। वे 'ईदगाह' के हामिद की संवेदना, प्रेमाश्रम के कादिर मियां की मानवीय छवि और पंच-परमेश्वर के जुम्नन शेख की न्याय दृष्टि को जिस तरह से उभारते हैं उसका आधार केवल मानवता के प्रति आदमी विश्वास है। लोक जीवन के इतने विविध स्तरों की चिंता और उनका व्यापक ज्ञान संसार उनकी प्रखर सामाजिक चेतना का ही परिणाम है। वे लोक जीवन में व्याप्त धार्मिक पाखंडों, नारी-जाति की सामाजिक-आर्थिक पराधीनता, सड़ी-गली पारंपरिक मान्यताओं, रीतिरिवाजों, अंधविश्वासों और दलितों के सामाजिक-आर्थिक शोषण को बिना किसी लागलपेट के निर्मम तरीके से उभारते हैं। उनके विचारों या मान्यताओं से हम मतभेद रख सकते हैं, उनमें अंतर्विरोध हो सकता है परन्तु लोक जीवन की अनुभूति के प्रति ईमानदारी और सचाई निर्विवाद है। रामविलास शर्मा प्रेमचंद में निहित कलाकार की सचाई को लक्षित करते हुए लिखा है कि 'उन्होंने परिस्थितियों को घटा-बढ़ाकर चित्रित नहीं किया, अपने युग की निर्धनता,



दासता और पीड़ितों की आर्त वेदना को जैसा उन्होंने अनुभव किया, वैसा दूसरों ने नहीं। '

प्रेमचंद जी ने पात्रों के माध्यम से जीवन के सत्व को निचोड़ा है। गोदान में वे लिखते हैं- 'मेरे जहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजुबानी से अपनी कुर्बानी से, अपने को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। 'गोलमाल में वे लिखते हैं, 'भारत का उद्धार अब इसी में है कि हम राष्ट्रधर्म के उपासक बनें। विशेष अधिकार के लिए न लड़कर, समान अधिकारों के लिए लड़ें।' एक जगह वे कहते हैं, 'खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।' निर्धनों के बारे में लिखते हैं, 'जिस समाज में गरीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है, जिसकी बुनियाद न हो। कोई हल्का-सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है। फरवरी १९३१ को लिखे अपने एक लेख 'नारी जाति के अधिकार में उन्होंने लिखा- 'पुरुषों ने नारी जाति के स्वत्वों का अपहरण करना शुरू किया, लेकिन राष्ट्रीयता और सुबुद्धि की जो लहर इस समय आई हुई है, वह इन तमा भेदों को मिटा देगी और एक बार फिर हमारी माताएं उसी ऊंचे पद पर आरूढ़ होंगी, जो उनका हक है।

साम्प्रदायिकता को सबसे बड़ी चुनौती मानते हुए प्रेमचंद ने लिखा है 'साम्प्रदायिकता सदैव संस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप में निकलते शायद लज्जा आती है, इसलिए वह गधे की भाँति जो सिंह की खाल ओढ़कर जंगल के जानवरों पर रोब जमाता फिरता था, संस्कृति का खाल ओढ़कर आती है।' प्रेमचंद ने लिखा है कि 'हम तो साम्प्रदायिकता को समाज का कोढ़ समझते हैं, जो हर एक संस्था में दलबंदी कराती है और अपना छोटा-सा दायरा बना सभी को उससे बाहर निकाल देती है। 'वे लिखते हैं, 'इस नई सभ्यता का आधार धन है।' एक जगह फिर लिखते हैं, 'धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए। यहां धर्म ने विभिन्नहता और द्वेष पैदा कर दिया है, क्योंकि खान-पान में, रस्म-रिवाज में धर्म अपनी टांगे अड़ाता है। 'धर्म का काम संसार में मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए। यहां धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है, क्योंकि खान-पान में, रस्म-रिवाज में धर्म अपनी टांगे अड़ाता है। 'आधुनिक समाज में व्याप्त अंधविश्वासपर चोट करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है 'हममें मस्तिष्क से काम लेने की मानों शक्ति ही नहीं रही। दिमाग को तकलीफ नहीं देना चाहते। भेड़ों की तरह एक-दूसरे के पीछे दौड़े चले जाते हैं, कुएँ में

गिरें या खन्दक में, इसका गम नहीं। जिस समाज में विचार मंदता का ऐसा प्रकोप हो, उसको सँभलते बहुत दिन लगेंगे।'

प्रेमचंद साहित्यकार को दलितों, वंचितों और पीड़ितों का वकील मानते रहे। हिंदी कहानी को छायावाद से मुक्त करवाकर मानवतावादी और यथार्थवादी धरातल पर ले आए। प्रेमचंद पहले बड़े लेखक हैं जिन्होंने सामाजिक जीवन में बहुस्तरीय यथार्थ को स्वीकृति दी है, उसकी तमाम संभावनाओं को समानता के धरातल पर खोला है। वह यथार्थ के किसी भी रूप के साथ भेदभाव नहीं करते। वह इस तथ्य को भी चित्रित करते हैं कि विभिन्न वर्गों में 'सहस्थिति' और 'संपर्क' है। इस तरह की प्रस्तुतियों के आधार पर हमें साहित्येतिहास के अंतरालों और अन्तर्क्रियाओं को खोलने में मदद मिल सकती है। प्रेमचंद ने साबित किया है कि लोक और समाज से अलग रहकर महान साहित्य की रचना नहीं की जा सकती है और महान रचनाएं किसी वैचारिक संगठन या किसी वाद के प्रति पक्षधरता का मोहताज नहीं होती। प्रो. मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में, इस प्रकार 'प्रेमचंद के हाथों हिंदी उपन्यास की 'कर्मभूमि' ही नहीं बदली, उसका 'कायाकल्प' भी हुआ। '



## परिचय

जन्मतिथि ११ दिसंबर १९६८

शिक्षा विधि स्नातक, स्नातकोत्तर (अन्तराष्ट्रीय संबंध एवं कानून), साइबर लॉ में दक्षता

डॉक्टरेट मानवाधिकार ह्रास (कानून)

पेशा १९९६ से २०१६ अधिवक्ता (पटना उच्च न्यायालय)

संप्रति लेखन एवं श्रीमद्भागवत गीता पर शोध कार्य प्रकाशन -

समाचार पत्रों एवं विभिन्न पत्रिकाओं में व्यक्ति-विशेष एवं सामाजिक कुरीतियों पर लेख प्रकाशित एवं मानवाधिकार हनन पर अन्तराष्ट्रीय जर्नलस में कई आलेख प्रकाशित।

९४३१०७४२००

nirajlegal@gmail.com



## क्रान्तिकारी चाहिए

गिरेन्द्रसिंह भदौरिया 'प्राण'

### गिरेन्द्रसिंह भदौरिया 'प्राण'

जो स्वयं कर्तव्य की हर साधना को साथ लें।  
आपदा की आँधियों को मुट्टियों में बाँध लें।  
काँप उठें नाम सुन थर थर कलेजे पाप के।  
टूट जाएं शब्द अपने आप आते शाप के।

क्रूर होकर जो अहं को खूटियों पर टाँग दें।  
जागने की हर प्रहर मुर्गे सरीखी बाँग दें।  
जो हृदय इंसानियत के राग के आगार हों।  
देश पर हर हाल मिटने के लिए तैयार हों।

वे पुरुष हों या कि नारी चाहिए इस देश को।  
इस तरह के क्रान्तिकारी चाहिए इस देश को।

दूसरों का मुँह न ताकें साथियों को साथ दें।  
जो गिरे उसको उठा लें हाथ को निज हाथ दें।  
भूलकर भी भारती माँ की न निन्दा सह सकें।  
देख कर बेचैन धरती खुद न जिन्दा रह सकें।

प्रेम को पूजा समझ कर धर्म को आधार दें।  
जो हृदय की बीथियों में व्योम सा विस्तार दें।  
क्या घृणा क्या द्वेष ईर्ष्या लोभ लालच क्या बला।  
हो न मन में पर इन्हें पहचानने की हो कला।

नीति के पक्के पुजारी चाहिए इस देश को।  
आज ऐसे क्रान्तिकारी चाहिए इस देश को।

अन्धविश्वासी चलन की तोड़ दें जंजीर को।  
जो सुकर्मी से बदल दें देश की तकदीर को।  
राष्ट्र के निर्माण का संकल्प जिनकी आन हो।  
मानवी अनमोल मूल्यों का सुहाता गान हो।

जो क्षितिज की दूरियों को दूर से ही नाप लें।  
शत्रु की रण योजना को पूर्व में ही भाँप लें।  
धैर्य धरती सा भरा हो सिन्धु सी गम्भीरता।  
आग सा ले तेज चल दे आँधियों को चीरता।

वीर हों बाँके प्रहारी चाहिए इस देश को।  
आज ऐसे क्रान्तिकारी चाहिए इस देश को।

एक युग की नींव में जो ईंट से डटते दिखें।  
मेघ से सब कुछ लुटाने के लिए उठते दिखें।  
फूल से कोमल हृदय में प्रीति हो पाषाण सी।  
स्वप्न में भी जो न चिन्ता पालते हों प्राण की।

जो समय के पत्थरों पर चिह्न छोड़ें पाँव के।  
हाथ में जिनके पलें युग धूप वाली छाँव के।  
जो शहीदों को झुकाकर शीश अभिनन्दन करें।  
देश की स्वाधीनता का उम्र भर चिन्तन करें।

कर्म - कारी धर्म - धारी चाहिए इस देश को।  
आज ऐसे क्रान्तिकारी चाहिए इस देश को।



### परिचय

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण' का जन्म २५ अगस्त १९५७ को इटावा जिले में चम्बल नदी के किनारे बसे पछायगाँव नामक गाँव के सामान्य परिवार में हुआ। वे हिन्दी संस्कृत अँग्रेजी में एम ए, बीएड हैं। देश के मूर्धन्य विद्वानों व कवियों में आपकी गणना की जाती है।

'वृत्तायन' ९५७ स्कीम नंबर - ५१

इन्दौर (पिन- ४५२००६) म प्र

९४२४०४४२८४



कर्मन्दु शिशिर

## साहित्य ही उनका स्वाभिमान था साहित्य ही उनकी विनम्रता

### कर्मन्दु शिशिर

नंदकिशोर नवल मेरे प्राध्यापक थे और लंबे समय तक हम एक ही शहर में रहे। बावजूद मेरी मानसिकता कहिये, भौगोलिक दूरी अथवा छोटे-मोटे और भी कारण कि हम व्यक्तिगत रूप से एक-दूसरे के बहुत निकट नहीं रहे। फिर भी हम मिलते रहे, अपवाद ही सही एक-दूसरे के घर भी गये और यदा-कदा फोन पर बातचीत का सिलसिला भी रहा। यह बहुत स्वाभाविक था कि चाहे अनचाहे हम दोनों को एक-दूसरे की सक्रियता या साहित्य में बनते-बिगड़ते रिश्ते की जानकारी भी रहती। लेकिन जब भी वे मिले, बातचीत हुई तो सबसे पहले यही पूछते कि आजकल क्या कर रहे हैं? जब वे थे और आज जब वे नहीं हैं तो उनसे हुई मुलाकातों और बातचीत को याद करते हुए एक बात दिमाग में आती है कि साहित्य और साहित्यकार से इतर उन्होंने शायद ही कभी कोई बात की हो। दरअसल साहित्य के अलावे उनके जीवन में कुछ था ही नहीं। वे हम सबके गुरु थे जरूर लेकिन गुरुवत व्यवहार करना गोया उन्हें आता ही नहीं था। वे खूब साहित्यिक गप्पें करते, बहसें करते, युवकोचित ढंग से उत्तेजित होते, नरम पड़ते, हँसते, दोस्तों की तरह लड़ते-झगड़ते, घनघोर असहमति या सहमति अथवा निंदा, शिकायत, तंज या उपहास, चुहल, मजाक या प्रशंसा-सब कुछ करते लेकिन सब कुछ साहित्य के भीतर। साहित्य उनके जीवन की लक्ष्मण रेखा थी। मैंने उनको कभी साहित्य के बाहर किसी प्रसंग या व्यक्ति की चर्चा करते नहीं सुना।

न ही कभी बहस या किसी बात का अंदर मन पर या आचरण में असर होते महसूस किया। यह सब कमल के पते पर ढुलकते पानी की तरह बह जाता। उठते-बैठते, चलते-फिरते, ओढ़ते-बिछाते साहित्य में डूबे हुए लोग अब कहाँ देखने को मिलते हैं!

तब यह जरूर है कि उनके लिखें संस्मरणों को पढ़ते हुए आप इस बात को महसूस करेंगे कि साहित्य और साहित्यकारों को लेकर उनके भीतर पैसन जरूर था मगर उनके भीतर एक संतुलन और व्यवस्था भी थी। अपनी पढ़ाई, शोध और अध्यापन को लेकर वे कभी लापरवाह नहीं रहे। बतौर एक छात्र यह बात मैंने भी लक्षित की थी। वे बिना पाठ के प्राथमिक अर्थ बोध के विषय पर आगे बढ़ने पर टोकते थे। एक बार उन्होंने मुझे अलग बुलाकर कहा था कि कर्मन्दु जी मैं जानता हूँ आपका जी भाषा-विज्ञान और काव्यशास्त्र में बिलकुल नहीं रमता होगा। आप आगे जीवन में इसे शायद ही पढ़ें। इसलिए मेरी बात गौर कीजिए सिर्फ दो साल की अनिच्छित बौद्धिक यातना की बात है। इस दौरान इन दोनों विषयों को जितना हो सके ढंग से जान लीजिए। मैं आपको अपने अनुभव से कह रहा हूँ। आगे आपके साहित्य के लिए भी यह ज्ञान बहुत काम आयेगा। इसी तरह वर्तनी की त्रुटियों को लेकर भी उन्होंने चेताया था कि आप व्याकरण के सहारे इसे कभी दुरुस्त करने के फेर में मत पड़िएगा। साहित्य पढ़ने-लिखने

की निरंतरता से थोड़ा सचेत रहिये, अभ्यास से ये गलतियाँ दूर हो जायेंगी। व्याकरण पढ़ने के फेर में पड़े कि आप गद्य गाँवा दीजियेगा। आपका गद्य बहुत सुंदर है।

आप नलिन विलोचन शर्मा पर लिखे उनके संस्मरण को देखिये। इसमें उन्होंने उस समय के हिन्दी विभाग, पाठ्यक्रम, शिक्षक और शिक्षणस्तर के यथार्थ का भी अहसास करा दिया है। शिक्षण के आचरण को लेकर एक तरफ गणित शिक्षक की क्षुद्रता तो दूसरी ओर नलिन जी का देवोपम उदात्त व्यक्तित्व। किस तरह एक लड़की के साथ छेड़छाड़ करने वाला लड़का उनके बार-बार कहने पर भी न तो अपनी गलती स्वीकारता है और न ही माफी माँगता है। तब वे खुद कुर्सी से खड़े होकर उस लड़के की ओर से माफी माँग कर, लड़का, लड़की दोनों को पश्चाताप और लज्जा के लिए विवश कर देते हैं और दोनों रोने लगते हैं। एक शिक्षक के रूप में अपने पूरे अध्यापन काल में नलिन जी उनके आदर्श बने रहे।

त्रिलोचन जी के मूल व्यक्तित्व की पहचान के लिए उन पर लिखा संस्मरण बहुत ही दिलचस्प है। इसे पढ़ते हुए आप यह भी महसूस करेंगे कि साहित्य के साथ जीवन के रसास्वादन में भी उन्होंने कोई कृपणता नहीं बरती थी। त्रिलोचन जी के प्रति सपरिवार आतिथ्य वत्सलता का चरमोत्कर्ष तो तब दिखता है जब नवल जी की व्यस्तता के कारण उनकी पत्नी उन्हें छोड़ने स्टेशन जाती हैं। वे खुद कवि पुत्री रहीं इसलिए उनमें संस्कारगत संवेदनशीलता तो थी ही और कवि महत्त्व की समझ भी। उन्होंने उनके गंदे कपड़े धोकर साफ कर दिये। रिक्शा पर साथ स्टेशन ले जाते हुए रास्ते में फटी गंजी और लुंगी खरीदकर उनके झोले में डाल देती हैं। टिकट के अलावे आदरपूर्वक विदाई अलग से। वे तब तक स्टेशन पर खड़ी रहती हैं जब तक टेड्डन खुल नहीं गई। नवल जी ने इस संस्मरण में त्रिलोचन जी से जुड़े छोटे-छोटे इतने सारे दिलचस्प और मजेदार प्रसंगों को पिरोया है कि सबकी चर्चा नहीं हो सकती। इन सारे प्रसंग में त्रिलोचन जी के रूप में निराला जी की उपस्थिति का अहसास होता है। इसमें नवल जी की संवेदनशीलता और साहित्यकार प्रेम का वही स्वभाव साफ-साफ दिखता है। त्रिलोचन जी के जीवन संघर्ष से जुड़े हास और बेबसी के परस्पर विरोधी दृष्टांत आपको आह्लादित भी करेंगे और साथ ही बुरी तरह मर्माहत कर रुला भी देंगे।

बेशक साहित्य के प्रति नवल जी का गहरा लगाव

और समर्पण था लेकिन वे कोई संत भी नहीं थे। वैसे पैतृक विरासत को लेकर देखे तो किसी के लिए अपने अधिकार को हासिल करना बहुत कठिन नहीं होता। लेकिन जिस तरह उन्होंने उससे अपना पीछा छुड़ाया, वह एक तरह से धन-लिप्सा से अनासक्ति ही थी। वे झंझट से मुक्ति पाकर ज्यादा राहत महसूस कर रहे थे। बाद में वे अपने भतीजे के यहाँ गाँव यह सोचकर कभी नहीं गये कि वह पानी में जहर मिलाकर पिला देगा। अपने घर-परिवार में भी उनकी समझ इतनी तटस्थ थी कि डकैती से यौन चरित्र की सच्चाई को लिखने में कोई गुरेज नहीं किया। वे गृहस्थ थे लेकिन सांसारिक नहीं थे। उनकी मानसिकता साहित्यिक थी, प्रकृति भी अलग थी लेकिन साहित्य की दुनिया को लेकर वे तनिक भी लापरवाह नहीं थे। कुछ भी उन्होंने ढँका-छुपाया नहीं, न जीवन के पारिवारिक प्रसंगों को और न ही साहित्यिक प्रसंगों को। डॉक्टर रामविलास शर्मा और नामवर सिंह पर लिखे उनके संस्मरणों को गौर से पढ़ने पर बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

इन दोनों दिग्गजों से उनके संबंध बने और बहुत गहरे बने आत्मीय और अंतरंग। नामवर जी के साथ तो प्रगाढ़ता में कभी कोई उतार-चढ़ाव जैसा नहीं आया। सिर्फ एक बार अपवाद घटित हुआ, जब वे 'आलोचना' से अलग हुए लेकिन यह लंबा नहीं खींच सका। दरअसल यह हिन्दी में ऐसा दौर था जब इन दोनों दिग्गजों में एक समय में खूब प्रतिद्वंद्विता थी। अब उन दोनों में थी या नहीं लेकिन उनके समर्थकों में तो जबर्दस्त थी। अजाने दोनों ओर के अपने-अपने गुट बन गये थे। कुछ वरिष्ठों ने तो दोनों से अपने रिश्तों का जैसे-तैसे निर्बाह कर लिया मगर सभी के लिए ऐसा करना कठिन था। ऐसी स्थिति में विवाद वैचारिकता से फिसलकर निजता की ओर खिसक जाती है और वातावरण कुछ ज्यादा ही विषाक्त होता जाता है। अब साहित्य से जितने संभव सुज्ञात लाभ थे- अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष! वह सब तो नामवर जी के साथ ही रहकर हासिल हो सकता था। इस मामले में रामविलास जी तो एकदम सूखे थे- बिना रस के। उनका स्वभाव और व्यवहार भी ऐसा नहीं था जिसका कोई आकर्षण हो। लेकिन यह कहना कि सिर्फ लाभ-लोभ ही नामवर जी की पक्षधरता का इकलौता आधार था- एकदम गलत बात होगी। नामवर जी की आधुनिकता, समझ, प्रखरता और बौद्धिक क्षिप्रता का भी अलग आकर्षण था। उनके व्यवहार में भी रूक्षता नहीं होती थी। इसलिए

साहित्य, विचार और समझ के लिहाज से दोनों में किसी का साथ आलोच्य नहीं था, निरापद था। अगर संग्रह-त्याग का विवेक हो तो दोनों का साहचर्य बौद्धिक स्तर पर हर हाल में समृद्ध ही करने वाला था।

बहरहाल! नवल जी का लंबे समय तक रामविलास शर्मा के साथ रिश्ता पारिवारिक अंतरंगता जैसा रहा। एक वक्त ऐसा आया जब वह आत्मीयता की डोर कमजोर पड़ी। अब इस प्रसंग में तो नवल जी ने संस्मरण लिखकर अपना पक्ष रखा है लेकिन रामविलास जी का कोई पक्ष लिखित रूप में मौजूद नहीं है। उनसे जुड़े लोगों के साथ वह अलग-अलग रूप में मुँह जुबानी ही है। वैसे भी यहाँ उसकी सत्यासत्य की परख का कोई औचित्य नहीं। मगर यहाँ नवल जी के लिखे संस्मरणों में व्यक्त समझ और स्वभाव से जो उलझन पैदा होती है, जो सवाल उठते हैं, अलबत्ता उसकी चर्चा की जा सकती है। रामविलास जी से संबंधों के अंतरंग से औपचारिक होने की शुरुआत खुद रामविलास जी ने की, नवल जी ने नहीं। क्यों? नवल जी ने अपने संस्मरण में ऐसा ही लिखा है- “वे मेरे प्रति अपने संबंध को औपचारिक बनाने लगे थे। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि मुक्तिबोध की कविताओं पर लिखते हुए मैं मार्क्सवादी संकीर्णतावाद से मुक्त होने लगा था और दूसरा यह कि मैं ‘निराला रचनावली’ का संपादन उनके परामर्श की उपेक्षा करके कर रहा था।” (१३५) रामविलास जी से मैं अंतरंग का दावा तो नहीं कर सकता लेकिन बहुत सारे लोगों की तरह मैं भी जुड़ा हुआ था। मैंने अपनी मुलाकात में एक बार मुक्तिबोध और एक बार हजारीप्रसाद द्विवेदी पर अपनी ओर से खूब तैयारी कर उनसे लंबी और जोरदार बहस की थी। अपनी असहमतियों को शालीनता से ही लेकिन दृढ़तापूर्वक रखा था। इसलिए यह कहना कि विचार बदलाव या भिन्नता के कारण उन्होंने रिश्ते को अंतरंग से च्युत कर औपचारिक कर दिया था, यकीन नहीं होता। अमृतलाल नागर तो मार्क्सवादी ही नहीं थे लेकिन वे जीवन भर अंतरंग मित्र रहे। दूसरी बात परामर्श वाली है तो ‘मतवाला’ संपादन के समय मैंने उनके परामर्श को नहीं माना और यह बात मैंने भूमिका में लिख भी दी। रामविलास जी ने तब भी उस किताब की भूमिका लिखी और संबंध भी जैसे थे, वैसे ही बने रहे। जहाँ तक मेरी समझ है संबंधों को लेकर उनका स्वभाव थोड़ा अलग था। उनके अति प्रिय दो ही मित्र थे- अमृतलाल नागर और केदारनाथ अग्रवाल। उसके बाद वे नागार्जुन, त्रिलोचन और

शमशेर को रखते थे। इसके अलावे शेष सबसे अंतरंग जैसा व्यवहार जरूर करते थे लेकिन यह बात उनको बिलकुल पसंद नहीं थी कि कोई उनसे अंतरंगता का सार्वजनिक अहसास कराये। वे अपने निर्णयों में अमूमन तब्दीली नहीं करते थे। संबंधों में वे बहुत राफ-साफ आदमी थे।

नवल जी ‘निराला रचनावली’ प्रकरण की चर्चा विस्तार से करते हुए बहुत आगे तक बढ़ गये हैं। उन्होंने यह तक लिखा है कि राजकमल ने उनकी किताबें छापनी बंद कर दी थी जिसके कारण उनको अपनी पुस्तकें छपवाने के लिए दूसरे प्रकाशकों के यहाँ जाना पड़ा। यह सब थोड़ा अति लगता है। क्या बाद में जब राजकमल ने फिर उनकी किताबें छापनी शुरू की तो रामविलास जी को झुकना पड़ा या झुककर कोई समझौता करना पड़ा? इससे रामविलास जी को नुकसान पहुँचा या राजकमल को? मेरे ख्याल से यह अनावश्यक और अवांतर बातें हैं।

बहरहाल! असल बात यह थी कि ‘निराला रचनावली’ में रामविलास जी ने ‘निराला की साहित्य साधना’ (खंड-तीन) के पत्रों को शामिल करने से मना कर दिया था। नवल जी इसी कारण उनसे लगभग बिदक से गये थे। रामविलास जी के संस्मरण में वे लिखते हैं- “हम सारे उन्हीं के शिष्य हैं। उन्हीं से लिखना सीखा है और उन्होंने आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद बोझिल पारिभाषिक शब्दावली से मुक्त हिन्दी आलोचना की भाषा बनाई है। वे विशाल वट-वृक्ष हैं और हमलोग उसी वृक्ष की छोटी-बड़ी टहनियाँ हैं।” (१४२) लेकिन इस प्रकारण के बाद उनको लेकर नवल जी की सोच में इतना परिवर्तन होता है कि नामवर जी वाले संस्मरण में वे यह लिखते हैं- “रामविलास शर्मा की आलोचना जहाँ रूढ़ मार्क्सवाद के साँचे में ढली हुई है, वहाँ नामवर जी के लिए वह एक ‘सहयोगी प्रयास’ है। एक विदेशी विद्वान् ने कहा था कि जिस आलोचना से ध्वनि निकलती है कि ‘मुझसे असहमत होने का साहस मत करो, वह बहुत खराब आलोचना होती है। डॉ. शर्मा की आलोचना से यही ध्वनि निकलती है”, उन्होंने आगे भी उन्हें संकीर्णतावादी मार्क्सवादी वाली बात दुहराई है। लेकिन निजी बातचीत में नवल जी की ऐसी राय नहीं थी। वे कहते थे कि रामविलास जी जिसे निजी स्तर पर पसंद नहीं करते थे, उस पर लिखते हुए वे संकीर्ण और आक्रामक हो जाते थे। लेकिन जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ उनकी आलोचना का कोई जोड़ नहीं। वे उदाहरण देकर भी बताते थे। रामविलास जी को लेकर उनकी समझ अपनी

जगह पर मगर क्या उनके प्रति उनका भाव ऐसा ही कटु और रूढ़ था? जब रामविलास जी का निधन हुआ तो लिखते हैं- वे एम्स में भर्ती हुए और शीघ्र ही महाप्रयाण कर गए। मुझे मालूम हुआ तो मैं फूट-फूटकर रोने लगा। (१४२) तो नवल जी में तुनक थी। एक बार बाबा नागार्जुन से किसी कारण चिढ़ गये। उन पर लिखे संस्मरण में खुद लिखा है कि उन्होंने प्रण कर लिया कि किसी कीमत पर मैथिलीशरण गुप्त के नाम पर एक लाख का पुरस्कार उनको नहीं मिलने देंगे। वे चयन समिति में थे। जब चयन समिति में बैठे तो एकदम से अड़ गये कि यह बाबा नागार्जुन को मिलना चाहिए। उन्हीं के प्रयत्न से उनके अनुकूल निर्णय हुआ। कभी-कभी तो वे अपने रिश्तों में अंतरंगों से भी अबोला हो जाते थे। लेकिन यह उनका स्थाई भाव नहीं था। खगेन्द्र ठाकुर से उनकी बातचीत वर्षों तक बंद रही। प्रसंगवश उनके लिखे संस्मरण में उन्होंने अपने भाव छुपाये भी नहीं हैं। मगर जब खगेन्द्र ठाकुर का निधन हुआ तो वे स्वास्थ्य कारणों से जा तो सकते नहीं थे लेकिन सुनकर बुरी तरह विचलित हो गये। फोन पर उनकी पत्नी और बेटे से घंटे भर पुक्का फाइकर रोते रहे। उनके अत्यन्त प्रिय अरुण कमल से भी उनकी बातचीत बंद थी। तरुण जी के बेटे के रिसेप्शन में मैं और अरुण कमल साथ बैठे थे। वे आये और ठीक हमलोगों के सामने खड़े हो गये। हमलोगों ने उठकर प्रणाम किया उन दिनों वे अरुण कमल की कविताओं पर लिख रहे थे, उसकी कविताओं की प्रशंसा में कुछ देर तब बोलते रहे। बोले कि जब किताब आयेगी तो वे भेंट करने अरुण कमल के घर आयेंगे। तो ऐसा था उनका मानसिक गढ़न!

नवल जी के संस्मरणों की सिर्फ एक किताब है- "मूरतें माटी और सोने की"! ये संस्मरण आत्मगोपन शैली में नहीं, आत्मप्रकटीकरण शैली में लिखे गये हैं। इससे खुद उनके जीवन की भी एक झलक मिल जाती है। इसमें शुरू के पाँच संस्मरणों में उनका बचपन है, परिवार और कुटुंब है। गाँव है और गाँवई समाज है। ग्रामीण जीवन के कठिन जीवन-संघर्ष, उनकी जड़ताएँ, अंधविश्वास, कुटिलताएँ, शोषण के विविध रूप, ईर्ष्या, नशा, लालच, छल-प्रपंच और इसके बीच में उनका कठिन श्रम, प्रेम, लगाव और त्याग भी। जातीय ऊँच-नीच भी, बीमारी और देहाती इलाज भी, अभाव और कर्ज भी- मसलन वह सब कुछ जिसमें भारतीय ग्रामीण लोकजीवन का अलग सौन्दर्य है और भरपूर सड़ाँध भी। ऐसा करते हुए नवल जी सूक्ष्म से सूक्ष्म और छोटी से छोटी

बातें, घर की हों या गाँव की, उसे कहनी चाहिए या नहीं कहनी चाहिए- तनिक भी बिना हिचके बेधड़क कह जाते हैं। एक तरह से आपको गाँवई जीवन की एक्स-रे रपट मिल जाती है। लेकिन इस हिस्से का आखिरी अध्याय 'पीस परिस्थितियों ने डाला' अलग से महत्वपूर्ण और विचारणीय है। यह नवल जी के साहित्य से जुड़ाव और बचपन में साहित्य के बीच-वपन का साक्ष्य तो है ही, इससे यह भी अंदाज होता है कि तब गाँवों में किस तरह पुस्तकों और साहित्यिक पत्रिकाओं की पहुँच थी। उनका कैसा असर था! उसकी कितनी रचनात्मक भूमिका थी! 'विशाल भारत' या 'अवतिका' के संपादकीय गाँव के लोगों के बीच चर्चा में हो, यह आज तो सर्वथा अकल्पनीय है। पुस्तकालय और वाचनालय सांस्कृतिक नवजागरण के केन्द्र बन रहे थे। नवल जी ने उसके बनने और नष्ट होने की करुण गाथा को भी बड़ी मार्मिकता से अंकित किया है। इन संस्मरणों से गुजरने के बाद सूत्र रूप में यही बात हाथ आती है कि- 'साहित्य ही उनका स्वाभिमान था, साहित्य ही उनकी विनम्रता!'



## परिचय

जन्म २६ जनवरी १९५३ को वाराणसी में हुआ आपकी शिक्षा पटना विश्वविद्यालय से हुई अक्टूबर १९८० से जनवरी २०१९ तक पटना के बी डी कॉलेज में हिंदी प्राध्यापन किया अवकाश बाद संप्रति गाजियाबाद में निवास छात्र जीवन से ही वामपंथी राजनीति में रहे लेकिन बाद में पूरी तरह साहित्य में एकाग्र आप कई किताबों के लेखक हैं जिनमें उपन्यास कहानी वैचारिक और आलोचनात्मक निबंधों का संग्रह और हिंदी नवजागरण और और जातीय गद्य परंपरा के नाम से भी एक उच्च स्तरीय पुस्तक है धर्मेंद्र जी के कई उपन्यास हैं कहानी संग्रह भी कई हैं उसके अतिरिक्त वैचारिक और आलोचनात्मक कृतियां भी हैं हिंदी भाषा पर भी आप की पुस्तकें हैं

बी-३०१ किंग्स कोर्ट अपार्टमेंट, गैलेरिया मार्केट के पीछे  
क्रासिंग रिपब्लिक, गाज़ियाबाद-२०१०१६ (उ.प्र.)  
८६६९०२९७६३



हरिशंकर राठी

## कालिदास की उज्जयिनी हरिशंकर राठी

वैसे उज्जयिनी तो महाकाल की नगरी है, लेकिन इधर मुझे काफी हद तक कालिदास की भी लगने लगी है। इस बार तो खूब लगी। महाकाल के प्रांगण से बाहर होते ही कालिदास छाने लगे। कभी स्वयं की इच्छा से तो कभी किसी और की इच्छा से न जाने कितनी बार महाकाल के लिए गया। तब भी गढ़ कालिका के भ्रमण और दर्शन के समय कालिदास आ खड़े होते थे। वही गढ़ कालिका, जिनकी भक्ति से कालिदास कालिदास हुए और जनश्रुति के अनुसार जिनको उन्होंने अपनी जीभ काट कर चढ़ा दी। वैसे समझ में नहीं आता था कि कालिदास जैसा वाग्पुत्र अपनी वाणी कैसे काटकर चढ़ा देगा? बहुत बाद में समझ आया कि षायद वह वाली जीभ काटकर चढ़ायी होगी जिसने 'उष्ट्र' को उट्ट कहा था। उट्टवाली जीभ चढ़ा देने के बाद वाग्देवी वाली जिह्वा मिली होगी। लेकिन तब गढ़ कालिका मंदिर से निकलते ही कालिदास गायब हो जाते थे। इस बार ऐसा नहीं हुआ। कालिदास मिलते रहे और उज्जयिनी में मेरे साथ घूमते ही रहे।

उज्जयिनी यानी उज्जैन का कुछ हिस्सा विक्रमादित्य का है, कुछ महर्षि सांदीपनि का है तो कुछ भर्तृहरि का भी है। तलाषने पर ये सभी मिल जाते हैं। थोड़ा समय चाहिए होता है तलाषने के लिए, थोड़ा

एकांत और अकेलेपन का साथ हो। एकांत न भी मिले, अकेलापन ही पर्याप्त होता है अंदरूनी यात्रा के लिए। अकेलापन मिलते ही बैताल उचककर कंधे पर सवार होने आ जाता है। इस बार की उज्जैन यात्रा में इन सबसे मुलाकात हुई, लेकिन कालिदास से मुलाकात कुछ लंबी ही रही।

उज्जैन आना-जाना पिछले दो दशकों से हो रहा है। कभी-कभी हर साल हो जाता है तो कभी आठ-नौ साल का अंतराल भी आया है। साथ में काँ न काँ परिवार और भी होता है। उज्जैन पहुँचने के बाद प्राथमिकता महाकाल के दर्शन की होती है, लेकिन अपना कार्यक्रम भागने वाला नहीं होता। एक दिन और एक रात रुककर ही वापस लौटता हूँ। ट्रेन सुबह पहुँचा देती है और अगले दिन घाम को उसी से वापसी। महाकाल मंदिर के पास एक होटल को अड़्डा बना रखा है। अपना पर्यटन अनुभव यही कहता है कि होटल या तो रेलवे स्टेशन-बस अड़्डे के पास हो या फिर प्रमुख आकर्षण के। जब चाहो निकल लो। पहले दिन दर्शन के बाद अपराह्न का समय आस-पास के प्रमुख स्थलों पर पैदल-पैदल घूमने में निकल जाता है तो अगला दिन शहर से थोड़ा बाहर के स्थलों पर। दस बजे चेक आउट का समय होता है। झोला-थैला होटल

वाले के स्टोर में जमा कराके घूमने निकल लेते हैं। षाम तक के लिए होटल का एक दिन का किराया फालतू क्यों दें?

महाकाल मंदिर की व्यवस्था मध्यप्रदेश षासन के जिम्मे है। सुविधा और व्यवस्था के नाम पर प्रषासन अपने खेल में मग्न है। जिसने बीस साल पहले महाकाल के दर्षन किए होंगे, वह आज जाएगा तो अंतर महसूस करेगा। अंतर तो क्या, स्वयं को ठगा हुआ, वंचित ही वंचित पाएगा। कहाँ वह मुख्य द्वार से प्रवेश, कोटि तीर्थ सरोवर से जल लेकर अभिषेक, मंदिर की प्राचीनता से स्वयं को जोड़ना, गर्भगृह में जाकर दर्षन करना और कहाँ मंदिर के पिछवाड़े से प्रवेश, आधा मील लंबी पंक्ति व्यवस्था और गर्भगृह से बीस-पच्चीस मीटर की दूरी से क्षणांष के लिए ज्योतिर्लिंग की झलक पाना! भक्त आधुनिक है तो उसका वह क्षणांष भी मोबाइल से फोटो, सेल्फी या वीडियोग्राफी में गया। फिर जल्दी से हॉककर निकासद्वार की ओर।

इस बार की यात्रा में एक और बिंदु जुड़ गया था। इसी बिंदु के जुड़ने से उज्जयिनी में कालिदास की याद अधिक आई और उनका एक हिस्सा भी जुड़ा। हालाँकि इस बिंदु से कालिदास का काँ स्पष्ट रिष्ता नहीं है। दरअसल, उज्जैन नगर के निकटवर्ती बाहरी बिंदुओं में कुल छह स्थान ऑटो-टुकटुक या मैजिक वाले दिखाते हैं। ये बहुत पुराने हैं। जब मैं पहली बार सन् 2000 में उज्जैन गया था, तबसे देख रहा हूँ। अंतर इतना ही है कि तब जंगल अधिक थे, यात्री कम। अब यात्री अधिक हो गए हैं, जंगल कम। ये स्थल थे सांदीपनि आश्रम, भर्तृहरि गुफा, गढ़ कालिका, सिद्धवट, मंगल महादेव और भैरव नाथ। इस बार जिस गाड़ी वाले से बात हुई, उसने बताया कि आप मुझे कर लें, मैं एक और सुंदर नया स्थान दिखा दूँगा। थोड़ा दूर है जंगल में बगलामुखी का स्थान। हमारे पास समय की कमी थी नहीं, सो कर लिया।

पहले दिन हमने पदबल से रामघाट, हरसिद्धि, गोपाल मंदिर और विक्रमादित्य टीला देख लिया था। वैसे विक्रमादित्य टीला भी एक नया और उत्तम निर्माण है। महाकाल मंदिर के ठीक पीछे एक विषाल सरोवर है जो वर्षाकाल के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में सूखा ही

रहता है। प्रायः जलकुंभी से अँटा हुआ। इसी सरोवर में एक टीले पर विक्रमादित्य के दरबार और उनके नौरत्नों की झलक देने का प्रयास किया गया है। उज्जैन तो विक्रमादित्य की समृद्ध राजधानी रही है। टीले पर जाते ही हमारी नजरों को नारी मूर्ति का सौंदर्य बाँध लेता है। वस्तुतः विक्रमादित्य को जानने वाले उनकी गुणवत्ता, विद्वता और न्यायप्रियता को जानते हैं। इसी से बँधी हुई है इन मूर्तियों की कथा। कुल 32 युवा पुत्तलियों की मूर्तियाँ प्रेम-सौंदर्य और देह सौंदर्य की पूरी गाथा लिख देती हैं। क्या कटाव, किस भाव भंगिमा और किस साँचे में ढली हैं ये पुत्तलियाँ! बस देखा जा सकता है, कहा नहीं। तुलसीदास ने ठीक ही लिखा है – गिरा अनयन नयन बिनु बानी। ऊपरी तल पर विक्रमादित्य की विषाल धातुमूर्ति है। उसके अगल-बगल उनके नौरत्नों की मूर्तियाँ नाम सहित। बादषाह अकबर के नौरत्नों तक अपने ज्ञान को सिमटाकर रखने वाले और उन्हें ही सर्वश्रेष्ठ मानने वालों को विक्रमादित्य तक जरूर जाना चाहिए। कालिदास उन्हीं में एक थे। कितने नाम और लें। उनके नौरत्नों के परिचय में एक प्लोक है-

धन्वंतरिक्षपणकामरसिंहषंकुवेतालभट्टघटकर्पर कालिदासः।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेसभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।

अर्थात् धन्वंतरि, क्षपणक, अमर सिंह, षंकु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराहमिहिर एवं वररुचि राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों के रूप में ख्यात थे। इन मूर्तियों का क्रम देखा जाए तो कालिदास की मूर्ति राजा विक्रमादित्य के सिंहासन के निकटतम है। जब भी वहाँ जाता हूँ, कुछ देर बैठता हूँ। लोग फोटो खींच रहे होते हैं, लेकिन मुझपर जैसे बेताल सवार रहता है। विक्रमादित्य की सामर्थ्य का षतांष भी मुझमें नहीं है, यह मुझे ज्ञात है। विक्रमादित्य चाहते तो बेताल को झटक देत। लेकिन नहीं किया। क्षिप्रा तट पर सिद्धवट स्थल पर साधना करके उन्होंने बेताल को पाया था। अब बेताल है तो षिष्टाचार के ताल से उसे लेना-देना तो रहेगा नहीं। लेकिन देखिए तो कि क्या ज्ञानपिपासा थी विक्रमादित्य की कि बेताल को पीठ पर लादे रहे। जीवन में ताल के साथ बेताल का होना जरूरी होता है।



लगता है कि बेताल मुझे घसीट रहा है और घसीटकर कालिदास के पास बिठा देता है। मेघदूतम् और अभिज्ञान षाकुंतलम् के पृष्ठ पलटने लगते हैं। क्या-क्या लिखा डाला है कालिदास ने इन पृष्ठों पर ! इन्हीं दो को मैंने पूरा पढ़ा है। बाकी का तो बस नाम ही जानता हूँ, और नाम जान लेने से कुछ खास नहीं होता। विक्रमटीले से निकले और महाकाल मंदिर के घंटों-नगाड़ों को सुनते हुए, कुछ देखते-खरीदते आगे चल पड़े।

काल का अस्तित्व तब भी रहा होगा, जब कुछ नहीं था। महाकाल की तो बात ही अलग है। मंदिर के घंटे-नगाड़े कालिदास के समय में भी थे। बजते भी जोर से रहे होंगे, तभी तो कालिदास मेघ को सिखावन देते हैं कि जब तुम उज्जयिनी के महाकाल मंदिर जाओ तो वहाँ सायंकाल तक रुकना और सांध्यपूजा में नगाड़े की भांति गर्जन करके पुण्यलाभ अर्जित करना - 'फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम्'। मेघ अपनी भक्ति गर्जन और वर्षण से ही तो प्रकट कर सकता है।

अगले दिन गढ़ कालिका के दर्शन करके तथा यह लिखा हुआ पढ़कर कि गढ़ कालिका कालिदास की इष्टदेवी थीं, हम जंगल स्थित बगलामुखी मंदिर पहुँच गए। इतना दूर भी नहीं था, इतना घना जंगल भी नहीं था जितना गाड़ीवाले ने बताया था। हाँ, इमली के विषाल पेड़ के साथ झरबेरियाँ, अज्ञात वृक्ष और बाँस खूब थे। झाड़ियाँ छिपने और अभिसार के लिए अच्छी रही होंगी। कालिदास के समय में पूरी तरह रही होंगी, अब आंशिक हो गई हैं। हरीतिमा भी थी, यूपि उज्जैन अति तो क्या, पूर्णवृष्टि के क्षेत्र में भी नहीं आता। लेकिन वातावरण था। मंदिर में अपना मन इतना नहीं लगता जितना प्रकृति में। बगलामुखी तांत्रिकों की देवी हैं। दस महावि में एक हैं, ऐसा सुना है। जो चाहते होंगे, उन्हें सिद्धि मिलती होगी। मुझे तो बस जमीन पर सूखने के लिए फैलायी गई पाँच-सात बोरी छोटी-देधी लाल मिर्ची आकर्षित कर रही थी। खाने के लिए नहीं, बस देखने के लिए।

इसी मंदिर के ऊपरी तल पर जाते ही कालिदास सवार हो गए। अब समझ में आया कि आखिर उन्होंने मेघ को उज्जयिनी रूट से जाने के लिए क्यों मनाया

होगा। उन्हें पता था कि रामगिरि से अलकापुरी के रास्ते में उज्जयिनी नहीं पड़ती। मेघ को रास्ता बदलकर जाना पड़ेगा। खैर, मेघ का लगता ही क्या है और कौन सा वह सीधे रास्ते चलता है। उसे तो जहाँ हवा तक उड़ा ले जाए, वहीं चला जाता है, यहाँ तो कालिदास उड़ा रहे हैं। वे प्रजापति हैं, ब्रह्मा हैं। अपारे काव्यसंसारे कविरिकः प्रजापतिः, यथास्मै रोचते विष्वं तथैव परिवर्तते। जब टुच्चेम-टुच्चे कवि स्वयं को ब्रह्मा से कम नहीं मानते तो ये तो कालिदास हैं। फिर भी विनम्रता देखिए कि मेघ से निवेदन करते हैं कि वह उज्जयिनी की षोभा देखते हुए अलकापुरी जाए, यूपि उसका मार्ग वक्र हो जाएगा। उसे लालच देते हैं जिसमें उज्जयिनी चमक उठती है-

वक्रा पंथा यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराषाम् ।  
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।  
विदुदामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानाम्  
लोलापाङ्गैर्यदिन  
रमससे लोचनैर्वचितोऽसि ।।(पूर्वमेघ, 28)

अर्थात् यूपि उत्तर दिशा की ओर जाते हुए आपका मार्ग टेढ़ा हो जाएगा, तथापि उज्जयिनी की उच्च अट्टालिकाओं का परिचय पाने से विमुख मत हो जाना। यदि तुमने वित्त चमक की रेखा से भयभीत तथा चंचल कटाक्ष वाली इस नगर की सुंदरियों के नेत्र का आनंद नहीं लिया तो समझो तुम ठगे गए। कालिदास उपमा के ही नहीं, सौंदर्य एवं कामषास्त्र के विषेण रहे होंगे। न जाने इतना शृंगार कहाँ से, किस अनुभव से लाते हैं! उज्जयिनी सुंदर रही होगी, श्रीयुत रही होगी और सुंदरियों से श्रेष्ठ रही होगी। उन सुंदरियों का वर्णन किए बिना कवि अधूरा ही रह जाता। खैर सर्वोत्तम सुंदरी तो उन्होंने अलकापुरी में बिठा रखी थी जिसके पास वे प्रेम संदेष्ट भिजवा रहे थे। उज्जयिनी में अभिसारिकाएँ रही होंगी। हर समृद्ध समाज में अभिसार होता है। यह अभिसार यदि प्रकृति के अंचल में हो तो पूछना ही क्या ! तो यही वह जंगल है, वही झरबेरियाँ हैं जहाँ से रात के अंधेरे में अभिसारिकाओं को गुजरना है। एक तो कोमलांगी, मिलन की उत्कंठा से कंपित हृदय, वनपथ, निविड अंधकार, चुपके-चुपके जाना और बिना भेद खुले मिलकर आ जाना! कितनी कठिन

परिस्थिति, पर क्या करें उस प्रेम का, उस हृदय को जो इन खतरों का खतरा उठाता है। यही जगह है जहाँ मेघ को अभिसारिका की सहायता करनी है। देखिए तो सही –

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं  
रुद्धावलोके नरपतिपथे सूचिभैस्तमोभिः।  
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्षयोर्वी  
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ताः।।  
(पूर्वमेघ, 40)

कालिदास का सिखावन है कि मेघ चमके तो जरूर लेकिन गरजे नहीं। उसकी वितरेख से अभिसारिका को पंथ देखने में आसानी होगी लेकिन यदि गरजता है तो वह डर जाएगी। उधर प्रेमी की सोच उलट है। यदि मेघ चमक के साथ गरज दे तो अभिसारिका भयवष उसके हृदय से चिपक जाएगी और उसे आलिंगन का सुख मिल जाएगा। सौंदर्य तो वह देख ही रहा है। कालिदास बहुत बचा-बचा के चलते हैं। अभिसारिका को जंगल में भेज रहे हैं तो उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी उन्हीं की बनती है। उसका मिलन सुखकर हो और रास्तों में कौं संकट भी न आए, इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं। गोपनीयता भी बनाए रखनी है। आखिर कवि हैं, प्रेम के बिना तो रह नहीं सकते। सहृदयता ही तो कवि होने की अनिवार्यता है। और इन सबसे ऊपर यदि कवि में मानवता नहीं होगी तो वह कवि किस बात का?

नैतिकतावादी कितनी भी निंदा क्यों न कर लें, जब सम्पन्नता और समृद्धि आती है, बुद्धिजीविता बढ़ती है और राज्य में अमन-चैन होता है तो विलासिता, कामुकता और रतिप्रियता में वृद्धि होती है। कालिदास की उज्जयिनी में नवरत्न थे, अट्टालिकाएँ थीं, उत्पाद थे और शांति थी। पण था इसलिए पणस्त्रियाँ थीं। वाह रे कालिदास, क्या नामकरण किया है 'पणस्त्री'। वेष्ठा कहते ही लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। पणस्त्रियाँ मदनोत्सव में निपुण थीं तो कालिदास उनके नखषिख वर्णन में। रतिक्रीड़ा में लगे नखक्षत को शांत करने के लिए वे मेघ से निवेदन करते हैं कि वह हल्की वर्षा भी कर दिया करे जिससे उनके क्षतस्थलों को सुख मिले। जब नगर में वर्षा होगी तो निकटस्थ जंगल में भी वर्षा होगी ही। जंगल में अभिसार भी हो रहा है। थोड़ा दूर

की ही सोचते थे कालिदास।

बगलामुखी मंदिर परिसर के आसपास देखते-देखते काफी समय निकल गया। एक मैं ही था जिसे उस निर्जन में कुछ अधिक समय लग गया। सभी गाड़ी में वापस जा चुके थे। मुझे भी जाना था। कालिदास को प्रणाम किया और हम चल पड़े अंकपात क्षेत्र।

अंकपात अर्थात् गुरु सांदीपनि का आश्रम। वही सांदीपनि गुरु जिनके पौराणिक आश्रम में कृष्ण-बलराम और सुदामा ने शिक्षा ग्रहण की थी। यहाँ भी उज्जैन यात्रा में लगभग हर बार आया हूँ। षहर से दूर प्राकृतिक अंचल में स्थित यह आश्रम जो कभी गुरुकुल रहा होगा, आज भी एक रहस्य और शांति का वातावरण जीता है। यहाँ से बाहर जंगल ही जंगल है। मुझे जैसे लगता है कि इन्हीं जंगलों में कहीं श्रीकृष्ण सुदामा के साथ लकड़ियाँ चुनने गए रहे होंगे जब जोर की बारिश हुई होगी और सुदामा ने अपने लालची स्वभाव के चलते गुरुमाता के दिए भुने चने अकेले खा लिए होंगे। षायद इसी का दंड उन्हें निर्धनता के रूप में मिला होगा। मैं इस दंड की सत्यता पर कौं बहस नहीं करना चाहता, किंतु सुदामा की कथा मित्रता के लिए आदर्ष का पर्याय मानी जाती है। 'आगे चना गुरुमात दए तब लीन्हें चाभि हमें नहीं दीने' का प्रसंग हमारी पीढ़ी में सबको पता है। बाद में पाठ्यक्रम निर्धारकों ने अगली पीढ़ी को इस मित्रता के आनंद और आदर्ष से वंचित कर दिया। यह कथा मेरे स्नातक बेटे को नहीं पता थी, उसे मैंने वहीं सुनाया और उसके लिए यह बहुत रोचक-रोमांचक थी।

मुझे नहीं पता कि कृष्ण-सुदामा की यह कथा आधिकारिक रूप से किस ग्रंथ-पुराण में लिखी है। मुझे बस इतना पता है कि इस कथा को नरोत्तमदास ने लोकप्रिय बनाया तो बदले में कथा ने नरोत्तमदास को एक जनकवि-लोककवि बना दिया। 'सुदामा चरित' में जिस प्रकार का काव्य कौषल, जो छंद विधान और अलंकार उन्हांने दिया, वह अद्भुत है। कितने स्वाभिमानी थे सुदामा कि द्वारिकाधीष जैसे मित्र के होते हुए भी उन्हांने दाने-दाने को मोहताज जीवन स्वीकार कर लिया था। गए भी तो पत्नी के टेलने पर और लौट भी आए बिना कुछ माँगे। आज तो लोगबाग मंत्री-विधायक से परिचय होने के दम पर देख लेने की धमकियाँ दिया करते हैं।

आश्रम के अंदर सर्वेष्वर महादेव मंदिर, गोमती कुंड और वल्लभाचार्य की बैठक का दर्शन होता है। एक तरफ एक गोलाकार हॉल है जिसमें उन चौदह विओं का वर्णन है जो श्रीकृष्ण ने गुरु से प्राप्त की थीं। आज की शिक्षा व्यवस्था आधुनिक होने का कितना भी दंभ भर ले, वह एक पूर्ण मानव नहीं बना पाती। तर्कशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, मीमांसा, गणित, ज्योतिष से लेकर आयुर्वेद तक की शिक्षा प्राप्त करके शिष्य एक पूर्ण मनुष्य बनकर निकलता था। षायद यही कारण था कि श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध का संचालन ही नहीं किया अपितु अभिमन्यु पुत्र परीक्षित को नवजीवन प्रदान किया तथा सुदामा से साख्य भाव भी निभाया। श्रीकृष्ण जैसा राजकुमार भी सुदामा जैसे निर्धन के साथ बराबरी का जीवन जीता हुआ शिक्षा प्राप्त करता है। जब शिक्षा ही बराबर नहीं होगी तो समाज में बराबरी कहाँ से आएगी ?

भर्तृहरि गुफा की चर्चा न की जाए तो यह उद्भट योगी, कवि, नीतिज्ञ और विद्वान भर्तृहरि के साथ अन्याय होगा। शिप्रातट पर स्थिति भर्तृहरि गुफा एक मानव निर्मित संरचना है जिसके गर्भ में एकांत, घुटन और गर्मी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। एक सामान्य यात्री दो मिनट से अधिक रुक पाने की क्षमता नहीं रखता किंतु हैरानी की बात है कि नाथपंथ के योगी आज भी इसमें धूनी रमाये मिल जाते हैं। भर्तृहरि ने भयंकर तपस्या की थी। बड़ा अजीब सा लगता है पिंगला और अमरफल का प्रसंग। एक पल को वैराग्य का बोध तो यहाँ हो ही जाता है। फिर याद आती है भर्तृहरि की षतकत्रयी जिसमें नीतिषतक और श्रृंगार षतक का काँ जवाब नहीं। उज्जयिनी के इतिहास को समृद्ध करने में भर्तृहरि का योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

षाम को ट्रेन की वापसी थी। यात्रा के विधान का सम्मान करते हुए वापस आना ही था। इस बार कालिदास दूर तक आए, देर तक आए। कभी फिर जाऊँगा तो तलापूँगा कि वह कौन थी जिसे देखकर उनकी लेखनी से 'अनाघ्रातपुष्पं किसलयमलूनं' और 'सरिसजमनुविद्धं षैवलेनापि रम्यं' वाले प्लोक निकले थे। यह सौंदर्य कालिदास जैसे कवि की कोरी कल्पना तो नहीं हो सकती !



## परिचय

जन्म: २७ जून,

१९६४

(आजमगढ़,

उ०प्र०)

शिक्षा: एम.ए. (अंगरेजी, संस्कृत), बी.एड.

सृजन: युधिष्ठिर का कुत्ता (व्यंग्य संग्रह),

दर्शन, दृष्टि और पाँव (यात्रा संस्मरण)

संवाद-यात्रा (प्रो० रामदरश मिश्र के साक्षात्कार),

नेशनल बुक ट्रस्ट की पुस्तकों का अंगरेजी - हिंदी अनुवाद ।

हंस, पुनर्नवा, साहित्य अमृत, जागरण सखी, दैनिक जागरण, व्यंग्य यात्रा, आजकल, जनसन्देश टाइम्स, हरिगंधा सहित अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक एवं व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, कहानियाँ, लेख, यात्रा वृत्तांत, समीक्षाएं और कविताएं प्रकाशित। अधिकांशतः व्यंग्य विधा में लेखन।

संप्रति: अध्यापन एवं साहित्यिक त्रैमासिकी 'समकालीन अभिव्यक्ति' में सह संपादक।

संपर्क: बी- ५३२, (द्वितीय तल)

वसंतकुंज एन्क्लेव (बी ब्लॉक)

नई दिल्ली- ११००७०

मो०- ०९६५४०३०७०१

Email: hsrarhi@gmail.com



पेरुनदेवी

## कोरोना पर पेरुन देवी की कविताएँ

अनुवाद: राजेश कुमार झा

मूल तमिल से अंग्रेजी में अनुवाद एन कल्याण रमण  
हिंदी अनुवाद. राजेश कुमार झा

पेरुन देवी तमिल की जानी पहचानी कवियत्रि हैं। अब तक उनके आठ काव्य संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। वे न्यूयॉर्क में एसोशिएट प्रोफेसर हैं और अपना समय न्यूयॉर्क और चेन्नई में बिताती हैं। उनकी इन कविताओं का मूल तमिल से अंग्रेजी में अनुवाद एन कल्याण रमण ने किया जो आधुनिक तमिल कविताओं और कहानियों के अनुवादक हैं

१. गहरे कुंड के किनारे  
मेरे गले के पिछले हिस्से में  
शब्द उठ खड़े हुए हैं  
'मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।'  
मैं निगल जाती हूँ उन्हें पूरा का पूरा  
दिन भर छाया हुआ है धुआं  
दुनिया में हर तरफ छाया है धुआं  
कुछ भी साफ साफ नहीं दिखाई देता  
कांप रहे हैं सभी हाथ  
गहरे कुंड के किनारे खड़े रहने की तरह है  
समय शून्य समय में रहना  
यहां अंधेरे में कुछ खास अलग नहीं  
और अपनी सुरक्षा के लिए चिल्लाती हूँ जब  
इस गहरे कुंड के भीतर  
मेरी आवाज नहीं होगी मेरी अपनी  
जिस से बचना चाहती हूँ मैं  
वही मेरी रक्षा कर रहा है और  
सुरक्षा मांग रहा है वह  
जो मैं नहीं हूँ।

२. सामान्य  
सचमुच अब मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं  
बस थोड़ी सी नींद काफी होगी  
अगर हो सके तो नींद के बीच छोटा सा सपना  
सपने में दोस्तों के साथ मैं  
जाती हूँ किसी रेस्त्रां  
वहीं जहां हमेशा जाते थे हम लोग  
हमेशा की तरह थोड़ी सी पीते हैं हम  
हमेशा की तरह थोड़ा सा हंसते हैं हम  
हमेशा की तरह दोपहर रात को आते हैं बाहर  
उबर टैक्सिका करते हुए इंतजार  
प्यार से दूसरे दोस्त की पेट में हौले से लगाता है  
घूंसा  
खोंखों कर वह हंसने लगता है  
फिर हम अलग हो जाते हैं और चल देते हैं  
गौरकीजिए  
मेरा प्रेमी इस सपने में नहीं आया  
जो दोस्त आए सपने में  
वो भी मेरे करीबी नहीं थे

लेकिन इस सपने से भी  
अभी काम चल जाएगा  
बाहर निकलने के लिए  
छोटी सी रस्सी  
इस कुंड की अतल गहराइयों से  
दूसरी तरफ जाने के लिए  
और वहां से  
रोशनी की किरण देखने  
भले ही सपना ही क्यों न हो  
दूसरा कोई रास्ता नहीं।

३. आसमान का कोई कोना अब भी नीला है

उस आसमान के नीचे  
दो जवान औरतें तेजी से साथ साथ चली  
जा रही हैं  
हाथ में टोकरी लिए  
एक दूसरे से टकराती चलती, गप्पें मारती  
दुकान में घुसती हैं  
वे ब्रेड का एक पैकेट खरीदती हैं  
जिनसे आ रही है दिन की खुशबू  
वे दूध का बोतल खरीदती हैं  
सब्जियां खरीदती हैं  
एक दूसरे से टकराती चलती, गप्पें मारती  
उस आसमान से  
वे वापस आ रही हैं  
सूरज बिना पलक झपकाए  
दोनों औरतों को घूर रहा है  
हटने का कोई इरादा नहीं है उसका  
वहीं से फौसला करता है  
कि आज वह किसी तरह  
दूसरे आसमानों से गुजरते हुए  
बंद रखेगा अपनी आंखें



कविता मेघ



केशव शरण

कविताएँ

केशव शरण

निर्झर की तरह कविता

कितनी जगह  
कितने मौकों पर  
मुझे मौन रहना पड़ता है  
चट्टान-सा इसका बोझ  
सीने पर सहना पड़ता है  
तब इसे तोड़ती- धकेलती  
एक निर्झर की तरह  
आती है कविता

नम्बर आने पर

चीरा  
एकदम सही लगेगा  
आराम आयेगा तुरंत  
लेकिन इंतज़ार करना होगा थोड़ा  
माना कि बेहद  
दुख रहा है फोड़ा

क्यों रोता है  
यहां इलाज़  
नम्बर आने पर होता ह



चन्द्रकान्ता

कविताएँ -- १

-----

बारिश

(कैचपोल कॉटेज के प्रांगण में)

-----

भीग रही है धरती  
 उदास पानियों में सीज रहे हैं पेड़  
 माथे धरे श्वेत ताज लिए!  
 भीग रहा है अन्तरमन  
 आवारगी में ढूँढता  
 पागल भीड़ में अंगुली छुड़ा छूटा  
 मेरा रचा अपना ब्रह्मलोक!  
 आजू - बाजू ठिंगने गाछट कटका  
 लगाए  
 देख रहे हैं रुद्राक्ष  
 शिव के आँसू ?  
 कैचपोल कॉटेज खामोश है  
 क्या याद कर रही है उस विदेसिया  
 को  
 भेंट दी जिसने उग्र  
 हमारी भूमि को ?  
 घर से दूर सात समंदर पार!  
 जहाँ गया  
 वहीं घर बना  
 उसकी अपनी छत- छाजन।  
 क्या मिला था उसे भी कोई शाप  
 कि छूट जाए तेरा लोक ?  
 बिखर जाओ कहा था संत ने उन्हें  
 पलक बिछाए जिनने रास्तों में

और दुत्कारने वालों को दिया  
 अभयदान  
 बस जाओ !  
 शाप मिला हमें बिखरने का  
 शाप या वरदान ?  
 संताप कैसा?  
 बिखरेंगे बीज बनकर  
 जंगलों/ बियाबानों/प्यास से हांपती  
 रेतियों में  
 उग आएँगे गाछों  
 वनस्पतियों की सौगातों में  
 वक्त की गवाही के साथ !

कविता---२

-----

सोचा था हमारे पुरखों ने  
 जियेंगे आगामी पीढ़ियों में !  
 एकडोर जोड़ेगी आकाश और धरती  
 बहुतपुरानी!  
 इतिहास के पन्नों में खुद को ढूँढते  
 भविष्य की यात्रा करेंगे  
 नवोन्मेषी!  
 सुनामी में भी दुबके रहेंगे  
 किसी पर्वत, शिला की ओट!  
 हमारे होने का पर्व मनाएगी  
 सदियों पुरानी धरती !  
 बहुत भरोसे थे, बेतर्क हठीले  
 कि रहेंगे पुरखे बनकर  
 श्राद्धों में ,यादों में ,  
 तर्पणमें , अर्पणमें

संहिताओं -परम्पराओंमें !  
 पिताओंने सोचा थोड़े कम भरोसे से  
 वक्त की आँधियों में थरथराते  
 दीयों की लौ में,हथेलियों की ओट दिए!  
 हम तक आते  
 वक्त ने कलाबाज़ी खायी  
 इतिहास समा गया कंप्यूटरों में  
 कट - छँटकर अंकों में  
 भला जड़ें कहाँ जाती?  
 गोकि धंसी हैं आज भी कहीं  
 किसी पहाड़ी चट्टान के नीचे  
 शायद खोज पाते हम  
 गर भूल न जाते उन्हें फ़ीड करना  
 यन्त्रोंमें !  
 बेचारे वेब - विकिपीडिया क्या करेंगे?  
 अब हम जहाँ भी जाएँगे  
 बे जड ही जाएँगे !  
 अच्छा है, न श्राद्धनतर्पण  
 न बदरंग इतिहास के पीलेपन्ने!  
 नई हवा  
 नए पानी में जिएँगे  
 आज में भरपूर  
 कहीं शेर कहीं बकरी बनकर!  
 न कल होगा न परसों  
 न लिजलिजे उलाहने  
 अहम्ब्रह्मास्मि!  
 हम ब्रह्म बनेंगे  
 मुक्त! निर्द्वन्द्व!  
 पर बहुत - बहुत अकेले !





डॉ. मोहसिन खान

## अभिव्यक्ति की आज़ादी का दायित्व और कीमत

डॉ. मोहसिन खान

जब कभी मनुष्य ने इस धरती पर अपना अस्तित्व पाया होगा, तब से लेकर वर्तमान तक की जीवन-यात्रा में उसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए आदिकाल से नए-नए साधनों, माध्यमों की खोज की, जिनमें सबसे उपयोगी और कारगर माध्यम ध्वन्यात्मक (वाक्) माध्यम ही नज़र आता है। इसका कारण यह है कि इसकी अभिव्यक्ति का सीधा संप्रेषण, ग्रहण और प्रभाव अन्य माध्यमों से कहीं सहज, बेहतर और शीघ्रता से युक्त है। मनुष्य के जीवन-संघर्ष के अनंतर उसके अवकाश के कालों में फिर चित्र, लिपि और अन्य अभिव्यक्ति के साधनों ने अपना स्थान पाते हुए अभिव्यक्ति के नए द्वार खोले। अभिव्यक्ति मनुष्य के हर समय में जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकता रही है, लेकिन वही आवश्यकता आज चुनौती बनकर उसी मनुष्य के समक्ष खड़ी है। अभिव्यक्ति ने जहां संसार के आपसी व्यवहार को सरलता, सुगमता, वैचारिक-भावनात्मक आधार प्रदान किए, वहीं आज उन आधारों पर दरारें दिखाई दे रही हैं। ऐसी अवस्था में हमारे समय में पुनः इस बात पर सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि क्या अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता आज हमारे लिए एक खतरा या चुनौती बन गई है? इसके तहत आज फिर से इस बात के पुनर्मूल्यांकन होने की आवश्यकता बन गई है कि अभिव्यक्ति किस तरह की हो, अभिव्यक्ति की इतिवृत्तात्मकता किस सीमा तक हो, अभिव्यक्ति किसके लिए हो, अभिव्यक्ति कब और कहाँ हो, अभिव्यक्ति कितनी सार्थक हो, अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध हो या न हो, अभिव्यक्ति आज स्वतंत्र है या स्वच्छंद, अभिव्यक्ति की दिशा क्या हो, अभिव्यक्ति का संतुलन क्या हो, अभिव्यक्ति में

दायित्व-बोध है या नहीं, अभिव्यक्ति की कीमत क्या है, ऐसे बहुत से प्रश्न वर्तमान में अभिव्यक्ति के सही मूल्यांकन की मांग कर रहे हैं। अभिव्यक्ति हो ये तो बहुत ज़रूरी है, लेकिन उसके साथ दायित्व का बोध हो ये उससे भी अधिक ज़रूरी है। आज बोलने की आज़ादी ने अधिकार की शकल में एक हथियार का रूप धरण कर लिया है, यदि ये हथियार बन गया है, तो अवश्य कुछ गलत भी इस्तेमाल किया जा सकता है। गलत इस्तेमाल न हो इसका दायित्व किसका है, सीधी सी बात है, जो अपने अधिकारों का इस्तेमाल कर रहा है उसी का दायित्व है कि वह क्या अभिव्यक्त कर रहा है और कैसे अभिव्यक्त कर रहा है। अगर सत्य अभिव्यक्त कर रहा है, तो अवश्य निर्णय और परिणाम भी उसी के हक में होंगे और यदि वह अनुचित, अहितकर और विरोध के लिए विरोध की अभिव्यक्ति दे रहा है, आरोपों-प्रत्यारोपों के तहत झूठी अभिव्यक्ति दे रहा है, तो उसकी कीमत भी उसे ही चुकानी होगी। साथ ही इस बात पर भी गौर करना होगा कि सत्य की अभिव्यक्ति के लिए कई प्रतिभाओं, वैज्ञानिकों, विचारकों, लेखकों, कलाकारों को अपनी जान तक की कीमत लगानी पड़ी। वास्तव में ऐसी कीमत बहुत बड़ी और भारी क्षति से युक्त होती है, जिसकी भरपाई किसी भी राष्ट्र के लिए नामुमकिन है।

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अर्थ आज बहुत स्पष्ट है कि किसी सूचना, भाव या विचार को बोलकर, लिखकर या किसी भी कलात्मक, यांत्रिक, माध्यमों से बिना किसी व्यवधान के अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की

स्वतंत्रता कहलाती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अनर्गल जो भी अभिव्यक्त किया जाए वह सब अभिव्यक्ति ही है। यदि वह समाज-सापेक्ष या समाज-हित से न जुड़ा हो तो फिर वह अभिव्यक्ति नहीं बल्कि वह एक प्रमाद है। उसका दायरा कुछ और है, उसकी दिशा कुछ और है। इसलिए भारतीय संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ उसकी सीमा अथवा दायरा भी तय करता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ४९९ और ५०० में मान हानि को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है। वैसे सबसे पहले मानवीय सामज के समक्ष प्रश्न आता है कि अभिव्यक्ति की आज़ादी सबको समान रूप से मिलना चाहिए और इसकी उपलब्धता भारतीय संविधान करता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद १९(१)(क) के तहत सभी को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी गयी है। राजनीतिक दृष्टि से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अब व्यक्ति का अधिकार है, लेकिन समय और परिस्थितियों के अनुरूप इसपर भी प्रतिबंधों का प्रावधान संविधान में वर्णित है। इसीलिए कई बार अभिव्यक्ति पर लगाम भी कसी गई और अधिकारों का हनन भी किया गया; उसके पीछे देश की वर्तमान दशा का, विशेष परिस्थितियों, संकट का होना लाज़मी था। अभिव्यक्ति पर प्रतिबन्ध से अभिव्यक्ति और तीव्र, सूक्ष्म, संवेदनशील और धारदार हो जाती है। विश्व में जब भी अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लगाए गए तब अभिव्यक्ति का स्वर और भी दमदार एवं संप्रेषणीय रहा। अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध के मायने मानवीय समाज को एक बूचड़खाने में घेर देने जैसा है, जिसमें बेतहाशा भीड़ हो और चारों ओर अनसुलझी, असपष्ट, पीड़ित आवाज़ें हों और उसे सुननेवाला वहाँ कोई भी न हो।

अभिव्यक्ति की आज़ादी ने वर्तमान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ और अभिव्यक्ति का दायित्व का बोध धीरे-धीरे खो दिया है। अभिव्यक्ति के लिए वास्तव में व्यक्ति को बहुत जिम्मेदार और गंभीर होना होगा, कुछ भी अभिव्यक्त कर देना में अभिव्यक्ति नहीं बल्कि भड़ास है। भड़ास कभी भी सही दिशा को तय नहीं करती और न ही उसके परिणाम सुखद होते हैं, इसलिए यह बात बहुत महत्वपूर्ण जान पड़ती है, कि जो भी अभिव्यक्त किया जा रहा है, वह किस तरह की मांग, समस्या और आधार को दर्शाता है। क्या उसकी बात समाज-हित की है, क्या उसकी अभिव्यक्ति समाज सापेक्ष है। यदि समाज सापेक्ष है और करगार है, तो अवश्य वह अभिव्यक्ति की आज़ादी का सदुपयोग कर रहा है

और ठीक इसके विपरीत है, तो वह दुरुपयोग द्वारा अभिव्यक्ति की आज़ादी को एक धारदार हथियार के रूप में प्रयोग में ला रहा है। आखिर व्यक्ति समाज में रहा रहा है, तो उसका दायित्व स्व से अधिक समाज सापेक्ष होना ज़रूरी हो जाता है। यदि वह अभिव्यक्ति के नाम पर अनुचितता, हिंसा, वैमनस्यता, असहिष्णुता, असमानता, झूठे अतार्किक बयान, झूठे तथ्य को सामने ला रहा है; तो ये कोई भी कदापि स्वीकार न कर पाएगा कि उसकी अभिव्यक्ति सार्थक और सही है और उसे अधिक बोलने दिया जाए। अक्सर समाज में देखा भी गया है कि समाज ने अभिव्यक्ति की सनक में अच्छे लेखकों, चित्रकारों, कलाकारों, वक्ताओं को भी आलोचना के घेरे में लिया है और यहाँ तक कि उन्हें देश निकाला भी दिया है। कभी-कभी कलाकारों में अभिव्यक्ति की सनक भी पैदा होती है और वह समाज की सामाजिक, धार्मिक-सांप्रदायिक आस्थाओं के विरुद्ध अपनी अभिव्यक्ति देते हैं, नतीजा यह होता है कि उनपर दोहरे दबाव से समाज और राष्ट्र का कड़ा नियंत्रण उपस्थित हो जाता है। इसके दायरे में चित्रकार मकबूल फ़िदा हुसैन, लेखिका तसलीमा नसरीन और लेखक सलमान रुशदी आ चुके हैं। वास्तव में समाज के एक बहुत बड़े समुदाय ने इन्हें नकार दिया है भले ही ये प्रगतिशील होने का दावा अपनी वैचारिक, मानसिक और भावनिक अवस्था पर करते रहें। मकबूल फ़िदा हुसैन ने अपनी अभिव्यक्ति की क्रीमत अपनी सरज़मीं से दूर रहकर चुकाई उन्होंने अपनी अंतिम श्वास विदेश में ही ली।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सबकी बराबर है, लेकिन प्रतिबन्ध कई दशाओं में अपरिहार्य हो जाते हैं। बोलना आज़ादी का प्रतीक बन चुका है चुप रहना गुलामी, अत्याचार सहन करने का प्रतीक बन चुका है, लेकिन कब और कितना बोला जाए ये बहुत महत्व की बात है। आज़ादी हो लेकिन बहुत आज़ादी भी खतरे का रूप धरण कर लेती है, क्योंकि कई मुद्दों पर संवेदनात्मक अभिव्यक्ति समाज में कई खतरे भी उत्पन्न कर देती है। ऐसी स्थिति में अभिव्यक्तिकी आज़ादी पर नियंत्रण होना भी ज़रूरी प्रतीत होता है। वह इसलिए कि राष्ट्र प्रमुख है, उसकी शांति, अखंडता, एकता, समन्वय, संप्रभुता को जहां खतरा होगा; तो नियंत्रण की मांग वास्तव में प्रबल होनी चाहिए। एक जिम्मेदार नागरिक होने के नाते सबको इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिए कि हमारी अभिव्यक्ति किसी खतरे को तो जन्म नहीं दे रही है, कोई हमारी अभिव्यक्ति से आहत तो नहीं हो रहा है, किसी की



अस्थाओं को चोट तो नहीं पहुँच रही है। जब इस अवस्था का बोध भीतर जागेगा तब ही व्यक्ति को अभिव्यक्ति की आज़ादी के सही अर्थों का पता चल सकेगा। लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वह नागरिकों को किस प्रकार से उन्नति, विकास का अवसर देते हुए अपनी बात प्रस्तुत करने का भी अवसर देती है। इस दृष्टि से अभिव्यक्ति के साथ नैसर्गिक अभिव्यक्ति को जोड़कर देखना आवश्यक हो जाता है। या नैसर्गिक अभिव्यक्ति राजनीतिक, सामाजिक दायित्व के बोध के साथ उभरती है। सही विचार जब सही दिशा में अभिव्यक्त किए जाएंगे तो उसपर सबका ध्यान जाएगा, इसलिए ज़रूरी है कि उसकी दिशा भी तय हो। नैसर्गिक अभिव्यक्ति इसी के संदर्भ में देखी जा सकती है, वह वास्तव में संतुलन से युक्त और कारगर सिद्ध होगी। अभिव्यक्ति पर भी कुछ नियमों का अंकुश होना ज़रूरी है, यदि नियम और क़ानून न होंगे तो वह अनैतिक होते हुए मानवीय समाज का भविष्य खतरे में ला सकती है। वर्तमान में अभी कुछ माह पूर्व जे.एन.यु के प्रकरण में कन्हैया पर अभिव्यक्ति के दायरे तोड़ने के आरोप लगे, अभिव्यक्ति के विषय में सरकार संवेदनशील नज़र आई, न्यायपालिका ने भी अभिव्यक्ति की आज़ादी की सीमारेखा क्या है; उसकी चेतावनी दी। इस बात से स्पष्ट होता है कि अभिव्यक्ति के नाम पर कहीं-न-कहीं राष्ट्र को संवेदनशील होकर बोलने की आज़ादी को अपने नियंत्रण में रखना होगा, लेकिन इतने नियंत्रण में भी न रखा जाए कि बोलने की आज़ादी ही समाप्त कर दी जाए। इसलिए बहुत ज़रूरी हो जाता है कि बोलनेवाले के लिए और सुननेवाले के लिए संतुलन हो। ये संतुलन न तो सरकार तय कर पाएगी, न कोई एजेंसी, न कोई संस्था। यह संतुलन तो खुद नागरिकों को पैदा करना होगा, वह भी एक दायित्व बोध के साथ। देश का नेतृत्व कर रहे शासकों में भी अक्सर ऐसे संतुलन बिगाड़ उत्पन्न कर रही हैं, उनकी अभिव्यक्ति में विकारों की दशाओं होना साफ नज़र आता है। कभी संप्रदाय, धर्म और संस्कृति पुनरुत्थान के नाम पर अनर्गल बयान दिये जाते हैं, आरोपों-प्रत्यारोपों की बारिश की जाती है, जिससे राष्ट्र की धार्मिक-सांप्रदायिक अखंडता के दायरे टूटते हैं और परिणाम स्वरूप हिंसा अपना सिर उठती है। जब राष्ट्र, धर्म-संप्रदाय के नेतृत्व कर रहे लोगों को अपनी अभिव्यक्ति का सही बोध न होगा; तो फिर ऐसी दशा में देश के किन व्यक्तियों/नागरिकों इस संदर्भ में आशा रखी जा सकेगी। अभिव्यक्ति की सावतंत्रता का यह

अर्थ कभी नहीं लिया जाना चाहिए कि हम अपनी अभिव्यक्ति से विखंडन पैदा करके अपने जातिगत, धार्मिक, संगठन के हितों को साध लें। सदा इस बात का भीतर बोध होना चाहिए कि राष्ट्र की अखंडता, संप्रभुता और उसके कानून सर्वोपरि हैं। भारत में तो अक्सर देखने में आता है कि नेतृत्वशील व्यक्तित्व जो भी तरह-तरह ज़हर सार्वजनिक मंचों से उगल रहा है, उसके समर्थन में लाखों अंध-भक्त जमा होकर दिशाहीन आंदोलनों और मांगों का जमावड़ा लिए सड़कों पर उतरकर हिंसा कर रहे हैं। इसका परिणाम देश की आमजनता को भुगतना पड़ रहा है। गैरजिम्मेदार अभिव्यक्ति ने सदैव समाज, राष्ट्र के लिए खतरों को उत्पन्न किया है, यदि इस प्रकार की बोलने की आज़ादी पर नियंत्रण न हुआ, तो अवश्य भविष्य में एक बड़ा खतरा देश और समाज में उपस्थित हो जाएगा। देश और समाज में एक तरफ वे व्यक्तित्व भी हैं, जो अंधविश्वासों, असत्यता, अन्याय से संघर्ष करते हुए समता, न्याय और सत्यता की अभिव्यक्ति तथा स्थापना में खतरे उठाकर अपनी जान की बाज़ी तक लगा देते हैं। ऐसे व्यक्तित्व नरेंद्र दाभोलकर को यहाँ याद किया जा सकता है, जो अपनी अभिव्यक्ति पर अपनी जान २० अगस्त २०१३ को गवां बैठे। उन्होंने सामाजिक उत्थान के लिए अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाए। धार्मिक, सामाजिक अंधविश्वासों को तोड़ने के संकल्प और बोलने की आज़ादी का प्रारम्भ से वैश्विक मानवीय समाज में टकराव और प्रतिबंधनों का कड़े रूप में होना देखा जा सकता है, इस अभिव्यक्ति के खतरों ने विश्व के कई विचारकों, वैज्ञानिकों, दर्शनिकों, रचनाकारों के प्राण लिए हैं। ऐसी अवस्था में खतरों को अभिव्यक्ति के उठाने और उसके नियंत्रण को तोड़ना प्रशंसनीय और सार्थक है, क्योंकि वहाँ बोलने की आज़ादी के साथ दायित्व का बोध, समाज, राष्ट्रोत्थान भी है साथ ही सत्य की अभिव्यक्ति भी मौजूद है। अभिव्यक्ति की आज़ादी पर सबसे बड़ा हमला फ्रांस में व्यंग्य और हास्य की अग्रणी पत्रिका 'शाली एब्दो' पर हुआ। 'शाली एब्दो' के पत्रकारों की हत्या की भारत में हर तरफ़ निंदा की गई। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर जब भी कहीं कुठाराघात होता है, उसके पीछे सदैव बौद्धिक वर्ग पिसता हुआ दिखाई देता है। इसी कारण राष्ट्र बेहतर विचारकों को खो देता है और अभिव्यक्ति को संरक्षित नहीं कर पाता है।

बोलने की आज़ादी और दायित्व के संबंध में वर्तमान में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा सोशल मीडिया की भी इस

संदर्भ में पड़ताल होनी चाहिए कि क्या अभिव्यक्ति के इस नए माध्यम पर कोई नियंत्रण है क्या? क्या इस नव माध्यम को भी दायित्व से अलग कर खतरों को बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाएगा? इसी खतरे को देखते हुए साइबर लॉ देश के कानून में जोड़ा गया। इसके तहत सन २००० के सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम में धारा ६६-ए को जोड़ा गया है। फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सप, ऑडियो, वीडियो के संचार माध्यमों इत्यादि पर आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति दे रहा है, लेकिन इस अभिव्यक्ति के साथ दायित्व का बोध होना बेहद ज़रूरी प्रतीत हो जाता है। वर्तमान में वीडियो के वाइरल होने और उनके सच भी सामने आए हैं। यदि सोशल मीडिया में इस प्रकार की अराजकताएँ आ जाएंगी तो समाज और राष्ट्र को खतरा होना ही है, इसलिए कानून बने इससे पहले हर नागरिक का दायित्व बनना है कि न तो इस प्रकार की अभिव्यक्ति को वह महत्व दें और न ही उससे जुड़े रहें, क्योंकि विवेकपूर्ण अभिव्यक्ति ही वास्तविक अभिव्यक्ति के अंतर्गत देखी जा सकती है। सोशल मीडिया पर प्रतिबंध के लिए पुलिस को ये अधिकार २०१५ में दिये जाने तय किए गए थे, कि यदि उसे किसी पर शक होता है तो वह सीधे कार्यवाही करके उसे गिरफ्तार कर पूछताछ करते हुए दंडात्मक कार्यवाही कर सकती है, लेकिन एक याचिका के तहत सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसी व्यवस्था को खारिज कर दिया। यह ठीक भी हुआ यदि अभिव्यक्ति की आज़ादी के साथ इस प्रकार का अंकुश लग जाता तो अवश्य ही अभिव्यक्ति को बहुत बड़ा संकट का सामना करना पड़ता और इस कानून के दुरुपयोग की आशंकाएँ भी वृहत् हो जातीं। सर्वोच्च न्यायालयका अभिमत है कि स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के बीच संतुलन कायम करना सरकार का कर्तव्य है। सरकारें स्वयं इसकी व्यवस्था करें कि यह काम कैसे किया जाए, लेकिन कानून का भय दिखाकर बोलने की आजादी पर प्रतिबंध लगाना संविधान के अनुच्छेद १९ के तहत प्रदत्त वैचारिक अभिव्यक्ति की आजादी का हनन है। लेकिन यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि सारी ज़िम्मेदारी सरकार ही वह करेगी, देश के नागरिक क्यों न ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करेंगे। बोलने की आजादी की जितनी चुनौती सरकार के लिए है उतनी चुनौती नागरिकों के लिए भी है। सोशल मीडिया को सरकार किस हद तक काबू में लाये यह निश्चित करना बहुत ही कठिन है, इसलिये साइबर एक चुनौती बनकर आज सामने खड़ा है। साइबर की स्वच्छंदता ने इस

क्षेत्र में बहुत कुछ असंतुलन उत्पन्न कर दिया है, सोशल मीडिया के उपयोगकर्ताओं का स्वयं का दायित्व बनता है, कि वह अपने कर्तव्य को समझे, औचित्यकेबोध को बनाए रखें, अपनी बात विवेक सम्मत रखें। अपनी अभिव्यक्ति को नैसर्गिक रखते हुए मर्यादा, और बंधनों का पालन भी करें। आखिर स्वतन्त्रता है, तो बंधनों का होना भी बहुत ज़रूरी है, यदि अभिव्यक्ति पर थोड़ा भी अंकुश न होगा तो उसकी सार्थकता समाप्त हो जाएगी। इसलिए कानूनों के पालन की बात बहुत वाजिब और ज़रूरी दिखाई देती है। बोलने की आजादी का यह मज़ा तभी सार्थक कहा जा सकता है जबकि सोशल मीडिया या साइबर जगत, सार्वजनिक स्थल, मंच इत्यादि माध्यमों में व्यक्ति अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए संवेदनशीलता को समझें और अभिव्यक्ति प्रदान करें। बोलने की आजादी कभी भी विध्वंसवादी न होकर समन्वयवादी हो तो बेहतर है, राष्ट्र के नागरिकों के भीतर बोध रहे कि वह क्या अभिव्यक्त कर रहे हैं, किस प्रकार अभिव्यक्त कर रहे हैं। यदि अभिव्यक्ति का दायरा सही है, नैसर्गिक है, संतुलित है, सार्थक है तो अवश्य ही बोलने की आजादी का सही इस्तेमाल हो रहा है।



### परिचय

उपन्यास- 'त्रितय' यथार्थ प्रकाशन, दिल्ली, २०१५  
गज़ल संग्रह- 'सैलाब' परिदृश्य प्रकाशन, मुंबई २०१५,  
काव्य संग्रह- 'रंगतंत्र' लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ २०१८  
कहानी संग्रह - 'कबरखुदा'

कैप्टन डॉ. मोहसिन खान  
रा. कै. को. अधिकारी,  
हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक  
जे.एस. एम. महाविद्यालय,  
अलीबाग, ज़िला-रायगढ़ (महाराष्ट्र)  
ई-मेल- [Khanhind01@gmail.com](mailto:Khanhind01@gmail.com)  
मोबाइल-०९८६०६५७९७०



डॉ लालित्य ललित

## पांडेय जी और उचटते दिन

### डॉ लालित्य ललित

ये वे दिन होते हैं जब आपका मन किसी काम में नहीं लगता। लगता है काम आपके पीछे दौड़ रहा है और आप उससे आगे भाग रहे हैं। वह कह रहा है कि सुनिए और एक आप है कि थमने का नाम ही लेना नहीं चाहते!

जरा सोचिए!

सड़क पार करनी हो तो पहले बाएं देखें और फिर दाएं देखें। तब जा कर करिए सड़क पार। समझे न जितने सतर्क रहेंगे, उतना ही फायदा होगा। वरना जैसे भी प्रार्थना सभा का समय ३ से ५ का होता है और इतने व्यवहार कुशल है कि पौने ५ के करीब इसलिए पहुंचते हैं कि जाने वाला तो चला गया, फ़लाने के घर वाले होंगे, इसी बहाने शकल दिखा देंगे, भाई साहब आजकल शकल की ही कीमत है, अगला सोचेगा भी कि पांडेय जी बहादुरगढ़ से आए थे।

जैसे जी जाना वाला चला गया, लौट कर कौन आया है!

क्या टाटा

क्या मोदी और क्या अम्बानी!

ऊपर वाला सबसे बड़ा कारसाज है। बेशक नीचे सत्ता चलाने में इन पड़से वालों का हाथ रहा हो, लेकिन उससे बड़ा रसूक वाला न कोई था, न कोई है और न कोई रहेगा!

बड़े डंके की चोट मारी थी, पांडेय जी ने।

दरअसल अपने नाम के पीछे जी लगाने की परंपरा दयाल बाबू ने डाल दी। जब भी कोई पुछता तो तुरंत कहता कि बताइये दयाल बाबू ने भेजा है। कहते यही को जहां चाह है वहां राह है। ये बात सोलह आने सच है।

पांडेय जी ने दोपहर के भोजन के बाद झपकी ली कि तभी असन्तुष्ट कुमार आ पहुंचे। उनके बारे में एक कथन बड़ा मशहूर है कि उनकी स्मरणशक्ति बड़ी ग़ज़ब है। कितने किस्से

और किस अधिकारी ने क्या कहा और उस समय का चपरासी इस बात का साक्षी था।

जब कभी समय मिलता तो असन्तुष्ट कुमार विद डायलॉग अपने मन की बात करता और हल्का हो जाता। जैसे भी कहा गया है कि कोई अपना दुखड़ा सुना रहा हो तो सुन लेना चाहिए, इससे सामने वाले को बड़ी राहत मिल जाती है।

पांडेय जी ने कहा कि जैसे भी कुमार साहब आपने इतनी सरकार देखी और उनके काम काज का तरीका भी देखा, ये तो आप भी मानते हैं कि आप ने अब तक जो भी किया वह अपने मन का ही किया!

क्यों सही कहा न मैंने!

अब असन्तुष्ट कुमार क्या बोलते!

बात पलट दी और कहने लगे कि ऊपर तक शिकायत कर दी है, पता नहीं कब न्याय मिलेगा!

पांडेय जी सोचने लगे कि कैसा व्यक्ति है और किस तरह के न्याय के लिए लड़ रहा है!

दफ़्तर वाले कहते हैं कि यह काम नहीं करता। पर इनका कहना है कि इनको सताया जा रहा है। अब इसमें कौन सही है और कौन नहीं!

इस पर क्या बोलना!

जो होगा, वह सामने आएगा। अरे! महेंद्र! कहाँ रह गया!

अबे, चाय तो पिला दें।

लाया मालिक, आप पहले कह देते। अभी लाया। थोड़ा सा इंतजार और!

ले आ, प्यारे।

लल्लू के पास पहुंच गए पांडेय जी। लल्लू ने कहा कि पांडेय जी कुछ नया ताजा!

पांडेय जी ने कहा कि छुट्टी होने में घण्टा बचा है।पिलाओ चाय,इसी बात पर।लल्लू ने कहा कि चाय नहीं,कॉफी पिलाते हैं।अच्छा! पता करो,बनाया क्या उसने!

लल्लू ने पता किया कि ब्रेड पकौड़ा बना है,मंगा लें!  
पूछते क्या हो!

मंगवा लें।एक ब्रेड पकौड़ा और दो कॉफी।ब्रेड पकौड़ा गरम था,आधा लल्लू ने लिया और पांडेय जी ने भी आधा।पर गरम था और उम्दा कि लल्लू का मन और कर गया।एक और मंगवाया।उसे भी बांट लिया।

अब लल्लू ने कहा कि सरकार भी सोती कहाँ है!

मतलब तेजी से घटे मामले को लेकर बात इशारे में कही थीं।पांडेय जी ने कहा कि देखो भाई साहब,हमें क्या लेना और क्या देना!

बड़े लोगों की बड़ी बातें!

पर उ चौबे तो भिड़ा हुआ है,फेसबुक पर।जब देखो सरकार विरोधी टिपण्णी!

भाई,करने दो।जो जैसा करेगा,वैसा भरेगा।आप मस्त रहो।ये बताओ कि अब मसूड़ों का हाल क्या है!

कब उसे शरीर से रुखसत कर रहे हो!

लल्लू ने कहा कि मन तो है,पर दिल अभी मानता नहीं।सर्दियां भी आने को हैं,साला निकलवा लूँगा तो टीस मारेगा,इसलिए टाल कर रहा हूँ।ओह!

ये बात है।खेर! ध्यान रहे।इस बात का।क्या ठंडा गर्म चुभता तो नहीं।नहीं,नहीं।हल्का सा कभी महसूस होता है,जैसे कोई प्रेमिका दबे छिपे याद कर रही हो!

तुम ठहरे,अवल्ल नम्बर वेड बादमाश।नहीं सुधरोगे।बहरहाल कॉफी के लिए शुक्रिया।कल मिलते हैं।पांडेय जी निकल लिए।लल्लू जी फिर कम्प्यूटर में घुस गए।कुछ लोगों के लिए लगता है कि कम्प्यूटर ही बने हैं,पता नहीं उनकी पत्नियां कितना नाराज होती होगी उनपर!

पार्क में कई दिनों के बाद मिस शालिनी नजर आई।लगे हाथ विलायती राम पांडेय ने कहा कि आप की दो दिन से एब्सेंट लग रही हैं।वह मुस्कराई ,कहने लगी आउट ऑफ स्टेशन थीं।ओके,ओके।चक्कर लगाते हुए आगे निकल गए।

कई दिनों से पांडेय जी के मन में था कि एक ऐसी कैंची ली जानी चाहिए, जिससे नाक के बाल काटने में सुविधा हो।आखिर वह मिल गई।कहते हैं कि जब मन हो किसी का और वह मिल जाये तो बड़ी खुशी का एहसास होता है।

चुनांचे सड़कों पर नित नई गाड़ियों का आवागमन प्रदूषण की माफिक बना हुआ है।अभी टेलीविजन पर एक

न्यूज थी कि २०२० में ऐसी गाड़ियां सड़कों पर आ जायेगी जिससे प्रदूषण कम होगा,थोड़ी महंगी जरूर पड़ेगी,पर भविष्य में वही वाहन सड़कों पर दौड़ेंगे।बात सुन कर चकरा गए!

क्या इस का मतलब यह समझा जाये कि जिन लोगों के पास जो वाहन है उनको औने पौने दामों में निकाल दिया जाए!

इसके बारे में कोई खुलासा नहीं था।सरकार समाचार तो देती है पर खुलासा नहीं करती।

बहरहाल अभी एफएम पर सुना कि टेलीविजन का लोकप्रिय धारावाहिक सीआइडी बन्द हो जाएगा।लोगों में सन्नटा है कि जिन कलाकारों को पिछले २३ वर्षों से देखते आ रहे थे,उनको फिर उस सीरियल में न देख पाएंगे।अजीब तमाशा है लोगों का!

चिलमन ने कहा कि उस्ताद जी स्वेटर निकालने का मौसम आया क्या!

अभी निकाल दें,या कुछ समय बाद!

भाभी जी पूछवा रही है,बता दीजिए न!

पांडेय जी ने कहा कि अगले हफ्ते उनमें धूप दिखाइए,अभी रहने दीजिए,काहे उनको तंग कर रहे हो!

चिलमन खुश हो गया,कि पांडेय जी भी न कितना ध्यान रखते हैं!

अपने स्वेटरों का।बहरहाल आज सुबह लल्लू जी ने दयाल बाबू की क्लास ले ली।हुआ क्या कि पूछ लिया कि इस बार कौन सी पार्टी का चुनाव में सरकार बनाने का इरादा होगा!

दयाल बाबू ने कहा कि मेरा मन तो जिसे चाहेगा, उसको दूंगा अपना वोट!

पर सब पार्टी एक जैसी है,जिसे दे दो वह जनता को अपना चेहरा पूरे पांच वर्ष के बाद दिखाता है,बीच में यदि गलती से भी आपका उम्मीदवार मिल गया तो ऐसे मुस्करा कर देखेगा कि जैसे आपसे सदियों पुराना सम्बन्ध हो, लेकिन काम पड़ जायेगा तो ऐसे कच्ची काट जाएगा,जैसे आपने उसी से उधार मांग लिया हो।बाद मुश्किल है बॉस।जमाना तेजी से करवट ले रहा है।

थोड़ी देर में लल्लू और दयाल बाबू में तू तू मैं मैं हुई,चाय पीने के बाद गाड़ी पटरी पर आई औ? स्टेशन पर खड़ी हुई और कुछ देर बाद अपने गंतव्य स्थल पर चली गई।

कहते हैं दौड़ना सेहत के लिए बड़ा भला होता है।पहले आदमी पढ़ाई के पीछे दौड़ता है,फिर शादी की जुगत के पीछे,उसके बीच में नॉकरी के लिए,फिर अस्पताल में डॉक्टर

और नर्सों से होता हुआ केमिस्ट में फिर छह नम्बर वालों के पीछे, उसके बाद मेहमानों के बीच मिजाज पुरसी के लिए फिर स्कूल, ट्यूशन और कालेज फिर शादी ऑपरर उसके बाद एक अंतहीन दौड़ लगाता हुआ वह आराम पाता है अंतिम निवास में।

कहते हैं जब तक जान में जान है, भाई साहब लड़ना है, वरना तो मरे हुए समाज में सांस लेकर देखो!

क्या बोलते राधेलाल जी!

क्या बोलेंगे पुनिया!

कल ही फोन आया था कह रहे थे कि क्या हो रहा है!

पांडेय जी ने कहा कि अभी सर्दी कौसों दूर है, घड़ी ने पौने तीन बजाए हैं, चाय का आर्डर दिया है। सब ठीक है। मजदूरी चल रही है। विस्तृत समाचार सुन उनका पेट भर गया था, सो फोन रख दिया।

पांडेय जी सोचने लगे कि आजकल हर आदमी अपने चक्कर में घनचक्कर हुआ जाता है।

ये कारवां तभी थमेगा जब ऊपर वाला इशारा करेगा। ऊपर वाला भी क्या करे, वह भी सबकी हार्ड डिस्क देखने में काफी समय लगाता है, उसका भी चित्रगुप्त बिजी रहता है। फिलहाल काम चालू आहे। पांडेय जी ने ठंडी सांस ली, उन्होंने कही पढ़ लिया था कि ज्यादा देर एक ही जगह नहीं बैठना चाहिए, नर्स अकड़ जाती हैं, सो पांडेय जी ने अब हिलना शुरू कर दिया है। वैसे भी हिलते डुलते रहने से बॉडी भी फिट रहती है।

कसम से मिस शालिनी बेशक दस चक्कर लगाती है, उन्हें भी शेष में आने में लगभग छह महीने तो लग ही जायेंगे। देखा न, यहाँ भी पांडेय जी को अपनी चिंता नहीं है, चिंता इस बात की कि मिस शालिनी दो दिन क्यों एबसेंट रहीं। अजीब हालात हैं हमारे भारतीयों के। पता नहीं कब सुधरेंगे!

कुछ नहीं हो सकता, इन लोगों का!

दयाल बाबू ने कहा कि पांडेय जी एक मदद की आवश्यकता आन पड़ी है। हुआ क्या एक फाइल कहीं छिप गई या लुका छिपी का खेल खेल रही, तो दयाल बाबू पांडेय जी के पास मदद को आये कि भाई साहब यह काम करवा दो, नहीं तो हम मारे जायेंगे।

पांडेय जी ने कहा कि हम हैं न!

आपको आसानी से मरने कहां देंगे!

खेर यह तो मजाक में बात कही थीं। लेकिन अपने निजी प्रयास से जो कागज दयाल बाबू को चाहिए थे, वे मंगवा

दिए। फिर क्या था, दयाल बाबू ने एक बढ़िया वाली काफी पांडेय जी के लिए मंगवाई। पांडेय जी का ये स्टाइल था, अपने काम करने का। वे कहते भी हैं कि जीवन में जितना इनफॉर्मल रहो, उतना आगे बढ़ने के लिए अच्छा है।

इधर पिछले दिनों से पांडेय जी महसूस कर रहे हैं कि चिलमन का काम में मन नहीं लग रहा तो उसको बुला कर कहा कि तेरा बिजनेस करवा देता हूँ, पोल्ट्री फार्म का। कड़कनाथ मुर्गा है छत्तीसगढ़ का। उसका एक अंडा सत्तर रुपए में बिकता है। लखपति बन जाओगे, बहुत जल्दी। सुनकर चिलमन के कान खड़े हो गए, कहने लगा कि पर इतने महंगे अंडे खायेगा कौन!

पांडेय जी ने कहा कि यह कोई बड़ा इश्यु नहीं। जैसे बाजार में मारुति है तो बीएमडब्ल्यू भी है और ऑडी भी। तो ऐसा ही खाने पीने के शौकीनों का भी बाजार है। हर पैसे वाला खायेगा, वैसे भी यह अंडा और कड़कनाथ मुर्गा बहुत गर्म होता है। ये छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में पाया जाता है। सोचो यदि दिल्ली में भी इसका अंडा मिलने लगेगा तो क्या से क्या हो जाएगा, और चिलमन कल्लू को भी खिला देना, उसका मिजाज भी ठीक करेगा और उसका स्वास्थ्य भी।

चिलमन मुस्करा दिया।

उसका काम शुरू करवा ही दिया। पांडेय जी की जेब से पैसे जरूर लगे, पर रामप्यारी भी बेहद खुश थी कि आखिर इस बच्चे का भी भविष्य बन जायेगा। जो काम करेगा, वह कमाएगा भी।

पांडेय जी को उनके बाँस ने एक फाइल पर लिख दिया कि प्लोज स्पिक!

पांडेय जी को अच्छा लगता है कि कोई तो बात करने के लिए बुलाता है, वरना साहब किस के पास आज समय है!

वैसे भी वो साहब कैसे जो अपने कुलीग को जब बुलाये जब पहले से उनके पास चार-पांच जन विराजमान हो। ऐसे समय में पांडेय जी क्या हर व्यक्ति भीगी बिल्ली बन जाता है, पता नहीं, क्या पूछ लें!

बहरहाल ये भी सुख है, जीवन का और उससे जुड़ी प्रक्रिया का। ईश्वर बाँस को बाँस करने का मौका देता रहे और अर्दलियों को जी हजूरी का। बिना जी हजूरी कहाँ कोई कहानी आगे बढ़ी है!

पांडेय जी ने रामखेलावन से कहा कि बेटे जब बाँस से मिलने जाओ, मुंह लटका लो, जैसे डँगू से बच कर उबर हो!

वह कुछ पूछे तो तो आहिस्ता से बताते रहे, जरा भी शेख चिल्ली मत बनना। कई अर्थों में बाँस नाम का जीव बड़ा घाघ प्रजाति का होता है, यदि वह अपनी पर आ जाये तो लंबे

वाला बांस कर सकता है। इसलिए दीवाली से पहले आयाचित बनाम बम्बों से बचने की आवश्यकता है। नारायण हरि!

कह कर पांडेय जी लघुशंका को निकल गए। रामखेलावन कुछ और पूछता कि चिलमन ने कहा कि साहब तो गए, अब शाम को लौटेंगे, किसी बैठक में जाना था।



## परिचय

डॉ. लालित्य ललित

जन्म: २७ जनवरी १९७०, दिल्ली

प्रमुख कृतियाँ: जिंदगी तेरे नाम डार्लिंग, विलायती राम पांडेय, बेहतरीन व्यंग्य, पांडेय जी और जिंदगीनामा, डिजिटल इंडिया के व्यंग्य, पांडेय जी और फुरसत के लड्डू, पांडेय जी की दुनिया, पांडेय जी और दिल्ली, पांडेय जी कहिन, हम चंदन तुम पानी, फ़ेसबुक के कबीर, ओ पांडे जी, पांडेय जी के किस्से, पांडेय जी बोल रहे हैं, साहित्य के लपकुराम, क्या पांडेय जी!, अपनी तरह के पांडेय जी, फ़ेसबुक और पांडेय जी की दुनिया, कोरोना तुम कब जाओगे, आयुष्मान भव: पांडेय जी, पांडेय जी बन गए प्रधानमंत्री, पांडेय जी की अजब गजब दुनिया, पांडेय जी छज्जे पर सहित कुल २८ व्यंग्य संकलन; ६० कविता संग्रह, २५ नवसाक्षरों के लिए पुस्तकें। कन्नड़, ओड़िया, पंजाबी, मलयालम, गुजराती, तेलुगु व अंग्रेजी भाषाओं में कविताओं के अनुवाद।

संपादन और सह-संपादन: चाटुकार कलवा, अब तक ७५, इक्कीसवीं सदी के १३१ श्रेष्ठ व्यंग्यकार, अंतरराष्ट्रीय २५१ श्रेष्ठ व्यंग्यकार तथा अन्य ७

व्यक्तित्व-कृतित्व पर पुस्तकें-पत्रिकाएँ: १० पुस्तकें, और अनवरत, पुष्पगन्धा व अनुस्वार के विशेषांक सम्मान: रवींद्रनाथ त्यागी युवा सम्मान, हिंदी अकादमी से दो बार श्रेष्ठ कवि सम्मान।

सम्प्रति: संपादक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया। विदेश यात्राएँ: नेपाल, जापान, मॉरीशस, इंडोनेशिया, मलेशिया, ताशकंद, यूएई, नाइजीरिया की शैक्षिक यात्राएँ।

F&ces} : lalitmandora@gmail.com

lalitalalit27@gmail.com

आवास

स्थायी पता : बी-३/४३, शकुन्तला भवन, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३

## कविता मेघ



प्रमोद गौरी

## प्रमोद गौरी

पितृसत्ता का जबड़ा खोलकर  
लड़कियां निकल भागना चाहती हैं  
ललकारती हैं ज़माने को  
मां की कोख से ही  
स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में  
अवल आतीं  
समाजशास्त्रियों की टिप्पणियों में  
होती हैं अंकित  
साहित्य को तीखा बनाती हैं  
ग्रहों और नक्षत्रों पर पहुंचना चाहती हैं  
खेत-खलिहानों, उद्यानों और बागानों को  
खुशहाल बनाती फिरती हैं  
दूरभाष, दूरदर्शन, सिनेमा  
और अखबारों में  
बोल रही हैं  
मरीजों को दवा पिलातीं  
हृदय की धमनियों को 'ऑपरेट' कर रही हैं  
घर में बच्चे खिलातीं  
सुखा रही हैं खेत में बाजरा  
धमनियों-सी लड़कियां  
नया इतिहास रच रही हैं



एसोसिएट प्रोफ़ेसर,  
राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय,  
रोहतक।



हरिहर झा

## क्यों बनाम क्यों : परमाणु शक्ति

### हरिहर झा

सर्वप्रथम डॉ होमी भाभा को शतशः नमन जिनकी दूरदृष्टि का प्रभाव यह है कि आज भारत के ६ पावर स्टेशन में २२ परमाणु-बिजली की इकाइयां काम कर रही हैं जिनमें ४७८० मेगावॉट की क्षमता है। अन्य २९ इकाइयां निर्माणाधीन हैं या किसी योजना के अंतर्गत हैं। यह जानने के बाद स्वाभाविक प्रश्न उठेगा कि ऑस्ट्रेलिया ने इस दिशा में कितनी प्रगति की है? तो जवाब यह है कि मांग और पूर्ति की समीकरण दोनो देशों में अलग-अलग होने से तुलना करना बेकार है फिर भी आप नहीं मानते तो सुन लीजिये! यहाँ परमाणु-बिजली का एक भी पावर स्टेशन नहीं है और राजनैतिक वास्तविकता यह है कि अगले एक या दो दशकों में कोई रियेक्टर बनने वाला भी नहीं है। यहाँ भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (ANSTO) जैसा विशाल केन्द्र तो नहीं पर ऑस्ट्रेलियन नाभिकीय विज्ञान और तकनीकी संस्था (ANSTO) के अंतर्गत चार संस्थान हैं जिसमें ब्रेग संस्थान प्रमुख है जिसका नामकरण ब्रेग पिता-पुत्र को सम्मानित करता है जिन्हें १९१५ में भौतिक शास्त्र में नोबल पुरस्कार मिला था। ANSTO के अंतर्गत शोध के लिये दो रियेक्टर हैं जिनमें से पहला २००७ में बन्द कर दिया गया और दूसरा ईईए नवम्बर २००६ से सक्रिय हुआ है। यह २०मेगावॉट का रियेक्टर न्यूट्रॉन के उपयोग से परमाणु-संरचना को समझने के लिये काम आता है। इसकी तुलना में भारत में शोध के लिये एएफएफ में ४ सक्रिय तथा इंदिरा गांधी सेंटर में दो सक्रिय रियेक्टर हैं।

ऑस्ट्रेलिया में १९६९ में पहला बिजली उत्पादक रियेक्टर बनने का प्रस्ताव आया था और ठुकरा भी दिया गया किन्तु भारत में बिजली की न्यूनतम आवश्यकता पूरी न हो पाने से इसके पास कोई विकल्प नहीं है। ऑस्ट्रेलिया में कार्बन-जनित ईंधन कम प्रदूषण वाला बहुतायत में पाया जाता है। यहाँ 'साफ कोयला तकनीकी' भी है जब कि भारत में निम्न स्तरीय कोयला प्रयोग में लाया जाता है इन कारणों से परमाणु-बिजली देश की महत्वपूर्ण आवश्यकता

है। अतः ऑस्ट्रेलिया द्वारा भारत को यूरेनियम न बेचना विश्व में प्रदूषण को बढ़ावा देने के बराबर है।

इसके विपरित ऑस्ट्रेलिया के पास विकल्प हैं। वह दोनो प्रकार की बिजली में से कौनसी महँगी पड़ेगी यह सोच सकता है। उसे जनमत और राजनैतिक कारणों की चिन्ता करना भी आवश्यक है। एक सर्वे के अनुसार ४९६ जनता ऑस्ट्रेलिया में पावर स्टेशन बनाने के पक्ष में है। ८६ लोग तटस्थ हैं अतः हाँलांकि जनमत में विरोधी कमजोर पड़ जाते हैं पर शायद लिबरल पार्टी इस दिशा में कुछ कर पाये क्योंकि इस दल में से ५९६ लोग समर्थन करते हैं जबकि लेबर पार्टी में केवल ३०६ लोग परमाणु-बिजली के पक्ष में हैं। यूरेनियम की पूंजी की बात की जाय तो विश्व के यूरेनियम का २३६ भाग ऑस्ट्रेलिया में होते हुये भी यह स्थिति है और इसकी तुलना में भारत में बहुत कम यूरेनियम है। इसका कुल यूरेनियम केवल १०,००० मेगावाट बिजली के लिये पर्याप्त होगा। यह यूरेनियम संवर्धित भी नहीं है।

इन स्थितियों में ऑस्ट्रेलिया 'विश्व में जलवायु परिवर्तन' की चिन्ता में और परमाणु विरोधी अभियान की राजनीति में उलझ सकता है और वास्तव में उलझा हुआ है। तो इस परमाणु-समर्थक और परमाणु विरोधी अभियान में सही कौन है? बेरी ब्रूक ने २०१० में 'क्यों बनाम क्यों : परमाणु शक्ति' नामक पुस्तक लिखी जिसमें जनमत को छोड़ कर वस्तुस्थिति के हिसाब से विचार किया गया है कि इस शक्ति के समर्थन या विरोध में किन तर्कों को सही माना जाना चाहिये?

ब्रूक के हिसाब से पक्ष में निम्न तर्क वाजिब हैं : (१) यह सबसे सुरक्षित विकल्प है (२) परमाणु-शक्ति को असीमित कहा जा सकता है। (३) नवीनीकरण के योग्य स्रोतों से या कार्यक्षमता बढ़ाकर ईंधन की समस्या हल होने वाली नहीं है। (४) नई तकनीकी अपना कर परमाणु-कचरे का प्रबन्धन किया जा सकता है।

विरोधियों के इन तर्कों को दमदार ठहराया गया है। (१) परमाणु उर्जा खर्चीली है। (२) जो तकनीकी काम में लाई जा रही है उसमें परमाणु-कचरे की समस्या का समाधान नहीं है। (३) जलवायु-परिवर्तन की समस्या के लिये यह त्वरित हल नहीं है। जैसा कि इस पुस्तक में स्पष्ट है कि यह सबसे सुरक्षित विकल्प है किन्तु फुकुशिमा में हाल में हुई दुर्घटना के कारण काफी लोग डर गये हैं - जो लोग अब तक जलवायु-परिवर्तन को रोकने के लिये आवश्यक मानते थे वे भी। परमाणु-लोबी में से ही एक दल का मानना है कि नवीनीकरण के योग्य उर्जा याने सौर, पवन या भूगर्भ उर्जा आदि भी जलवायु-परिवर्तन को रोकने के लिये सक्षम हैं और दीर्घ काल में ये सस्ते भी हो जायेंगे। अब ऐसे लोगों को परमाणु-विरोधी समझा जा रहा है और उन्हें पूर्वाग्रह से ग्रस्त ठहराया जा रहा है। यह दूसरा दल समझाने का प्रयत्न कर रहा है कि जापानी प्लांट तो योजना के अनुसार काम कर रहा था। इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। परमाणु-विरोधी-दल भय की राजनीति से लाभ उठाने वाला काम कर रहे हैं। ऐसी दुर्घटना बहुत कम होती है। परमाणु भट्टियां सुरक्षित हैं और उस पर अतिरिक्त खर्च होते हुये भी जलवायु-परिवर्तन की समस्या के समाधान के लिये ये अधिक महत्वपूर्ण है।

ऐसा कहने वाले परमाणु उर्जा के कुछ समर्थक जब कार्बन-जनित उर्जा का विरोध करते हैं तो वे 'कार्बन-टेक्स' का भी विरोध कर देते हैं। यह टेक्स सभी देशों में चर्चा का विषय है। कार्बन-जनित उर्जा की राख व गैस वायुमंडल में मिल जाती है इसके एवज में सरकार सम्बन्धित कम्पनियों को हतोत्साहित करने के लिये यह टेक्स लगाती है क्योंकि इस प्रदूषण का कोई हल नहीं है जब कि परमाणु-बिजली के मामले में प्रारूप(गृह) द्वारा जिस हद तक चाहें सुरक्षित व प्रदूषण-मुक्त बनाया जा सकता है अतः खर्च की तुलना करते समय कार्बन-जनित उर्जा में कार्बन-टेक्स तो गिना ही जाना चाहिये। जैसा कि हावर्ड सरकार द्वारा अधिकृत स्वितकोवस्की रिपोर्ट में कहा गया है कि कार्बन-टेक्स न गिनने पर परमाणु शक्ति २० से ५०५ महँगी पड़ती है पर अंतरराष्ट्रीय श्रेष्ठ-कार्यप्रणाली के अनुसार कम या मध्यम मूल्य लगाना चाहिये जो कि कार्बन डाई ऑक्साईड के प्रति टन पर २५ से ४० ओज़ी डॉलर जितना पड़ेगा। सरकार द्वारा २० डॉलर से शुरू कर क्रमशः ३० डॉलर तक बढ़ाने की योजना है। प्रदूषण से जलवायु-परिवर्तन सम्बन्धी शोध को न मानने वाले कार्बन-जनित उर्जा की हानियों को समझ नहीं पाते और इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं क्योंकि इनमें से अधिकतर लोग 'विज्ञान में फेल बालक' जैसा व्यवहार करते हैं। वे ईश्वर को सृष्टिकर्ता

मानने के सिद्धान्त को भी विज्ञान में सम्मिलित करना चाहते हैं। अपने आप को सर्वेसर्वा मान कर वैज्ञानिक शोध से दी गई सभी चेतावनियों को अवैध ठहराना चाहते हैं मानो वे प्रकृति-विज्ञान पर ही युद्ध घोषित कर अवैज्ञानिक और अतिवादी विचारों को ओज़ी चिन्तन की मूलधारा में सम्मिलित कर के ही दम लेंगे।

जलवायु-परिवर्तन के मसले के अलावा परमाणु भट्टी का यह मुद्दा खर्च से ज्यादा पार्टी की पहचान का प्रश्न बन गया है। जैसा कि उपर के आँकड़े स्पष्ट करते हैं - लिबरल दल परमाणु उर्जा के पक्ष में है और लेबर विपक्ष में। परमाणु उर्जा के लिबरल पक्षधरों का कहना है कि जापान में कोई मृत्यु परमाणु-भट्टी के कारण नहीं हुई है जबकि भूचाल और सुनामी के कारण हजारों लोगों की मौत हुई है। अतः साउथ ऑस्ट्रेलिया के एक मन्त्री ने कहा है कि अगले १० से ३० वर्षों में उसके राज्य में यूरेनियम को संवर्धित किया जाना चाहिये। ऑस्ट्रेलिया में क्या, कोई भी देश खर्च के अलावा भी सभी मुद्दों को ख्याल में रख कर परमाणु बिजली पैदा करे तो किसी को कोई आपत्ती नहीं होनी चाहिये। जैसा कि अमेरिका के परमाणु नियामक आयोग के एक भूतपूर्व सदस्य का कहना है कि 'हमें अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में रख कर अधिक से अधिक परमाणु-शक्ति को प्रोत्साहन देना चाहिये। गड़बड़ तो तब है जब परमाणु-उर्जा को ध्यान में रख कर इसके प्रसार को मान्य हो केवल उतनी सुरक्षा से काम चलाया जाय।'



## परिचय

भाभा एटोमिक रिसर्च सेंटर में वैज्ञानिक-अधिकारी के पद पर कार्य करने के पश्चात हरिहर झा ३० वर्षों पहले मेलबोर्न आये। मौसम विभाग में वरिष्ठ सूचना अधिकारी के रूप में कार्य कर गत वर्ष सेवा निवृत्त हुये। 'भीग गया मन', 'फुसफुसाते वृक्ष कान में', 'दुल्हन सी सजीली' - आदि इनके कविता-संग्रह निकल चुके हैं 'देशान्तर'(हिन्दी अकादमी, दिल्ली), 'गुलदस्ता'(भारतीय विद्या भवन), 'बूमरैंग'(किताबघर प्रकाशन), 'नवगीत-२०१३', आदि १४ प्रतिष्ठित संकलनों में इनकी रचनाएँ संकलित हैं। इसी वर्ष परिकल्पना हिन्दी भूषण सम्मान भी मिला। २०१५ में अनहद कृति द्वारा काव्य-प्रतिष्ठा-सम्मान मिला





अनिला राखेचा

## खो जाते हैं घर

### सूरज प्रकाश

स्तुत कहानी 'खो जाते हैं घर' बहुमुखी प्रतिभा के धनी सूरज प्रकाश जी द्वारा लिखित है। गद्यकार सूरज प्रकाश जी साहित्य जगत में एक सम्मानित जाना पहचाना नाम हैं। उनके व्यक्तित्व व कृतित्व के बारे में यहाँ जो भी हमारे द्वारा लिखा जाएगा वह कम ही होगा।

इस कहानी का मुख्य पात्र नन्हा मासूम बालक बब्बू है। कहानी के कथानक की मूल संवेदना है गरीबी का अभिशाप, तभी तो गरीबी से त्रस्त पिता अपनी खो चुकी संतान बब्बू की खोज खबर नहीं लेता है। परिवार से बिछड़े बब्बू को मुंबई जैसे महानगर में गरीब बच्चों से कई तरह के काम कराने वाले किसी भिखारी दल का उस्ताद शरण देता है। यहाँ भी बीमारी की अवस्था में उस्ताद अस्पताल में बब्बू को भर्ती तो करा देता है मगर बिल भरने के डर से उसकी कोई खोज खबर नहीं लेता है।

उधर डॉक्टर को भी अपने बिल के साथ-साथ बच्चे की आगे की देखभाल कौन करेगा इस बात की भी चिंता है। वह भी बच्चे को अपने साथ रखने में असमर्थ होने के कारण समाज सेविका मिसेज रॉय से संपर्क करता है।

मिसेज रॉय का बेटा अपने परिवार सहित विदेश में बस गया है। कई वर्षों से वह अपनी माँ से मिलने नहीं आया है। अपने पोते को देखने के लिए तरसती मिसेज रॉय बब्बू में अपने पोते को खोजती है और अकेलेपन के आतंक को अपने जीवन - घर से दूर करना चाहती है। वह जानती है वह और बब्बू एक दूसरे का सहारा बन सकते हैं और अपने इसी अकेलेपन को बाँटने के लिए मिसेज रॉय बब्बू को घर ले आती है। उसे अपने पोते सा स्नेह दुलार देती है। उसका हर

तरह से ख्याल रखती है। बब्बू के आ जाने से उनके घर में अर्से बाद बहार आती है चाहे कुछ दिनों के लिए ही सही।

मिसेज रॉय का चरित्र इस कहानी में उच्च कोटि का दिखाया गया है। इंसानियत उनमें कूट-कूट कर भरी है मगर घरेलू कामों में मिसेज रॉय की मदद करने वाली माया की जरा सी लापरवाही व असंवेदनशीलता के कारण बब्बू एक बार फिर से बेघर हो जाता है पहुँच जाता है वहीं जहाँ से वह चला था।

बाल मनोविज्ञान पर आधारित इस कहानी में बब्बू की मानसिकता, उसकी परेशानियों, जिज्ञासाओं, उसके दुख - दर्द का लेखक ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। अपनी जड़ों से कटकर अलग हुए बच्चे जीवन की चिलचिलाती धूप में पल-पल झुलसते रहते हैं। पुराने जख्म भरते हैं तो नए छाले फूट पड़ते हैं। बसंत आता भी है तो जीवन में कुछ लम्हों का। ऐसे बच्चे मन से तमाम उम्र पतझड़ से झड़ते रहते हैं।

इस कहानी द्वारा लेखक समाज में हो रहे बदलाव की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है। उस बदलाव से समाज में विघटन, अकेलेपन बढ़ रहा है और आज के समाज की यह सबसे बड़ी समस्या भी है। अति महत्वाकांक्षी बच्चे अपने शानो शौकत के जीवन यापन हेतु अपने परिवार से अपने बड़ों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से विमुख होते जाते हैं और बुजुर्गों के हिस्से में रह जाता है मात्र अकेलेपन। अंत में कहानी का शीर्षक 'खो जाते हैं घर' यह साबित करता है कि जब तक समाज में गरीबी है, परिवारों में अकेलेपन का आतंक है तब तक इस कहानी का भी अस्तित्व है।

कहानी शुरू से अंत तक मन को बाँधे रखने में पूर्णतः सक्षम है।

## पौधे बेशर्म के अनिला राखेचा

बेशर्म की बिसात पर ही सजा है नारी का मान,  
सह लेती है तभी तो वो भारी भरकम व्यंग बान!!  
आज हँस कर कह रही वो -

छिन लो भले ही हँसी मेरी तुम  
मगर जीने की ताकत तुम नहीं छिन पाओगे  
रौंदो कुचलो भले ही कितना तुम मुझे  
मगर जड़ से मुझे तोड़ नहीं पाओगे

मैं वह बेशरम का वह पौधा हूँ जो उगा है  
बंजर धरा पर भी पूरे आत्मविश्वास से बार-बार  
चाहे जैसा भी रहा हो मौसम चाहे ना बही हो  
सदियों प्रेम रस की फुहार

कोमल तन और स्वाभिमानी मन लिए  
खिलती खिलखिलाती रहूँगी मैं बार बार  
कर लो कितने भी जुल्म तुम  
ना रोऊँगी ना रुलाऊँगी किसी को भी जार जार

जानते हो  
मेरा यूँ बार-बार उगना  
बार-बार तनना  
बार-बार खिलखिलाना  
अपनी लचकती डालियों संग मुस्काना  
बार-बार मरना और मर मर कर भी जी जाना  
यकीन मानो कि होगी तुम्हारी यही असली हार

माना... माना कि मैं नारी हूँ पर जान लो  
मैं ही हूँ इस धरा पर जीवन का आधार  
और जीने का सार!!



कोलकाता निवासी अनिला राखेचा का जन्म १९ अप्रैल को  
पश्चिम बंगाल के कूचबिहार जिले के माथाभांगा गाँव में  
हुआ।

'वागर्थ', 'पुस्तक संस्कृति', 'मधुमती', 'किस्सा' 'अभिनव  
प्रयास', 'पहला अंतरा', 'अनुकृति', 'छतीसगढ़ मित्र' 'राजस्थली'  
'संवदिया' 'साहित्योचल', 'संगिनी' 'हॉटलाइन' आदि पत्र-  
पत्रिकाओं व अखबारों में इनकी कविताओं, कहानियों, समीक्षाओं  
का नियमित प्रकाशन होता रहता है।

कई प्रतिष्ठित ब्लॉग में भी इनकी रचनाओं का प्रकाशन  
हुआ है।

कोलकाता की प्रसिद्ध राष्ट्रीय स्तर की साहित्यिक एवं  
सांस्कृतिक संस्था नीलांबर से वो पिछले कई वर्षों से सक्रिय  
रूप से जुड़ी हुई हैं ! उन्होंने नीलांबर द्वारा निर्मित और  
निर्देशित मञ्जू भंडारी की कहानी पर आधारित फिल्म 'अनथाही  
गहराइयाँ' में अभिनय भी किया है।

मूलतः ये एक संवेदनशील कवियित्री हैं जो कभी  
कभीकहानियाँ और समीक्षाएँ भी लिखती रहती हैं। उनकी  
कुछ प्रारंभिक रचनाएँ छात्र जीवन में लिखी गई हैं। उसके  
पश्चात विवाहोपरांत एक लंबा अंतराल आ गया लेखन में  
लेकिन उनका पठन-पाठन का काम लगातार जारी रहा।  
अभी विगत दो तीन सालों से वे नियमित रूप से लिख रही  
हैं। अधिकतर वो छन्दमुक्त कविताएँ ही लिखना पसंद करती  
हैं।

उनके कथनानुसार कविता लेखन उनके लिए एक साधना  
है मन की। जहाँ वो अपने मन के उन भावों को शब्द देती हैं  
जो उन्हें उनके मन की हर व्यथा को मुक्ति देते हैं।

उनके शब्दों में ....' मैं कविताएँ स्वान्तःसुखाय ही  
लिखती हूँ, जो आप सबके स्नेह से बहुजन हिताय स्वयं ही  
बन जाती है।'



## मंजिल के करीब

### डॉ. सुरेशचंद्र शुक्ल शरद आलोक

नेशनल थियटर के करीब बैठा था। रात्रि का समय था। नार्वे की बसन्ती हवा से सिहर उठता। सोचता कि करवट बदलूँ या किसी आशियाने की गोद में चला जाऊँ। दुनिया का सबसे महँगा शहर ओसलो! यहाँ मकान मिलना इतना आसान होता तो दर-दर की ठोकरें नहीं खाता। कभी सलीम के घर सोया तो कभी हरविन्दर के साथ रात बिताई।

एक दिन इब्सेन की मूर्ति से पीठ टिकाए नेशनल थियटर के सामने बैठा-बैठा सोचता रहा - जिसने यूरोप के इतिहास में अपने निराले अन्दाज से अपने नाटकों में जीवन दिया। मुझे लगा कि मैं इब्सेन के एक नाटक का मजबूर हठी पात्र हूँ जो अपने समय से लड़ रहा हो।

पार्लियामेन्ट की नंगी सड़क पर सनसनाती कार के प्रकाश की चकाचौंध ने विचारक्रम तोड़ दिया। मुझे ऐसा लगा कि भारत के किसी बड़े शहर के चौराहे पर किसी सोते हुए कुत्ते को किसी ने कोई डेला मारा हो, और यह चिल्लपों कर उठा हो। मैं उठा। मुँह पर सिगरेट की राख का कुछ अंश चिपक गया था यदि दिन होता तो कोई-न-कोई मुझे देखकर जरूर हँसता। चहल-पहल कम हो गई थी। मैं चार कदम चला ही था कि वापस लौट आया और दुबारा उसी सीनेटनुमा बेंच पर लेट गया। मैं हँसा। बुदबुदाया। बिना मंजिल के भी लोग बढ़ते हैं। मेरी मंजिल कहाँ है? शायद मेरी मंजिल भी है।

मैंने ओवरकोट अपने सर पर ढक लिया था। पैरों को घसीटकर अपने पेट पर चिपकाया। ठंडी हवाओं से बचने के लिये कोई दूसरा उपाय नहीं था। विज्ञापनों की बिखरी, जलती-बुझती बत्तियों को देखते-देखते न जाने कब नींद आ गई।

बोतलों के टूटने की आवाज ने हमारी निद्रा भंग करने की कोशिश की थी। पर मैं इतना थका हुआ था कि उन शराबियों को अनदेखा कर दिया था। समय का अनुमान लगाने के लिहाज से उस मीठी नींद में झाँक कर देखा। सड़क के उस पार फिलिप्स के विज्ञापन की इमारत की चोटी पर घूमती हुई घड़ी को देखना चाहा। घड़ी घूम चुकी थी। अपने आप को गठरी की भाँति बनाया। मुझे ऐसा लगा कि किसी ने मेरा ओवरकोट खींचा। मैं कुछ चौंका। मेरी नींद खुल गई थी। मैंने पैरों की तरफ देखा। लगभग पचपन-साठ वर्ष का व्यक्ति गुम-सुम बैठा था। उसने अजीब हालत बना रखी थी। सिर पर ऊन की टोपी, लम्बा ओवरकोट, पुराने फैशन की पैंट पहने। माथे पर किसी चोट का गुलम। गुलम सूज कर फोड़े की तरह उभर आया था। उस गोरे वृद्ध व्यक्ति के मुख से लार टपक रही थी। आँखों में कीच भरा था। उसने अपनी पलकें बन्द कर रखी थीं। उसके एक हाथ में समूची डबलरोटी, दूसरे हाथ में बड़ी बियर की बोतल थी।

उसे देखकर ऐसा लगा जैसे वह अपनी जिन्दगी से परेशान हो। वह बड़बड़ाया। मैं वहीं उठ कर बैठ गया।

अभी तक वह बड़बड़ा रहा था। जैसे ही उसकी आँख खुली, उसने मेरी ओर देख कर कहा - 'गू मारन' (गुड मॉर्निंग)।

'गू मारन' - मैंने उसे जवाब में कहा।

'टेरे अर सो स्नील' (तुम लोग बहुत अच्छे हो।)

'थक' (धन्यवाद) - मैंने उसका शुक्रिया अदा किया।

'अर दू पाकिस' (क्या तुम पाकिस्तानी हो?)

मैंने उसकी तरफ देखा, चुप रहा। उसने शायद यह अनुमान लगा लिया था कि मुझे अच्छा नहीं लगा।

'या, कान्चो' (हाँ शायद) मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया। थोड़ी देर तक बातचीत के बाद मैं उठकर चला गया।

बच्चे पार्क में खेल रहे थे, छोटे-छोटे गुप में बैठे। कार के टायरों वाले झूले पर बैठ कर झूल रहे थे। मिली-जुली रंग-बिरंगी पोशाक में काले बालों वाले प्रवासी बच्चे अपनी अलग पहचान बनाये हुए थे। मैं रेलिंग के सहारे खड़ा था। आसमान साफ था। पक्षियों का झुंड आसमान में मँडरा रहा था। तभी कोई ऊँची आवाज में चिल्ला रहा था। कभी वह सड़क के किनारे, कभी सड़क के कुछ अन्दर। कार, ट्राम की ध्वनि-प्रतिध्वनि को सुन कर वह बावरा इधर-उधर भागता। जैसे-जैसे वह पास आता गया, परिचित सा नज़र आने लगा। पास आने पर देखा, ओह! यह वही व्यक्ति है, जो उस रात नेशनल थिएटर पर मिला था। उसके डगमगा कर चलने से ऐसा प्रतीत होता था कि उसने मदिरा काफी पी रखी है। यह मुझे देखते ही पहचान गया, उसने मुझसे हाथ मिलाया। उसने बताया कि सामने पार्क के कोने पर किराने की दुकान वाला मकान उसका है। वह न जाने क्या-क्या मुझसे कहता रहा। मैं उसकी हाँ में हाँ मिलाता रहा। मैंने उसे भारतीय बीड़ी पीने को दी। उसने बीड़ी इत्मीनान से पी। उसने बीड़ी की तारीफ की। आज उसकी आँख से आँसू छलक आये थे। दो वर्ष पहले उसकी बीवी का स्वर्गवास हो गया था। तभी से बहुत पीता था। मुझे उससे कुछ सहानुभूति होने लगी थी। उसे कोई प्यार नहीं करता - यह उसकी शिकायत थी। उसने बताया कि उसका लड़का है, बहू है।

ीरे-धीरे पार्क में सन्नटा छाने लगा। पार्क खाली हो चुका था। समय स्तब्ध हो गया, निस्वर।

रविवार का दिन था। सुबह के सवा सात बजे थे।

सड़क सुनसान थी। आसपास कोई नहीं दिखता था। मैं आराम से ट्राम स्टेशन की तरफ बढ़ रहा था। ट्राम को आते देख मैं दौड़ पड़ा। ट्राम रुकी। ट्राम से एक व्यक्ति उतरता दिखाई पड़ा। मैं पूरी ताकत से दौड़ रहा था। प्लेटफार्म पर पहुँचा ही था कि ट्राम चल पड़ी थी। मैंने ट्राम का द्वार खटखटाया परन्तु ट्राम बेखटक आगे बढ़ चुकी थी। मेरी दृष्टि घड़ी पर पड़ी, ट्राम आज नियमित समय से दो मिनट पहले ही चली गई। ट्राम की ओर देखा, वह ओझल हो चुकी थी। मेरे मन में आया कि ट्राम चालक रेसिस्ट है, तभी तो काला प्रवासी समझ कर ट्राम चला दी, जबकि प्रायः जब ड्राइवर किसी को ट्राम की तरफ भागते देखता है, तो उसकी प्रतीक्षा कर लेता है। पहले मुझे क्रोध आया, बाद में मुस्कराकर रह गया।

अक्सर नार्विजन समाचारपत्रों में निरी बेहूदी बातें छपतीं। तीसरी दुनिया के देशों को समाचारपत्रों में अच्छा स्थान कम मिलता। भारत - पाकिस्तान - बांगलादेश के बारे में पूछो ही नहीं। एक दिन एक समाचारपत्र ने प्रकाशित किया - 'तीसरी दुनिया की प्रवासी औरतें चूहे की तरह बच्चे पैदा करती हैं।' कितनी शर्म की बात है! शायद ही कोई प्रवासी किसी नार्विजन के बारे में ऐसा सोचता हो। कभी-कभी मन में आता कि अपने वतन भाग चलो। अपने वतन में चाहे जैसे हो सुकून है, शान्ति है। अपने देश की मिट्टी में जो सौँधापन है, जो खुशबू है, वह यहाँ नहीं है। यहाँ आसमान भी मानो हमें निगलना चाहता है। तभी मुझे उस बूढ़े नार्विजन की याद आई। उसका नाम थोम था। एक तो थोम गोरा-चिह्ना फिर यह उस का देश। फिर भी वह परेशान क्यों रहता है? घर-द्वार है। पेंशन मिलती है। विचारों में मैं खोता चला गया। मैंने आँखें बन्द कर लीं। सपना देखने लगा। अपने वतन के इतिहास का सपना। जो भी अपने देश में आया उसे जगह दी, आश्रय दिया। अतिथि-सत्कार में भले ही अपने को लुटवा दिया।

जब से थोम को पता चला कि मैं रेस्टोरेन्ट में डिस्क (काउन्टर) पर काम करता हूँ तब से वह प्रतिदिन वहाँ आने लगा। संध्या के पूर्व वह रेस्टोरेन्ट में प्रवेश करता और मध्यरात्रि को रेस्टोरेन्ट के बन्द होने पर बाहर निकलता। थोम कहता - 'शराब मेरी मित्र है।'

वह बहुधा मुझसे तरह-तरह की न जाने क्या-क्या

बातें करता रहता। किसी तरह मैं उसे झेलता। जब मैं रेस्टोरेन्ट न जाता तब वह अन्य लोगों से मेरे बारे में कई बार पूछता। धीरे-धीरे मुझे उससे आत्मीयता हो गई थी। जब मैं थोम क्रिस्तियानमेन से तुम के स्थान पर आप कह कर सम्बोधित करता तो वह चिढ़ जाता था। यहाँ आप कहने का रिवाज नहीं है, चाहे जो हो। हम दोनों में धीरे-धीरे अच्छी दोस्ती हो गई थी।

थोम भी तो नार्विजन है। जबकि अन्य नार्विजन लोग कितने प्रायोगिक हैं, खोटा रूखा-सा व्यवहार करते हैं। शायद ही कोई दूसरा ऐसा हो जो पहली बार में ही नाम, घर, पता पूछता हो परन्तु नार्विजन लोग यह भी पूछने में नहीं चूकते कि कहाँ से (किस देश से) आए हो और कब वापस जाओगे?

यहाँ जब लोगों से अपनापन नहीं मिलता तब मन में अजीब सी बातें आतीं। मन उदास हो जाता। सिगरेट के धुएँ की तरह कहीं ऐसा तो नहीं कि मन की वे सारी आज़ाएँ बिखर जाएँगी, जिन्हें संजोए विदेश आया। अपनों से बहुत दूर। बचपन में अपनी माँ से विभिन्न लोककथाएँ सुनता था। उन लोककथाओं में 'सात समुद्र पार परियों का देश है, दूध से भरी नदियाँ हैं, आदि - आदि।'

थोम रात-बेरात (वक्त-बेवक्त) मेरे पास आ जाता। हम दोनों ओसलो की अँधेरी गलियों में भटकते। तब रात के अंधकार में उजाले की चकाचौंध मन को आहत कर देती। शहर में घूमने निकल जाता। स्तूर गाता से चला तो ग्लासमैगजीन, स्तूरथोरवे, पार्लियामेन्ट, नेशनल थियटर होता हुआ राजा के महल तक पहुँच जाता। शायद कहीं सुकून मिल जाए। यहाँ आधी रात को घूमने में कोई खतरा नहीं। और न ही भारत की तरह रात में घूमने के लिये मोहल्ले के दादा और थानेदार को सलाम ठोकने की जरूरत है। न तो यहाँ कोई दुख में साथ है और न ही सुख में। कोई ऐसा भी नहीं जिससे दो टूक बात करके अपने दिल के गुबार निकाल लो। अपना-अपना है। वहाँ सभी कुछ अपना है। यहाँ बहुत कुछ होकर भी अपना नहीं।

'कल क्रिसमस है। आज थोम जरूर आयेगा। मैं

काउन्टर पर द्वार पर दृष्टि लगाए हुए था। पिछले चार वर्षों से वह कुछ न कुछ जरूर उपहार देता था। शायद ही कोई नार्वे में ऐसा हो जो क्रिसमस पर अपनों के लिये उपहार न खरीदता हो। थोम ने कभी मुझसे उपहार नहीं लिया। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद थोम द्वार पर आता हुआ दिखाई पड़ा। उसके साथ एक नार्विजन युवक भी था। थोम ने एक हाथ में छड़ी और दूसरे हाथ में प्लास्टिक का एक थैला पकड़ रखा था।

वह मेरे पास आया और उसने मुझे अपने गले से लगा लिया। रेस्टोरेन्ट में सभी स्थान भरे थे। मैंने उनके लिये दो अतिरिक्त कुर्सियाँ लगवा दीं तथा दो बियर रखवा दीं। थोम आज उदास था। उसका चेहरा बुझा-बुझा सा था। थोम ने बताया कि वह बहुत बीमार है। केवल क्रिसमस का उपहार देने ही मेरे पास आया है। थोम का स्नेह देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गए। थोम ने साथ आए नवयुवक से परिचय कराते हुए कहा, 'यह मेरा लड़का है।' मैंने हाथ मिलाने के लिये अपना हाथ नवयुवक की तरफ बढ़ाया परन्तु नवयुवक ने हाथ नहीं मिलाया। मैंने थोम की तरफ देखा और अपना हाथ वापस जेब में रख लिया। थोम मानो शर्म से गड़ गया हो। थोम रुका नहीं और खँसता हुआ चला गया।

मुझे काफी दिनों से रेस्टोरेन्ट सूना-सूना सा लगने लगा। काफी दिनों से थोम ने रेस्टोरेन्ट में आना बन्द कर दिया था। जब पता चला कि थोम बीमार है, मैं दौड़ा-दौड़ा उसके घर गया। थोम के लड़के ने कहा कि थोम घर पर नहीं है। बाद में पता चला थोम घर पर ही था।

दूसरे दिन खबर मिली कि थोम अस्पताल में भर्ती है। मैं थोम से मिलने अस्पताल गया। साथ में थोम के लिये उसके मनपसन्द फूल ले गया। थोम मेरे गले से लग कर रो पड़ा। उसने बताया कि उसके घर से उससे मिलने के लिये अस्पताल कोई भी नहीं आया। मुझे आश्चर्य हुआ। थोम सिसक पड़ा - 'अब मैं शीघ्र ही भगवान को प्यारा हो जाऊँगा।' मैंने रुआँसे गले से कहा, 'थोम, ऐसा नहीं कहते।'

थोम से मिलकर आ रहा था। विचारों की कड़ियाँ

अतीत जीवन के शतरंजी खेल में पैदली खा गया है? क्या इसी के लिये।

चर्च में सभी एकत्र थे। थोम दुनिया से चल बसा। अन्तिम संस्कार की प्रार्थना हो रही थी। थोम ने मृत्यु के कुछ घन्टे पूर्व मुझे एक पत्र लिखा था। थोम ने लिखा था, 'मैं अब पुनर्जन्म मानने लगा हूँ। हे भगवान मुझे अगले जन्म में तुम्हारे जैसा पुत्र दे।' मैं अवाक् खड़ा था। निरीह! ऐसा लग रहा था कि पैरों के नीचे जमीन खिसक रही है। फूलों से सजे हुए बक्स में बन्द थोम मुझसे इतनी जल्दी मुँह मोड़ लेगा, सोचा भी न था। ट्राम के चलते हुए पहियों की तरह। जब तक ट्राम के पहिये ठीक चलते हैं, लगे रहते हैं लू जब थक कर बेकार हो जाते हैं, तो निकाल कर फेंक दिए जाते हैं। यही है जीवन का सिद्धान्त?



### परिचय

१० फरवरी १९५४ को लखनऊ शहर में जन्मे सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' पिछले ४० सालों से ओस्लो, नार्वे में हिन्दी की पत्रिकाओं स्पाइल-दर्पण और वैश्विका का सम्पादन कर रहे हैं।

आपकी रचनाओं से विदेशों में लिखे जाने वाले हिन्दी साहित्य को नया आयाम मिला है। हिन्दी में दस कविता संग्रह और तीन कहानी संग्रह और पांच अनुवाद की पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। नार्वेजीय भाषा में आपकी तीन पुस्तकें छाप चुकी हैं।

आपका पहला काव्य संग्रह 'वेदना' हिन्दी में १९७५ में और पहला कहानी संग्रह 'तारुफी खत' उर्दू में प्रकाशित हो चुका है। आपके पांच नाटकों का लखनऊ में मंचन किया जा चुका है।

पुरस्कार:

नार्वे में नार्विजन राइटर यूनियन, बियरके, ओस्लो कल्चर प्राइज ने आपको (क्रमशः चार लाख और दो लाख रुपये के बराबर राशि से) पुरस्कृत किया है। भारत में मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी पुरस्कार कविता संग्रह 'गंगा से ग्लोमा तक' के लिए और निर्मल वर्मा भाषा पुरस्कार मिला है। आपको प्रवासी रत्न और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ और दिल्ली हिन्दी अकादमी विदेशों में हिंदी सेवा के लिए पुरस्कृत किया है।

## कविता

सलमा खान

तुम भी जा रहे हो, जाओ  
उनसे कहना कि सर्दी शुरू हो गई है  
इस मौसम की रात बड़ी होती है  
यूं तो  
जुदाई की हर रात बड़ी होती है  
लेकिन  
सर्दी और तनहाई  
दोनों मिल जाएँ तो  
जानलेवा साबित होती हैं  
यह दिसम्बर जान का दुश्मन बना हुआ है  
रात भर नींद नहीं आती  
तुम तो  
दिन भर के थके रहते होगे  
तुम्हारी थकान  
तुम्हें थपकी देकर सुला देती होगी  
तुम अपने रियाल  
बिछाओ और सो जाओ  
बूढ़ी मां  
एक रोटी से अधिक नहीं खा पाती है  
भूख से बैर हो गई है  
बैर हो गई है  
सुबह होती है मगर नहीं होती  
उजाला देखे मुद्दत हुई  
हड्डियां टूटने के कगार पर हैं  
यह सूरज  
अब तो  
हमें विटामिन डी भी नहीं देता  
हमारा सूरज तो बस तुम ही हो  
इस बार तुम सच सच बताओ  
तुम कब आओगे  
फूलों के मुरझा जाने के बाद  
सफेद लिबास पहन कर सो जाने के बाद  
या फिर  
उससे पहले





विनोद पाराशर

## एक बेचैन रूह से साक्षात्कार

### विनोद पाराशर

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। यदि किसी विशेष काल-खंड के समाज को समझना है, तो यह आवश्यक है कि इस काल-खण्ड के साहित्य को पढ़ा जाये। इसी प्रकार किसी लेखक की रचनाओं को यदि समझना है, तो अच्छा रहेगा कि उस लेखक के जीवन-मूल्यों, संघर्षों व जीवन परिस्थितियों के बारे में पहले जान लिया जाये। लेखक के जीवन के संबंध में, यह जानकारी जुटाने के वैसे तो कई तरीके हैं, लेकिन सबसे अच्छा तरीका है उसका साक्षात्कार! किसी रचना को, सही तरीके से पकड़ना, व उसकी तर्कों को खोल पाना साक्षात्कार से संभव है।

वैसे तो साक्षात्कार को भी साहित्य की एक विधा ही माना गया है, लेकिन अन्य विधाओं की अपेक्षा इसमें काम बहुत कम हुआ है। हाल ही में, 'इंडिया नेटबुक्स' द्वारा प्रकाशित वरिष्ठ साहित्यकार श्री प्रताप सहगल के साक्षात्कारों की एक पुस्तक आई है। इस पुस्तक में- प्रताप सहगल के कुल तेरह साक्षात्कार शामिल हैं। ये सभी साक्षात्कार, वर्ष-1984 से 2014 के मध्य, उनके कुछ वरिष्ठ, समकालीन या उनकी बाद की पीढ़ी के साहित्यकारों द्वारा लिए गये हैं। वैसे तो सभी साक्षात्कार, पहले ही किसी साहित्यिक पत्र-पत्रिका में छप चुके हैं, लेकिन एक पुस्तक के रूप में, ये अब हमारे सामने आये हैं।

प्रताप सहगल अभी तक लगभग 44 वर्ष की अपनी अनवरत साहित्यिक यात्रा पूरी कर चुके हैं। इस दौरान, साहित्य की विभिन्न विधाओं में, उन्होंने 80 से अधिक पुस्तकों की रचना की है। साहित्य की हर विधा पर उनकी पकड़ है। देश के कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया जा चुका है। ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति के जीवन व उसके लेखन को साक्षात्कारों के जरिये समझना, एक आम पाठक व साहित्य के विद्यार्थी के लिये, उपयोगी होने के साथ साथ, रोचक भी है।

प्रताप सहगल के समकालीन व उनके मित्र, प्रख्यात व्यंग्यकार श्री प्रेम जनमेजय ने बड़ी ही रोचक शैली में उनका साक्षात्कार लिया है। प्रेम ने प्रताप सहगल से उनके बचपन, शिक्षा, नौकरी, शशि से उनके प्रेम-विवाह, दोस्तों के साथ उनके संबंध-जैसे व्यक्तिगत विषयों तथा उनके साहित्यिक लेखन पर भी खुलकर सवाल पूछे हैं। सहगल ने भी उनके हर सवाल का बेबाकी से जवाब दिया है।

प्रताप का बचपन, दिल्ली की एक मजदूर बस्ती में बीता। उनके पिता स्वयं एक फैक्टरी में काम करते थे। मजदूरों के जीवन से उनका सीधा नाता रहा। उन्होंने पढ़ाई के साथ-साथ, कारखानों में भी काम किया। निम्न मध्यवर्ग के जीवन संघर्षों को, न केवल उन्होंने बहुत नजदीक से देखा, बल्कि स्वयं भी झेला। संघर्षों से अर्जित अनुभवों की आँच को, उनकी रचनाओं में साफ देखा जा सकता है।

दोस्तों के संबंध में, सहगल का कहना है - 'दोस्तों से जिंदगी में बहार रहती है। अगर मैं किसी दोस्त से खफा होता हूँ तो ज़रा व्यवस्थित मन से विचार करता हूँ कि आखिर मैं खफा क्यों हूँ? ज्यादातर हम दोस्तों से इसलिए खफा रहते हैं कि वे हमारी अपेक्षाओं पर खरे नहीं उतरते। तब दुःख होता है लेकिन दुःख का कारण तो मेरी उम्मीद ही होती है न! फिर यह भी सोचता हूँ कि दोस्तों से भी उम्मीद न करूँ तो किससे करूँ?'

प्रताप को किसी एक फ़्रेम में नहीं बाधा जा सकता। जैसा उनका जीवन विविधताओं से भरा है, वैसे ही उनका लेखन है। जहाँ उन्हें खाने में विविध प्रकार के व्यंजन पसंद हैं, वहीं नई नई जगह घूमना भी पसंद है। एक जगह टिककर बैठना, उनके स्वभाव में नहीं है। यही हाल, उनके लेखन का है। वे कभी कवि, कभी कथाकार, कभी नाटककार, कभी आलोचक तो कभी बाल साहित्यकार के रूप में, एक नई कृति हमारे सम्मुख लेकर आ जाते हैं।

प्रेम ने जब उनसे इस वैविध्य का कारण पूछा, तो प्रताप का कहना था कि- वे स्वयं को किसी एक प्रेम में बांधकर नहीं रख सकते। वे एक बैचन रूह हैं, जो एक विधा से दूसरी और दूसरी से तीसरी में आवाजाही करती रहती है। इससे ताज़गी बनी रहती है और वैविध्य भी।

लेखन, साहित्यिक सरोकार और वैचारिक प्रतिबद्धता के संबंध में, सहगल का मानना है कि लेखन में उन्हें आनन्द आता है और आनन्द एक ऐसा पुरस्कार है, जिसके सामने सब बेमानी है। वे अपने अनुभवों को शब्दों के माध्यम से विस्तार देते हैं। वे मानते हैं कि जीवन किसी भी विचारधारा से बड़ा है। लेखन में विचार, किन्हीं परिस्थितियों में रखकर ही हो सकता है।

युवा कवि व व्यंग्यकार ललित्य ललित द्वारा लिया गया साक्षात्कार भी इस पुस्तक में शामिल है। ललित ने प्रताप से विभिन्न विधाओं में लिखे गये उनके साहित्य पर सवाल पूछे। जब सहगल से पूछा गया कि उन्होंने कविता, नाटक, कथा, आलोचना, कहानी, उपन्यास व यात्रा संस्मरण-सभी में अच्छा लिखा है, तो वे स्वयं को किस विधा में अधिक निपुण मानते हैं? उनका कहना था कि वह स्वयं को सिर्फ एक लेखक मानते हैं। उन्हें विषय के अनुरूप विधा की ज़रूरत महसूस होती है, उस विधा को वे चुन लेते हैं। यह कहना कि वह फलों विधा में निपुण हैं और फलों में नहीं, कुछ अटपटा सा लगता है। फिर भी उन्हें एक नाटककार के तौर पर ज्यादा जाना जाता है। लेखक की पहचान के संबंध में उनका कहना है कि जब तक कोई लेखक जिंदा रहता है, उसकी पहचान बदलती रहती है। नाटक सर्वाधिक जनतांत्रिक विधा है, जो मंच के माध्यम से लोगों तक सीधा पहुँचता है। नाटक जब मंच पर आता है तो आप जल्दी पहचाने जाते हो।

डॉ गुरचरण सिंह ने प्रताप के विभिन्न साहित्यिक विधाओं में लिखे गये उनके साहित्य पर काफी विस्तार से बातचीत की है। जब उनकी रचनाओं में कहीं पर भी ग्रामीण परिवेश न दिखाई देने पर सवाल किया गया तो प्रताप का कहना था कि उनका संघर्ष शहर से जुड़ा है, गाँव से नहीं, इसलिए रचनाओं में गाँव कहाँ से आयेगा? आयेगा तो झूठा आयेगा।

प्रताप की कविताओं का मूल स्वर-विरोध व विद्रोह है, लेकिन रचना के अंत में यह ठंडा पड़ जाता है या वे समझौते की ओर अग्रसर हो जाते हैं। डॉ गुरचरण सिंह ने जब इसका कारण जानना चाहा, तो सहगल ने बताया कि उनकी कविताएं-आम जनमानस की कविताएँ हैं। आम आदमी

की चारित्रिक बनावट ही ऐसी है कि वह दूसरे के कंधे पर चढ़कर विद्रोही दिखना चाहता है या विद्रोह करता है, तो कुछ सुविधाएँ मिलते ही, विद्रोह समझौते में बदल जाता है, ऐसे में ठंडापन तो आयेगा ही। इसी बात की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में मिलती है।

हर लेखक की अपनी रचना-प्रक्रिया होती है। कोई रचनाकार किसी नियत समय पर ही अपना रचना कर्म करता है, तो कोई कभी भी लिख लेता है। इस संबंध में प्रताप का कहना है कि उनके लेखन का कोई नियत समय नहीं है। लेखन के लिए अध्ययन व सूक्ष्म दृष्टि की जरूरत होती है। कविता कब आकर लेने लगती है, इसके पीछे का कोई तर्क उन्हें अभी तक समझ नहीं आया। शब्दों में ढलते ढलते रचना के कई प्रारूप बनते-मिटते रहते हैं, लेकिन कागज़ पर आने के बाद कई बार वह प्रारूप अंतिम हो जाता है। लेखन हो या कोई अन्य कला, उसके लिए प्रकृत प्रतिभा को वे पहली शर्त मानते हैं। बिना इसके केवल ज्ञान-विज्ञान, अभ्यास व अनुभव से कोई रचना नहीं की जा सकती

साहित्यिक जगत में जीवित रहने व उसमें ख्याति प्राप्त करने के लिए, आजकल कुछ लेखक किसी राजनीतिक विचारधारा/पार्टी से जुड़ जाते हैं। साहित्य और राजनीतिक विचारधारा के सम्बंध में प्रताप का मानना है कि तत्कालिक ख्याति प्राप्त करने के लिए, राजनैतिक दल के प्रश्रय में चलने वाले लेखक एवं कला मंचों से जुड़ाव, प्रसिद्ध होने में मदद करता है, पर ऐसी ख्याति दीर्घकालिक नहीं होती। दीर्घजीवी तो लेखक का रचनाकर्म ही होता है। इसी प्रकार धर्म के संबंध में सहगल का मान्यता है कि साहित्य धर्म से परिचालित नहीं होता। सम्बन्धों की जिन बारीकियों व उलझनों का धर्म निषेध करता है, साहित्य की यात्रा, सृजन की प्रक्रिया वहीं से शुरू होती है।

सहगल लम्बी कविता धारा के एक महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। कुछ लेखक कविता को केवल कविता मानते हैं, वह उसे छोटी या लम्बी कविता के खाने में नहीं रखते। युवा आलोचक चन्दन कुमार ने जब इस पर उनसे बात की, तो उनका कहना था कि लघु या छोटी कविता मात्र एक क्षण के अनुभव को पकड़ती है वही लम्बी कविता एक विकासशील माध्यम है। किसी भी तरह की कोई शास्त्रीय जकड़न स्वीकार नहीं करती। लम्बी कविता पाठक को कई स्तरों पर अपने साथ जोड़ती है व उद्बलित करती है

साहित्य में भी कुछ लोग जोड़ तोड़ के बल पर, सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिए सहगल की सलाह



कि जोड़-तोड़ की राजनीति आपको नौकरी दिलवा सकती है, पुरस्कार भी दिलवा सकती है, आप में यदि प्रतिभा है, तो उसका परिष्कार भी कर सकती है, प्रतिभा नहीं है तो पैदा नहीं कर सकती और न ही जोड़ तोड़ करके कोई रचना पैदा होती है। जोड़ तोड़ आदमी के अंदर छिपी चालाकी का नाम ही तो है। अगर मौजूद पीढ़ी के कुछ लोग मात्र जोड़ तोड़ से ही रचनात्मकता प्राप्त करना चाहते हैं, तो यह संभव नहीं है। जोड़ तोड़ तो, दरअसल प्रतिभा के ताबूत पर गड़ी हुई कील है। डॉ. शकुंतला कालरा ने, सहगल के बचपन, किशोरावस्था के संघर्ष तथा उनके बाल साहित्य पर विस्तार से बातचीत की है। प्रताप का बाल्यकाल व किशोरावस्था काफी कष्टपूर्ण रहा। उनका परिवार विभाजन के बाद, लुटा-पीटा भारत आया था। उनके पिता आर्यसमाजी थे। आर्यसमाज की विचारधारा का प्रभाव, बचपन में उनपर भी पड़ा। प्रश्न उठाना और तर्क करना उन्होंने उसी से सीखा। किशोरावस्था में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से भी जुड़े, लेकिन कुछ समय बाद उससे भी मोह भंग हो गया। वाम विचारधारा का प्रभाव भी उनपर पड़ा। सहगल का मानना है कि कोई भी विचारधारा मानवता से बढ़ी नहीं हो सकती। अपने विद्यार्थी जीवन में, पढ़ाई में, वे शुरू से ही मेधावी रहे। लेखन की शुरुआत भी १९६१ में एक कहानी 'बेकर' से हुई, जो उस समय के अखबार 'वीर अर्जुन' में प्रकाशित हुई। वर्ष-१९६२-६३ में, उन्हें अपने स्कूल से निकलने वाली पत्रिका 'दीवार' का छात्र संपादक बनाया गया। उसके बाद 'ज्ञान-वाटिका' का सम्पादन भी उन्होंने किया। विद्यार्थी जीवन में बच्चन, मीर, गालिब, दाग और फिराक की कविताओं से वे काफी प्रभावित हुए।

सहगल ने बाल साहित्य भी काफी लिखा है। उनके तीन बाल नाटक व एक बाल कहानी संग्रह अभी तक प्रकाशित हो चुके हैं। उनका यह भी कहना है कि जितना बाल साहित्य अभी तक प्रकाशित हुआ है, उससे कहीं अधिक अप्रकाशित पड़ा है। बड़ों के नाट्य-लेखन व बच्चों के नाट्य लेखन में अंतर को स्पष्ट करते हुए, उन्होंने कहा कि बच्चों के लिए नाटक में एक ऐसे संसार की रचना जरूरी है, जहाँ, उनकी कल्पना को पंख लग सकें, उनके अंदर बैठा मासूम कलाकार सामने आ सके, बच्चा पहले से थोड़ा स्याना होकर लोटे। बाल नाटक में, विचारधाराओं के घमासान की अपेक्षा भाव, गुण व मूल्यों की सार्थकता पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

इसके अलावा अन्य साहित्यकार, जिन्होंने साहित्य से जुड़े कुछ गंभीर सवाल प्रताप के सामने रखे, उनमें शामिल हैं- ज्योतिर्मय आनंद, चंदन कुमार, डॉ. कीर्ति केसर, सीमा भारती,

भावना शुक्ल, त्रिपुरारी कुमार शर्मा, नूर ज़हीर और युवा कवि व पत्रकार मज़ीद अहमद।

पुस्तक का कवर बहुत ही आकर्षक है। एक-दो जगह रह गयी भाषागत त्रुटि को यदि छोड़ दिया जाये, तो कवि, नाटककार, कथाकार, आलोचक और बाल साहित्यकार प्रताप सहगल के व्यक्तित्व व लेखन को समझने के लिए, यह एक महत्वपूर्ण पुस्तक है।

पुस्तक: मेरे साक्षात्कार (प्रताप सहगल)

प्रकाशक: इंडिया नेटबुक्स

सी-१२२, सै-१९

नोएडा-२०१३०१

गौतमबुद्ध नगर (एन. सी. आर. दिल्ली)

मूल्य: २००.०० (पेपर बैक)

२५०.०० (हार्ड बॉन्ड)



## परिचय

जन्म तिथि: ०१-०७-१९६१

जन्म स्थान: 'सिंगौली' जिला-गाजियाबाद (उत्तर-प्रदेश)

शिक्षा: एम.ए. (हिन्दी)

व्यवसाय: जून-२०२१ में, भारतीय डाक विभाग से, उपडाकपाल के पद से सेवानिवृत्त।

प्रकाशित कृतियां

१. क्षितिज के उस पार (वर्ष-१९८२) गजल संग्रह का सहयोगी गजलकार

२. नया घर (वर्ष-१९९१) काव्य-संग्रह

३. दोस्ती (वर्ष-२०१३) काव्य-संग्रह

१. छात्र-जीवन में दिल्ली विश्वविद्यालय में, कालेज की ओर से सर्वश्रेष्ठ कवि का पुरस्कार।

२. साहित्यिक व सामाजिक संस्था 'सोच' द्वारा श्रेष्ठ काव्य पाठ के लिए 'संवेदना सम्मान'

इसके अलावा भी कई साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मोबाइल: ९९५३९७९४३३

ई-मेल: vinodparashar1961@gmail.com

निवास: ए-२२, विजय विहार-फेज़-२, सैक्टर-४ रोहिणी, दिल्ली-११००८५



मेधा झा

## मेधा झा

### १ पहला कदम

जब भी कदम बढ़ता है  
एक स्त्री काए  
कई स्त्रियां कदम बढ़ाती हैं।  
जब भी खड़ी होती है  
एक स्त्रीए  
खड़ी होने लगती हैं  
धीमे.धीमे अन्य स्त्रियां भी।  
धरती प्रतीक्षारत है  
सिर्फ उस एक स्त्री के लिए।

### २ पाठ्यक्रम के उदाहरणार्थ वाक्यों का बदलना

तुम्हारे कलात्मक हाथों से  
कपड़े तह किये जा रहे थे।  
अब उठाया कपड़ा तुमने  
अपनी स्त्री का।  
प्रत्येक कपड़े को समेटने के ढंग में  
दिख रही थी पूर्णता तुम्हारी।  
अब बारी थी बच्चों के कपड़ों कीए  
एक. एक कर छोटे. छोटे रंग . बिरंगे कपड़ों का गुलदस्ता सा  
तैयार हो रहा था और  
दिख रहा था उन हाथों का कौशलए  
जो हर काम पूर्णता से करने में सक्षम है।  
बन रहा था अबए  
आज का विशेष व्यंजन।  
फिर उन्हीं हाथों का कमाल दिख रहा था।  
घर में बच्चे नाच .कूद रहे थे  
प्रतीक्षा में अपने पसंदीदा व्यंजन के।

क्या ये मात्र था . कपड़ा तह करना  
या खाना बनानाघ  
.  
नहीं  
ये था पाठ्यक्रम के  
उदाहरणार्थ वाक्य .  
श्माँ खाना बनाती हैश् और  
शिपता अखबार पढ़ते हैँश् से  
श्माता .पिता खाना बनाते हैं और  
दोनों अखबार पढ़ते हैँश् तक का बदलावए  
जो बदलने जा रहा था  
श्द ग्रेट इंडियन किचनश् कोए  
और उसके साथ किसी भी हालत में  
शहीद होती माँ की छवि को  
और साथ ही बदल रहा था  
कर्मों का लिंग निर्णयभी।



### परिचय

जन्म स्थान . सहरसा बिहार  
वर्तमान पता .  
सन्निवा विलो फ्लैट नंबर .९०२ए सरजापुर  
बंगलौर .५६२९२५  
संपर्क सूत्र .९९९९६९४४६३  
लेखन की विधा .  
यात्रा संस्मरण लघु उपन्यास कहानी लघु कथाए कविताए  
व्यंग्य समीक्षा भूमिका लेखन  
' एक प्रेम ऐसा भी ;कहानी संकलन.इंडिया नेट बुक्स से  
प्रकाशित  
' दो लघु उपन्यास यात्रा वृतांत एवम् अन्य कथाएं



डॉ तबस्सुम जहां

## पानी और आसमान

### डॉ तबस्सुम जहां

सुमन ने पानी से भरे गड्ढे में झांक कर देखा। नन्ही मछलियां तैर रही हैं। इससे पहले उसने खाने की प्लेट में ही मछली देखी थी। बारिश के पानी में मछली देखने का यह पहला अनुभव था। कौतूहल से उसने पूछा-

‘दीदी इस पानी में मछलियां कहाँ से आयीं।’

‘मछलियां? ला देखूँ। अरे हां, सचमुच ये तो मछलियां ही हैं। अरे-अरे थोड़ा दूर हट कर देख नहीं तो काट लेंगी तुझे। कुसुम ने सुमन पर अपने बड़े होने का रोब झाड़ते हुए कहा।

‘पर टीवी में तो दिखाते हैं कि मछली समुंद्र में होती है और तालाब में।’ उसने मासूमियत से कहा। ‘ये बादलों से गिरी हैं जैसे ओले गिरते हैं। बादल इन्हें समुंद्र से अपनी झोली में भरकर लाए और यहां गिरा दिया। छपाक से। शायद बादलों को किसी मछली ने काट लिया होगा। गुस्से में उन्होंने मछली को यहां फेंक दिया।’ ग्यारह वर्षीय कुसुम ने अपना गूढ़ ज्ञान छोटी बहन सुमन को दिया।

सुमन जानती है दीदी बहुत समझदार हैं। उन्हें सब पता रहता है। हाय! कितनी नन्ही नन्हीं हैं। नन्हे दांतों से बादल को काट खाया इन्होंने। सुमन ने गड्ढे में झांक कर ध्यान से देखा। मछली के साथ जलराशि में उसे आकाश का प्रतिबिंब नज़र आया। नीले आंचल पर सफेद बादलों के फूल टंके हो जैसे। उसने फिर टोका

‘दीदी, ये नीचे क्या है आसमान जैसा।’

‘ये आसमान है पगली। नीचे वाला। पानी वाला। इसमें मत उतरना वरना डूब जाएगी नीचे।’ कुसुम ने यह बात इसलिए कही थी कि कहीं उसकी बहन पानी में कपड़े गीले न कर ले। पर सुमन पर इसका दूरगामी प्रभाव हुआ।

‘अरे! यह तो बहुत गहरा है। बहुत ही गहरा।’ कहीं उसका पैर न फिसल जाए। वह वहीं जम कर खड़ी हो जाती है। ‘कहीं आसमान में गिर पड़ी तो कैसे निकलेगी। इसका तो तला ही नहीं है। बादलों में अटक गयी तो ठीक है। पापा को दिख तो जाऊंगी। पर पापा निकालेंगे कैसे। इतनी लंबी रस्सी कहाँ से आएगी। रस्सी टूट गयी तब क्या होगा। मैं तो वापस आसमान में छपाक से गिर पडूँगी। सुमन को एक अज्ञात भय सताने लगता है।

‘मछलियां आसमान में क्यों नहीं डूब रही दीदी?’

उसने हैरत से पूछा।

‘अरे मछली को तैरना आता है पागल वो कैसे गिरेंगी।’ कुसुम बोली।

‘पर नीचे परिंदे भी तो नहीं डूब रहे दीदी। सुमन ने मासूमियत से कहा।

‘अरे उन्हें उड़ना आता है वो नहीं डूबेंगे। जब थक जाएंगे तो नीचे से वापस आ जाएंगे। वापस अपने घोंसले में।’ कुसुम ने साफ किया।

सुमन जान चुकी थी कि मछलियां और परिंदे आसमान में नहीं गिर सकते। पर वह गिर सकती है। नीचे धंस सकती है। उसे आसमान में नहीं गिरना है। पानी से बचकर

चलना है। उसने देखा सड़क पर जगह-जगह पानी भरा है जिसमें आसमान चमक रहा है। उसे सभी से बचकर चलना है। खुद को गिरने से बचाना है। बकरी और बिल्ली भी तो पानी से बचकर निकल रही हैं। उनको पता है अगर पानी के बीच से गए तो आसमान में गिर पड़ेंगे। देखा सब समझदार हैं। सबको पता है कि कब क्या करना है। कैसे बचकर चलना है। आसमान नीचे से सब देखता है। कौन गिरने वाला है। उसने ठान लिया कि वह पानी में नहीं जाएगी। चाहे कुछ हो जाए।

कुछ दिन बाद फिर से बारिश हुई। फिर गड्ढे पानी से भरे। इस बार मछलियां नहीं थीं। शायद तैर कर थक चुकी इसलिए आसमान में डूब गयी। कहीं दिखायी भी तो नहीं दे रही। उसने नीचे झांक कर देखा। तभी एक लड़का दौड़ता आया और तेज़ी से पानी के उस पार निकल गया। छपाक से पानी में तरंगे कौंध गयीं। कुछ देर के लिए तरंगों ने पानी से आसमान का प्रतिबिंब मिटा दिया। सुमन ने देखा लड़का आसमान में नहीं गिरा। गिरता कैसे? वह तेज़ी से उसके ऊपर से जो निकल गया था। आसमान कुछ समझ ही नहीं पाया होगा इतनी देर में। साइकिल वाला भी तो नहीं डूबा इसमें। सुमन को सब समझ आ गया। अगर आसमान से बचना है तो तेज़ी से निकल जाओ। आसमान कुछ देर के लिए गायब हो जाएगा। वह अंधा हो जाएगा। उसे पता ही न चलेगा कि उसके ऊपर से कौन निकल गया।

सुमन खुश थी। घर जाकर दीदी को बताऊंगी। उसे आसमान को चकमा देना आ गया है। अब वह उसमें नहीं डूबेगी। उसे अब डरने की भी ज़रूरत नहीं है। दीदी उसे बहुत शाबाशी देंगी। सुमन उठी और भागती हुई पानी के गड्ढे को पार कर गयीं। वह खुश थी। वह डूबी जो नहीं। उसने आसमान को चकमा देना सीख लिया था।



## परिचय

डॉ तबस्सुम जहां जामिया मिल्लिया इस्लामिया दिल्ली से हिंदी में पी एच डी हैं। इन्होंने अपने लेखन का आरंभ कविताओं से किया। डॉ निर्मला गर्ग संपादित पुस्तक 'दूसरी हिंदी' में इनकी भी कविताएं संकलित हैं। इनकी प्रथम लघुकथा 'औलाद का सुख' चौथी दुनिया समाचार पत्र में छपी। इसके बाद समय समय पर अनेक कहानियां, लघुकथाएं, कविताएँ, पुस्तक समीक्षा, आलेख, आलोचनात्मक समीक्षा भारत की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं जैसे सदभावना दर्पण, पुरवाई, नेशनल एक्सप्रेस, सामायिक सरस्वती, विश्वगाथा, आगमन, लोकस्वामी, लोकमत, मुस्लिम टुडे, चौथी दुनिया, भारत भास्कर, विशेष दृष्टि में प्रकाशित हों चुकी हैं। आज यह युवा कहानीकार, आलोचक और समीक्षक के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

फोन- ९८७३९९४९९०

tabijahan03@gmail.com

Dr Tabassum jahan

D/O Firasat Ali Khan

C/O Musarrat Ali Khan

76 B Hauz rani,

malviya nagar,

New Delhi 110017

## कविता में जीवन के शाश्वत प्रसंग

---

### राजीव कुमार झा

वर्तमान हिंदी लेखन में इला कुमार की पहचान मूलतः कवि, तत्त्वचिंतक और विदुषी के रूप में रही है। उन्होंने पौराणिक साहित्य और विशेषकर उपनिषदों का अध्ययन - विवेचन किया है और इस रूप में भारतीय समाज और संस्कृति को उत्प्रेरित करने वाले अनादितत्वों से उनकी कविता के भाव विचार का रचना वितान भी स्वभावतः निर्मित हुआ है और यहाँ किसी अरण्यदीप की तरह से निरापद भाव में मनुष्य की जीवनयात्रा के कई अलक्षित अध्याय इन कविताओं के कैनवास पर प्रातकाल के रंगबिरंगे चित्रों की तरह उजागर होकर सर्वत्र सजीवता का संचार करते हैं।

सुपरिचित कवयित्री इला कुमार का प्रकाशित कविता संग्रह 'विस्मृति के बीच' में संकलित कविताएँ भावबोध के धरातल पर जीवन के विभिन्न प्रश्नों को लेकर किसी दार्शनिक विवेचना में सृष्टि और समाज के अनेकानेक आयामों की गहन मीमांसा को प्रस्तुत करती हैं और इन कविताओं में मनुष्य के वर्तमान भौतिक जीवन के संकटों की ओट में सभ्यता - संस्कृति के उभरे मुद्दों से अवगत होने के अलावा काल के प्रवाह में जीवन के प्रति नयी आस्था के स्वर का भी समावेश हुआ है। कवयित्री इन कविताओं में असीम प्रेम को समेटे जीवन के शाश्वत राग विराग को शब्दों में समेटती कल्पना और यथार्थ के अद्भुत बिंबों से कविता में जीवन के नये दृश्य - अदृश्य प्रसंगों की व्याख्या में तल्लीन दिखायी देती हैं।

कविता में विस्मृति रचनातत्व के रूप में जीवन में स्मृति की गहरी पड़ताल का संकेत करती हैं और इसलिए इला

कुमार की इन कविताओं में भूत, भविष्य और वर्तमान का सार समाहित है। कवयित्री ने यहाँ अपने कथ्य की अभिव्यंजना में काव्य को रचते हुए कथ्य के रूप में इसके प्रतिपाद्य भावों के साथ तमाम भंगिमाओं के समावेश से इस संग्रह की समस्त कविताओं को रोचक शिल्प में आकार दिया है। इनमें सृष्टि, संसार - समाज और धरती पर जीवन के अनेकानेक उपक्रमों के परिप्रेक्ष्य में प्रकृति और जीवन के अन्य उपादानों की संकुलता में कविता यथार्थ की रचना में संवाद करती प्रतीत होती है।

यह गुण धर्म के धरातल पर इन कविताओं का सबसे बड़ा रचनात्मक वैशिष्ट्य है और इनमें भाव विचार के सम्यक समावेश से चेतना के नये क्षितिज के संधान का उपक्रम विशेष रूप से उजागर होता है। इस अनुरूप जीवन के सूक्ष्म और स्थूल इन दोनों ही तत्वों की विवेचना इन कविताओं में हुई है और इस प्रकार अर्थ अभिप्राय का एक विस्तृत दायरा कविता के सहज फलक पर दस्तक देता सामने आता है।

कवयित्री बेहद आत्मीयता से अपने मौजूदा समय और समाज के तमाम बदलावों के बीच जीवन की सुनी - अनसुनी आहटों के बीच से गुजरती स्मृति की जगह विस्मृति को काव्य का उपादान बनाती सामने आती हैं और इसलिए विवेचना के निष्कर्ष पर इन कविताओं में जीवन की भटकाव से भरी राहों में गहरी आशा से जीवन की सार्थक दिशा को ढूँढ़ने पाने का अनथक यत्न शामिल है।

इला कुमार समकालीन हिंदी कविता में नारी जीवन चेतना अपनी परंपरा को कई स्तरों पर रेखांकित करती हैं

और वर्तमान जीवन के द्वंद्वों को नयी भाव भंगिमा से पाटती हुई वह कविता में नारीत्व को किसी गहन अर्थ में बदल देती है . इस संग्रह की कविताओं में उपमान के रूप में प्रयुक्त होने वाले संकेत प्रतीक ज्यादातर प्रकृति की विविध प्रतिच्छवियों को प्रकट करते हैं और मौजूदा परिवेश का संकट इनकी स्थापना के विडंबनापूर्ण संदर्भों को प्रस्तुत करता है .

कविता में स्मृति के रूप में जीवनानुभवों से लिखी गयीं इन कविताओं में एक बेहद जटिल और कठिन दौर के अवलोकन से उपजी अनुभूतियों का समावेश है और इसमें सहजता से जीवन के सुख - दुख प्रकट हुए हैं . चिंतनशीलता के धरातल पर धरती पर जीवन के अनेकानेक संकटों को भी विमर्श के रूप में इन कविताओं में शामिल देखा जा सकता है और समुद्र , पहाड़ , नदी और जंगल के साथ अपने गाँव , शहर के अलावा बेहद दूर सुदूर की दुनिया में विचरता कवयित्री का मनप्राण घर -आँगन , बरामदे से लेकर जीवन के सहजक्रम में तमाम तरह के घटित - अघटित प्रसंगों के यथार्थ को कविता की तह में समेटता प्रतीत होता है .

सर्जनात्मक धरातल पर इन कविताओं में जीवन का प्रवाह किसी नदी की धारा की तरह समाया है और इसके तट पर वर्तमान सभ्यता - संस्कृति के भौतिक जीवन के उथलपुथल और कोलाहल से बाहर जीवन का शाश्वत नैसर्गिक राग विराग तमाम तरह की विस्मृतियों के बीच स्मृतियों की तारों को स्पंदित करता संवेदना के फलक को जीवंतता से झंकृत कर देता है . शांत भाव का सुंदर सौंदर्य इस संग्रह की कविताओं में दृष्टिगोचर होता है .

. अपनी भाव भाषा में चेतनत्व के रूप में श्रेयस्कर भाव विचारों का प्रतिपादन इस संग्रह की कविताओं का विशिष्ट पक्ष है और इस आत्मिक धरातल पर जीवन के प्रति गहरे आनंद , प्रेम , शांति और सुख उल्लास के आत्मिक भाव इस संकलन की सारी कविताओं में अक्षरशः समायोजित है .

'' बीता समय मेरे साथ पिछवाड़े खुलने वाली / खिड़की के करीब जा खड़ा होता है / वहाँ / काई लगे आँगन में अमरूद का शानदार पेड़ / खड़ा है / उसकी शाखों पर बैठ कर बिताई गयी सभी साँझें / समय के चौखट पर / एक जगह गड्मड् हो उठती हैं / समय की वर्तमान तह पर / सूखा पेड़ तो क्या पेड़ की जड़ें भी / अंतरधान हैं । '' ( बीत चुका वक्त )

विस्मृति की चुप्पी में जीवन के दो पाटों के बीच तमाम तरह की स्मृतियाँ अनुगूँज के रूप में सदैव मनुष्य के मनप्राण

को स्पंदित करती हैं और अक्सर एक गहरे मौन के भीतर से कुछ स्फुट स्वर समाज के सरल - जटिल यथार्थ को कविता की अंतर्वस्तु में प्रामाणिक पाठ का रूप देते हैं . कवयित्री इला कुमार के इस काव्य संग्रह की कविताओं में व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों के साथ समाज और जनजीवन के विभिन्न प्रसंगों को लेकर लिखी कविताओं में विस्मृति के साथ स्मृति के संयोग की प्रक्रिया सतत मूर्त होती दिखायी देती है .

कविता के कैनवास पर जीवन के सुख -दुख को बेहद करीब से चित्रित करती इन कविताओं के यथार्थ में नारी जीवन का द्वंद्व स्पष्टता से समाया है और इनमें घर परिवार के प्रति आत्मीय मनोभावों का समावेश है .

विशुद्ध अर्थों में इन कविताओं में लोक जनजीवन का राग - विराग समाया है और नारी हृदय की आत्मिक अनुभूतियाँ किसी सघन स्मृतिगूँज में आलाप और अनहद की तरह गूँजती सुनायी देती हैं .

इला कुमार की इन कविताओं में उदासी से भरे इस समय की त्रासदियों में जीवन के विचलन के भावों से सर्वत्र एक आशा और विश्वास का स्वर फूटता सुनायी देता है और कवि की अदम्य जिजीविषा सदैव सहजता से लोक में उपस्थित के साथ अनुपस्थित तत्वों के संधान में मौन में विलीन होती अनंत प्रश्नों को जन्म देती है और यहाँ वह तमाम तरह की रहस्यात्मक प्रवृत्तियों से दूर यथार्थ की भावभूमि पर काव्य साधना में प्रवृत्त प्रतीत होती है।



पुस्तक समीक्षा : राजीव कुमार झा

पुस्तक का नाम : विस्मृति के बीच ( कविता संकलन )

, कवयित्री : इला कुमार , प्रकाशक : डायमंड पाकेट बुक्स

( प्रा . ) लि . , ओखला इंडस्ट्रियल एरिया , फेज २

, नयी दिल्ली ११००२०

मूल्य : ३५० / -

कहानी समीक्षा

## सुरेशचन्द्र शुक्ल की कहानी विसर्जन के पहले दो संस्कृतियों को जोड़ने वाली कहानी है - प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा

ओस्लो, नार्वे से डिजिटल मंच पर 'विसर्जन के पहले' कहानी पर परिचर्चा और अंतर्राष्ट्रीय काव्य गोष्ठी संपन्न

भारत नॉर्वेजियन सूचना सांस्कृतिक फोरम द्वारा ओस्लो, नार्वे से डिजिटल मंच पर 'विसर्जन के पहले' कहानी पर परिचर्चा और अंतर्राष्ट्रीय काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि प्रसिद्ध लेखक और समालोचक प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा ने कहा कि वरिष्ठ साहित्यकार सुरेशचन्द्र शुक्ल की कहानी 'विसर्जन के पहले' दो संस्कृतियों के बीच संवाद बनाती है। इसके साथ ही यह दो सभ्यताओं के बीच सेतु और अंतराल दोनों को बताती है। मनुष्य जीवन भी सृजन से विसर्जन तक और विसर्जन से पुनर्सृजन तक निरंतर चलता रहता है। शुक्ल जी ने स्कैंडिनेवियाई देशों, जैसे नार्वे, स्वीडेन डेनमार्क, फिनलैंड में जो देखा और अनुभव किया वह उनकी कहानियों में प्रकट होता है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर' ने कहा कि विसर्जन के पहले कहानी विदेशी महिला का भारतीय संस्कृति में समावेशित करने वाली उत्कृष्ट कहानी है, जो कथा साहित्य में अपना अप्रतिम स्थान बनाएगी। यह कहानी सदा उषा प्रियम्बदा की कहानी वापसी की तरह याद की जायेगी।

कहानी की समीक्षा करते हुए प्रमिला कौशिक ने कहानी को मानवीय संवेदनाओं की कहानी कहा।

सुवर्णा जाधव ने कहा कि स्वीडेन और भारतीय परम्पराओं का, प्रकृति का सामाजिक दर्शन यह कहानी प्रस्तुत करती है। आधुनिक और मानवतावादी सोच की कहानी पाठकों और श्रोताओं पर प्रभाव डालती है।

ओम सपरा जी ने कहा कि भाषा, शिल्प और कथानक के हिसाब से कहानी विसर्जन के पहले बहुत अच्छी सधी हुई कहानी है।

नागरी लिपि परिषद के मंत्री एवं नागरी संगम और सौरभ पत्रिका के सम्पादक डॉ. हरिसिंह पाल ने कहानी को रोचक बताते हुए सुरेशचन्द्र शुक्ल को प्रवासी लेखकों में महत्वपूर्ण बताया।

अर्जुन पांडेय जी के अनुसार इसमें दो संस्कृतियों के समर्पण भाव को जोड़ने का जो कार्य किया है वह सराहनीय है।

आथर्स गिल्ड आफ इंडिया के महासचिव डॉ. शिवशंकर अवस्थी ने कहानी को भारतीय और पश्चिमी संस्कृति का संगम बताया।

न्यू जर्सी, अमेरिका से डॉ. राम बाबू गौतम, ब्रिटेन से डॉ. क्रांति कुमार, स्टॉकहोम, स्वीडेन से यश पाल, प्रो. हरनेक सिंह गिल, दिल्ली, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, दिल्ली के डॉ. दीपक पांडेय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के सहायक प्रोफेसर लहरी राम मीणा, देवेन्द्र कश्यप 'निडर', केंद्रीय हिन्दी संस्थान आगरा से डॉ. दिग्विजय शर्मा, लखनऊ से कैलाश देवी सिंह, गाजियाबाद से डॉ. रश्मि चौबे, अमेठी से डॉ. अर्जुन पांडेय, उज्जैन से डॉ. श्वेता पंड्या आदि ने अपनी उपस्थिति से कार्यक्रम को गौरवान्वित बनाया।

अंतर्राष्ट्रीय काव्य गोष्ठी के अंत में ओम सपरा जी ने प्रसिद्ध पत्रकार विनोद दुआ के जीवन पर प्रकाश डाला, जो उनके सहपाठी थे। अंत में विनोद दुआ जी को श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

- माया भारती, ओस्लो

ओस्लो, नार्वे



प्रोफेसर चन्द्रदेव यादव

## गाँवनामा और पिता का शोकगीत के लोकार्पण की रिपोर्ट

### रिपोर्ट : अभिनव यादव

चन्द्रदेव यादव का काव्य-कर्म अद्वितीय है- डॉ. पी. एन. सिंह

‘चन्द्रदेव यादव की कविताएँ इतनी अच्छी लगीं कि मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि यादव जी ने जो काम किया है वह अद्वितीय है कम लोग हैं जो गाँव पर इतना सोच-विचार कर लिखते हैं उन्होंने अपनी भावनाओं और अपने समय और समाज से लोगों को जोड़ दिया है ये विचार मशहूर चिन्तक और आलोचक डॉ. पी. एन. सिंह के हैं उन्होंने चन्द्रदेव यादव की दो काव्य-पुस्तकों के लोकार्पण समारोह में ये विचार व्यक्त किए।

चन्द्रदेव यादव हिन्दी के पाठकों के लिए जाना-पहचाना नाम है। वे कवि-आलोचक और लोकसाहित्य के मर्मज्ञ हैं ‘देस-राग’ नाम से उनका पहला कविता संग्रह एक दशक पहले प्रकाशित हुआ था। अपने समय और समाज के महत्वपूर्ण दस्तावेज़ इस काव्य-संग्रह ने खड़ी बोली की कविताओं के समकक्ष भोजपुरी काव्य-जगत में एक प्रतिमान स्थापित किया था। उसके एक दशक बाद उनकी दो काव्य पुस्तकें अभी हाल में ही प्रकाशित हुई हैं-गाँवनामा और पिता का शोकगीत त प्रेमचंद जयंती के अवसर पर ३१ जुलाई, २०२१ को ‘संवाद’ संस्था की ओर से इनका ऑनलाइन लोकार्पण किया गया और उन पर एक लम्बी परिचर्चा हुई। इस अवसर पर हिन्दी के मूर्धन्य चिन्तक आलोचक डॉ. पी. एन. सिंह, मशहूर कवि-कथाकार प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह, वरिष्ठ आलोचक डॉ. रामप्रकाश कुशवाहा, हिन्दी कविता के मर्मज्ञ प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी, आलोचक प्रो. बजरंग बिहारी, युवा समीक्षक डॉ. प्रियदर्शिनी प्रिया और युवा आलोचक डॉ. आशीष मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए।

एक दशक से भी अधिक समय से अस्वस्थ चल रहे डॉ. पी. एन. सिंह ने अपने संक्षिप्त संबोधन में इन दोनों काव्य कृतियों के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा कि कवि का जीवित रहना ज़रूरी है त कवि नहीं रहेगा तो संसार तो रहेगा लेकिन वह संसार जीने लायक नहीं रहेगा त कवि कुछ नहीं करता है तो भावनाओं को उकेर देता है; उससे लोगों को जोड़ देता है। यादव जी ने गाँव पर जो काम किया है वह बहुत महत्वपूर्ण है। इससे पहले कवि चन्द्रदेव यादव ने प्रेमचंद को याद करते हुए कहा कि प्रेमचंद के समय के ग्रामीण समाज की विसंगतियां आज भी मौजूद हैं, किन्तु उनमें कुछ नया जुड़ा भी है। यह ‘नया’ सकारात्मक कम, नकारात्मक ज़्यादा है। गाँवों का भौतिक विकास तो हुआ है, किन्तु उनकी आत्मा मर गई है त गाँव बिना डाल-पात के तने भर रह गए हैं त गाँव के लोग मजबूरी में गाँव छोड़ने पर विवश हुए, लेकिन जिस पगडंडी ने उन्हें राजपथ से जोड़ा उससे वे जुड़ नहीं पाए।

परिचर्चा की के आरंभ में डॉ. प्रेम तिवारी ने कहा कि ‘गाँवनामा’ में आज के गाँवों का यथार्थ है। भाव और संवेदना के स्तर पर यह एक लाजवाब काव्यकृति है। इसे पढ़कर त्रिलोचन और नागार्जुन की याद आई। आज की कविता की भाषा में यह कविता नहीं कही जा सकती। इस कविता की फुलवा, बनवारी, सुगम सिंह और सूरे, जिसमें कवि खुद भी है, को पढ़कर लगा कि मैं कविता नहीं, कहानी पढ़ रहा हूँ। चन्द्रदेव जी में ‘नंगातलाई का गाँव’ जैसी पुस्तक लिखने की क्षमता है। केदारनाथ सिंह ने भी गाँव पर कविताएँ लिखी हैं,



लेकिन केदार जी की वे कविताएँ ऐसी हैं जैसे शहर में रहने वाला एक आदमी देख रहा है। वे दूरी से गाँव को देखते हैं। उनमें गाँव में जाने की ललक है, लेकिन जा नहीं पाते। चन्द्रदेव जी की कविताएँ पढ़ते हुए लगता है जैसे कवि गाँवों में जाने के लिए पगहा तुड़ा रहा है। चन्द्रदेव जी गाँव में जाकर कविता लिखते हैं। 'गाँवनामा' में कवि ने एक अब्दुत बात कही है कि कविता लिखना हलवाही जैसा काम है। ऐसा वही कह सकता है जिसने हल चलाया है। इसमें लोकतंत्र, साम्प्रदायिकता, दलित शोषण और स्त्रियों यानी विमर्शों की बात है। यह गाँव में दिखता नहीं है। प्रेम तिवारी के वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए संचालिका डॉ. सरोज ने कहा कि इन कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे मैं प्रो. यादव की आत्मकथा पढ़ रही हूँ।

१९९० के बाद भूमंडलीकरण के कारण गाँव को लेकर बहुत सी कविताएँ लिखी गईं; जिनमें गाँव के बदलने और टूटने का दर्द है। पिता का शोकगीत की 'सपना' शीर्षक कविता के आधार पर कह सकता हूँ कि आज का हल्कू बहुत हैरान-परेशान है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में छुट्टा पशुओं की बाढ़ आई है। ईति-भीति जैसी छः आपदाओं में से यह भी एक आपदा है। देश में यह जो नई शोकगाथा बन रही है, यह कविता हमें वहाँ ले जाती है। चन्द्रदेव जी इस शोक और विषाद को उभारते हुए उस उम्मीद के उभरने का जतन कर रहे हैं। इन संग्रहों से गुज़रते हुए मैं शोक में नहीं डूबा हूँ, मुझे एक उम्मीद दिखाई दे रही है। बहुत पहले मैथिलीशरण गुप्त और गया प्रसाद शुक्ल सनेही ने भी किसानों को लेकर कविताएँ लिखी थीं। चन्द्रदेव जी जैसे कवि को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने सच्चे मन से इस राग की अभिव्यक्ति की है।

मशहूर कवि-कथाकार प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह ने दोनों संग्रहों के लिए चन्द्रदेव यादव को बधाई देते हुए कहा कि इन दोनों कविता संग्रहों की कविताओं से मैं भलीभांति परिचित हूँ। पिता को लेकर जो लिखा गया है वह कविता में ही संभव था। कहानियों में वह शायद उतना भावप्रवण नहीं होता। गाँवनामा के 'नामा' की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि इसके कई अर्थ हैं, लेकिन यहाँ उसका अर्थ कुछ खास है। एक बात को हम इतना अनुभव करते हैं कि वह हमारे भीतर गहरे धँस जाती है। फिर उसका आरंभ और अन्त ढूँढ़ पाना मुश्किल होता है। यह नामा है। वास्तव में कविता प्यास जगाती है; वह प्यास बुझाती नहीं है। इस अर्थ में गाँवनामा सार्थक है। एक दूसरी बात। इस कविता का चाहे जितनी

बार पाठ करें, हर पाठ के बाद प्रश्न उठता है कि क्या हम सब कुछ समझ गए कि कवि ने क्या कहना चाहा है? शायद नहीं। बजरंग बिहारी जी ने राग के बारे में कहा था कि कुछ कवियों में राग दिखता है, होता नहीं। मैं कहता हूँ राग होता तो है, वह पकड़ में आता है या नहीं। चन्द्रदेव जी का पहले संग्रह आ चुका है—देस-राग। राग को पकड़ना जानते हैं चन्द्रदेव जी। वह देस-राग में दिखाई पड़ गया था। वहाँ जो देस का राग है उसी की ध्वनियाँ इन संग्रहों में हैं।

इन कविताओं में जो गाँव है वह प्रेमचंद, त्रिलोचन या केदारनाथ सिंह के गाँव से भिन्न है। इन कविताओं से पता चलता है कि वह भिन्नता क्या है। सवाल यह नहीं है कि विषय के बारे में कवि कितना जानता है! जानकारी होना अलग बात है। सवाल यह है कि वह कवि के भीतर कितना है और कवि उसके भीतर कितना है? निश्चित रूप से चन्द्रदेव जी ३० वर्षों से दिल्ली में हैं। उनको देखकर नहीं लगता कि वे दिल्ली में हैं। लगता है कवि गाँव में हैं और गाँव उसके भीतर बसा हुआ है। वह इन पंक्तियों से पता चलेगा, वह प्रतीकों और बिम्बों से पता चलेगा—

मैंने भी तुमको देखा है

शिद्वत से महसूस किया है,

अधनंगे रह पूस जिया है

'पूस जिया है'—यह गाँव से तदाकार हुए बिना नहीं लिखा जा सकता। अधनंगा रहकर पूस को जीना—इस तरह की भावाभिव्यंजना अब्दुत है। यह कविता में आना सहज नहीं है।

गाँव पर बहुतों ने लिखा है। गाँव में शहर घुस गया है—शहरी बाना गाँव में देखा; यह भी सही है। मगर मेरी दृष्टि यहाँ आकर अटक गई—

गिद्ध गए, गौरैया रूठी

यह विकास कि रीति अनूठी।

गदराई बाली, पर सीठी त

यह बदला हुआ गाँव है—यह दिखना कि 'गदराई बाली, पर सीठी' अब्दुत है त 'सीठी' का कोई जवाब नहीं है त चन्द्रदेव जी की कविताओं में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिन्हें बदलना संभव ही नहीं है त ऐसा कमाल बाबा तुलसीदास कर चुके हैं त इसी तरह 'कुंचहरा' महुआ भी विलक्षण शब्द है त ये शब्द नहीं हैं, व्यंजनायें हैं त 'सूखी आँखों में सपने थे/ डोंगी थी सिकता में अंटकी/ डाल-पात बिन गाँव तने थे त अब्दुत पंक्ति है त इसका मतलब है, इसमें संभावना है—इसलिए कि वहाँ सपने हैं त यह केवल तुकबंदी नहीं है त

इसमें गहरी व्यंजना है त

‘पिता का शोकगीत’ केवल पिता का शोकगीत नहीं है त पिता मूल्यों का प्रतीक है त हमारे मूल्य क्षरित हो रहे हैं- ‘एक बार चर जाने के बाद तुमने/ फिर क्यों नहीं बोई / करुणा, क्षमा और प्यार-मोहब्बत की फसलें?’ मुझे मिर्जा ग़ालिब का एक शेर याद आ गया, हालांकि उसकी व्याख्या दूसरी है त गाँव की तरक्की मुझे इस तरह लगती है-

उग रहा है दरो-दीवार से सपना ग़ालिब

हम बयाबान में हैं और बहार आई है त

यह जो व्यंजना है, इसे जानने के लिए चन्द्रदेव जी को पढ़ें त

तकनीकी कारणों से इस परिचर्चा को दो सत्रों में विभाजित करना पड़ा था त बिस्मिल्लाह साहब के अध्यक्षीय वक्तव्य के बाद डॉ. आशीष मिश्र ने कहा कि ‘देस-राग’ के बाद जब ‘गाँवनामा पढ़ता हूँ तो लगता है दो-तीन दशकों में उदारीकरण के बाद जैसे पूरी भारतीय अर्थव्यवस्था को उधेड़ दिया गया हो त उसमें कोई यह सोच नहीं सकता था कि किसान आन्दोलन इतनी मज़बूती से खड़े होकर सत्ता को हिला देंगे त इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर केवल कवि ही नहीं खड़े हो रहे हैं; उसी ज़मीन से प्रतिरोध की आवाज़ भी खड़ी हो रही है त यह एक ऐतिहासिक ज़रूरत है त चन्द्रदेव जी का यह एक सैलानी भाव नहीं है त गाँव पर लिखना यानी गाँव को महसूस करना है त यह एक ऐतिहासिक परिघटना है त उसी ऐतिहासिक परिघटना के सन्दर्भ में चन्द्रदेव जी के इस संग्रह और पूरे काव्य-कर्म को देखा जाना चाहिए त मैंने महसूस किया कि ये जो कविताएँ हैं ये किसी नैरेटिव, विमर्श या सबसे लोकप्रिय मुहावरों से पैदा नहीं हो रही हैं, बल्कि अनुभव से पैदा हो रही हैं त अनुभव, आख्यान, विमर्श में बड़ा अन्तर है त ज़रूरी नहीं कि हम जो अनुभव करते हैं वही नैरेटिव्स-विमर्श भी कहते हों त दोनों में बड़ा अन्तराल होता है त यह अन्तराल मोहग्रस्तता पैदा करता है त इसमें दो तरह के लोग हैं-एक सवर्ण जो अतीत को लेकर मोहग्रस्त हैं त किसी दलित को, स्त्री को गाँव क्यों नहीं याद आता है? सवर्ण कवियों को गाँव अपील करता है त चन्द्रदेव यादव में दोनों नैरेटिव्स हैं त मोहग्रस्तता और नकार दोनों में उनका भिन्न नजरिया है त उनमें गाँव के प्रति एक आलोचनात्मक नजरिया है त यह गाँवनामा में जगह जगह है-खास तौर से कुछ चरित्रों को लेकर लिखी गई कविताओं में है त ग्रामीण सौन्दर्य को प्राकृत सौन्दर्य बनाया जाता है-ऐसा करते समय अधिकांश कवि वहाँ के दमन, उत्पीड़न और लैंगिक संरचना

को छिपा लेते हैं त चन्द्रदेव यादव नहीं छिपाते हैं, इसीलिए यह संग्रह खास है त गाँव की सामाजिक और आर्थिक संरचना नकारात्मक है, उस दीवार को टूट ही जाना चाहिए त और गेरु की छापो वाली इन भूरी मिट्टी की दीवारों का क्या! यह ग्रामीण सौन्दर्य है जिसे बना रहना चाहिए त कविता हर बात को सौन्दर्यात्मक ढंग से कहती है त गेरु की छाप क्या है? यह ग्रामीण सौन्दर्य है त इस ग्रामीण परिवेश के भीतर सामुदायिकता, समाहार, लगाव, भ्रातृत्व, सामाजिकता-ये मूल्य हैं त ये वरेण्य हैं त गेरु की छाप को बचाए रखना कवि का दायित्व है त और खासियत यही है कि कवि चन्द्रदेव यादव जी उस सामाजिक-आर्थिक संरचना की जो नकारात्मकता है, सामुदायिकता, सामाजिकता, भ्रातृत्व और प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच के तनाव को किसी सरलीकरण के बजाय उसी तनाव में पकड़ पाते हैं त यह तीसरी खासियत है जो गाँवनामा को महत्वपूर्ण बनाती है

इस परिचर्चा में शामिल डॉ. प्रियदर्शिनी प्रिया ने कहा कि इन काव्य कृतियों पर अलग-अलग दृष्टियों से हो रही चर्चा को सुनकर मुझे ‘असाध्य वीणा’ की पंक्ति ‘सहसा वीणा झनझना उठी’ की याद आ गई कि गाँवनामा और पिता का शोकगीत में जो भाव है, संवेदनाएं हैं वे कई कई स्रोतों से झनझना उठी हैं त गाँव के परिवर्तनों की धीमी गति और गाँवों में गाँववालों की बेपरवाही से कवि असंतुष्ट है गाँव में हुए परिवर्तनों और लोक के समकालीन खुरदुरेपन की यात्रा इस नाम में शामिल है। गाँव से संबंधित अपनी धारणा को कवि ने भूमिका में स्पष्ट रूप से लिख दिया है त चन्द्रदेव यादव अतीत में डूबकर मोहग्रस्त नहीं होना चाहते। गाँवों की बिगड़ती स्थिति से वे बहुत चिंतित हैं। इन संग्रहों में गाँव के नग्न यथार्थ और उसकी विडम्बना को उकेरा गया है। वास्तव में सामाजिक सरोकारों से युक्त होकर ही कोई रचना बड़ी बनती है। कवि ने गाँवों में आ गई अधकचरी शहरी संस्कृति के प्रति चिंता व्यक्त की है। प्रो. यादव किसी भी अतार्किक आधुनिकता को स्वीकार नहीं करते। उनकी ईमानदारी की मैं कायल हूँ।

हिन्दी कविता के मर्मज्ञ प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी की राय में चन्द्रदेव यादव ने कविता के माध्यम से प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाया है। प्रेमचंद के कथा साहित्य का गाँव पूँजीवाद के दौर का गाँव है जहाँ किसान मजदूर बनते बनते मर जाता है; वह आत्महत्या नहीं करता है। चन्द्रदेव भाई की कविताओं में उत्तर-आधुनिक गाँव है। इनके दौर का किसान आत्महत्या के लिए मजबूर हो जाता है। प्रेमचंद के समय के दलित को लगता है कि न तो धरती अपनी है और न तो धन

अपना है। आज गाँव में जिनके पास अपनी धरती और अपना धन है उनका विस्थापन हो रहा है। यह विकृत सच्चाई आज के गाँव की है। लेकिन चन्द्रदेव यादव की कविताओं की सच्चाई उत्तर-आधुनिक गाँवों की है

इस संग्रह में प्रकृति संबंधी बहुत अच्छी कविताएँ हैं। वे त्रिलोचन और नागार्जुन की याद दिलाती हैं। यह बात सोलहो आने सच है कि विकास शहरोन्मुखी है और गाँव शहर के उपनिवेश हैं। चन्द्रदेव यादव की कविताओं में खड़ी बोली के बीच भोजपुरी की आवाजाही अच्छी लगती है। यह कृत्रिम नहीं है। लेकिन कविता में जब किसी अंचल विशेष का टिपिकल शब्द आता है तो वहाँ उसका फुटनोट देना चाहिए। इससे कविता सम्प्रेषणीय होती है और दूर तक जाती है।

दूसरे सत्र की अध्यक्षता कर रहे वरिष्ठ आलोचक डॉ. रामप्रकाश कुशवाहा ने कहा कि इन दोनों पुस्तकों की भूमिका अच्छी लगी। पिता का शोकगीत दरअसल गाँव का शोकगीत है। विलक्षण बात यह है कि चन्द्रदेव यादव एक ही विषय पर ५० वर्षों से सोच रहे हैं। यह थीम पोएट्री है। पिता का शोकगीत और गाँवनामा के कथ्य में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन कहीं कोई दोहराव नहीं है। इनकी त्रिपदी में जो रचना समय है, जो निवेश है वह विशिष्ट है। यह सूक्ति संरचना है। इनमें बहुत सी कविताएँ पोस्टर बनाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। त्रिपदियों में सूक्तियों की श्रृंखला है। तीन पंक्तियाँ कहने के लिए कवि ने कितना श्रम किया होगा, हालांकि यह आसान भाषा में है। इनका कथ्य एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है। चन्द्रदेव यादव जी की कविताएँ एक शोधक की कविताएँ हैं। ये आसान कविताएँ नहीं हैं, हालांकि चन्द्रदेव जी ने इसे भाषा की सरलता से छिपा दिया है। एक-एक छन्द के कई आयाम हैं।

पिता का शोकगीत में कवि की प्रतिभा और बिम्ब की उड़ान को देखा जा सकता है—‘पिता, ये गाल बजाने वाले डेढ़ हाथ के हाकिम/ वामन से भी बड़े हैं’। इसका बहुत अच्छा इस्तेमाल किया है चन्द्रदेव जी ने पौराणिक बिम्ब का नये अर्थ-सन्दर्भों में प्रयोग कवि की प्रतिभा का परिणाम है। संवेदना के स्तर पर चन्द्रदेव जी गाँव नहीं छोड़ पाए हैं, लेकिन लौटे हैं बोध के स्तर पर। यह स्वाभाविक है। इनमें कविता के कुछ स्थल—पिता का गीत—पिता की कविता, लगा व्यक्तिगत है। पिता के गीत का कंठावरोध यह कृति तोड़ती है। यह धूमिल के अधूरे कार्य को पूरा करती है। चन्द्रदेव जी ने प्रेमचंद को परंपरा के रूप में जीवित किया है। जब आपने समय का निवेश किया है तो ये कविताएँ लम्बे समय तक रहेंगी। सबसे

बड़ी बात यह कि ये कृतियाँ विमर्शात्मक हैं त तुलसीदास की तरह इनमें बौद्धिक सामग्री भी बहुत है।

महामारी के बाद ‘संवाद’ मंच का यह पहला कार्यक्रम था, वह भी पुस्तक लोकार्पण का। लेकिन ऑनलाइन हुए इस सवा तीन घंटे के कार्यक्रम में बड़ी संख्या में दर्शकों की उपस्थिति अत्यंत प्रीतिकर लगी। उन दर्शकों में वरिष्ठ नवगीतकार प्रो. राजेन्द्र गौतम, कवि जयराम जय, जी. पी. शर्मा गंगेश, कवि मोहनलाल यादव, कवयित्री अनुराधा ओस, कवि नीरज मिश्रा, लोकनाटक के मर्मज्ञ प्रो. ओमप्रकाश भारती, सुश्री चन्द्रकला सिंह, डॉ. विन्ध्याचल मिश्रा, प्रो. नीरज कुमार, डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा, डॉ. हैदर अली, अजय यतीश, सर्वजीत यादव जैसे कई विशिष्ट व्यक्ति हैं। इस समारोह के अन्त में संचालिका डॉ. सरोज ने सभी वक्ताओं और दर्शकों को धन्यवाद दिया।



अभिनव यादव

लेखक ने जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय एवं आईआईएमसी दिल्ली से पत्रकारिता की शिक्षा हासिल की है। कुछ समय तक ऊँच भारत से जुड़े रहे। बोलता हिंदुस्तान वेब पोर्टल के संस्थापक सदस्य हैं, पोर्टल के लिए रिपोर्टिंग के साथ लेखन करते हैं।

### पद्मश्री डॉ. उषाकिरण खान

साहित्य मेघ पत्रिका का प्रथम अंक देख मन प्रसन्न हो गया। पत्रिका में स्तरीय सामग्री है जो विषयों में विविधता लिये है। नामचीन यशस्वी मे प्रिय लेखकों रचनायें देख तुष्ट हुई। सुसंपाजित इस पत्रिका में एक नवांकुर रचनाकारों का कोना हो तो बहुत अच्छा लगेगा। हिंदी साहित्य जगत में अपना स्थान बनाये इसकी कामना करती हूँ।

### प्रोफेसर इंदु वीरेन्द्र

अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'साहित्य मेघ' का आगमन हिंदी साहित्य जगत के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। जैसे मेघ अपनी वर्षा की नन्हीं नन्हीं बूंदों से प्रकृति निर्माण में सहभागी बनता है उसी प्रकार आशा है कि साहित्य मेघ भी अपनी रचनात्मकता से उत्कृष्ट साहित्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत करेगा। पत्रिका से जुड़े देश विदेश के सभी लोग प्रतिष्ठित पद व साहित्य जगत की शीर्ष हस्तियां हैं। आशा है कि अतिशीघ्र पत्रिका हिन्दी साहित्य जगत में सूर्य के समान दैदीप्यमान होगी। संपादक मंडल को मेरी ओर से शुभकामनाएं।..

### प्रफुल्ल कोलख्यान

साहित्य मेघ की प्रति देखी। पत्रिका प्रकाशन के लिए बहुत-बहुत बधाई। यह साहसिक और चुनौतीपूर्ण काम है। क्योंकि उन्माद और अंतर्विरोधों से उत्पन्न अतिवाद के दौर में सम्यक और संतुलित बने रहने की कोशिश के संकल्प के लिए साहस संजोना कोई आसान काम नहीं है। इस संकल्प को सिद्ध करने के लिए अनुकूल रचनाओं को हासिल करना, संपादित करना और योग्य पाठकों तक उसे पहुँचाना एवं उनकी सहमति और सुमति का सामाजिक लाभ पाना कोई कम बड़ी चुनौती नहीं है। पहले ही अंक में सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि की अपेक्षा एक दुर्निवार महत्वाकांक्षा तो हो सकती है, लेकिन धीरे-धीरे चलते हुए बहुआयामी गुणवत्ता हासिल करते चलना बड़ी बात होती है।

प्रकाशक, मुद्रक और मालिक डॉ. मो. सलीम ने अज़ीम इंडिया प्रिंटर्स, ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) में छपवा कर ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) से प्रकाशित किया।  
सम्पादक डॉ. मो. सलीम, ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद)

सम्पादक के अतिरिक्त सभी पद अवैतनिक और परिवर्तनशील हैं। लेखों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। सभी मामले प्रयागराज (इलाहाबाद) की ही अदालत में होंगे।